सम्पादकीय

मुजफ्फरनगर की त्रासद घटना : जिम्मेदार कौन?

पिछले दिनों मुजफ्फरनगर और आसपास के जिलों में साम्प्रदायिक हिंसा की जो विनाश लीला रचायी गयी, वह किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को हिला कर रख देने वाली है। इस इलाके में 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के समय से ही हिन्दू–मुस्लिम एकता की एक शानदार परम्परा रही है। भारत विभाजन के रक्तपातपूर्ण समय से लेकर 1992 में बाबरी मस्जिद विध्वंस और उसके बाद समय–समय पर पैदा किये गये तनाव और फूटपरस्ती के माहौल में भी यहाँ अमन और भाईचारे पर कोई आँच नहीं आयी। लेकिन इस साम्प्रदायिक दावानल ने न केवल पीढ़ियों से अर्जित कौमी एकता और आपसी विश्वास को अपनी चपेट में ले लिया, बल्कि इस इलाके पर एक ऐसा बदनुमा दाग लगा दिया जिसे धो पाना, आने वाली पीढ़ियों के लिए भी काफी कठिन होगा। आखिर ऐसा कैसे हुआ? इंसानियत को शर्मसार कर देने वाली इस दुखदायी घटना के हर पहलू पर गम्भीरता से विचार करना, इसकी जड़ तक पहुँचना और इसे हमेशा के लिए उखाड़ फेंकने के प्रयास में लग जाना आज समय की माँग है।

डेढ़ महीने बीत जाने के बाद भी आज पूरे इलाके में खौफ, दहशत और तनाव का माहौल बना हुआ है। चारों ओर गन्ने की हरी–भरी फसल तैयार खड़ी है, लेकिन उसे लेकर कहीं कोई उत्साह नहीं है। चीनी मिल चालू होने, उनके ऊपर किसानों की बकाया रकम का भुगतान या गन्ने की कीमत तय होने को लेकर अनिश्चितता बनी हुई है। गाँवों से पलायन करके राहत शिविरों में रह रहे हजारों मुस्लिम परिवार अभी तक न तो गाँव लौटे और न ही वापस आने को तैयार हैं। उनमें ज्यादातर लोग कृषि उपकरणों की मरम्मत करने वाले मिस्त्री, लोहार, नाई, बढ़ई और खेत मजदूर हैं, जिनकी गाँव वालों को रोज–रोज जरूरत पड़ती है। उनका सबकुछ लुट गया, रोजी–रोजगार का जरिया छिन गया और सबसे बड़ी बात यह कि गाँव वालों पर से उनका भरोसा भी टूट गया। जिन लोगों के साथ पीढ़ियों का भाईचारा था, उन्होंने ही उन बेकसूर और निहत्थे लोगों पर हमला किया, उनकी हत्या की, औरतों के साथ बलात्कार किया, उनके घरों में आग लगा दी, सिर्फ इसलिए कि उनका धर्म अलग था। शिविरों की दुर्दशा की तो कोई इन्तहा नहीं। असुरक्षा के साथ–साथ अब वहाँ टायफाइड वायरल बुखार और डेंगू जैसी महामारी फैल रही है और मौत की खबरें भी आ रही हैं।

जो लोग गाँव में हैं वे भी चैन से नहीं हैं। अफवाहों का बाजार अब भी गर्म है ताकि लोगों में भय और आतंक कायम रहे। जिन के ऊपर आपराधिक मुकदमें दर्ज हैं, वे भागे फिर रहे हैं। खेती के औजारों को ठीक करवाने के लिए भाग–भाग कर शहर जाना पड़ रहा है। हिन्दू–मुस्लिम अदावत की आड़ में चोरी, रहजनी और लूटपाट अब पहले से भी ज्यादा बढ़ गये हैं। शाम ढलने के बाद घरों से बाहर निकलने की किसी में हिम्मत नहीं। जो लोग त्योहारों पर गाँव आने के लिए परिवारों से बार–बार आग्रह करते थे, वे 'दिवाली में गाँव आने की कोई जरूरत नहीं' जैसी हिदायतें दे रहे हैं। हर जगह खौफ का साया मँडरा रहा है।

असुरक्षा और मान–सम्मान की झूठी कहानी गढ़कर जिन नेताओं ने पूरे इलाके को आग में झोंक दिया वे खुशी मना रहे हैं। उनका काम हो गया। वे हिन्दू–मुस्लिम वोटों का ध्रुवीकरण करना चाहते थे। अब वे उसका चुनावी लाभ उठाने के मंसूबे बाँध रहे हैं। उन्हें इससे कोई लेना–देना नहीं कि मिलें सही समय पर चालू होंगी या नहीं, रब्बी की फसल बोने के लिए समय पर खेत खाली होंगे या नहीं, किसानों का पिछले साल का बकाया हजारों करोड़ रुपये का भुगतान कब होगा और इस सीजन में गन्ने का उचित मूल्य मिलेगा या नहीं। 350 रुपये प्रति क्विंटल की माँग के जवाब में चीनी मिलें 240 रुपये प्रति क्विंटल से एक पैसा अधिक भाव देने को तैयार नहीं हैं। इन मुद्दों पर आन्दोलन करने की तो बात ही छोड़िये, कहीं कोई सुगबुगाहट भी नहीं है। कोई यह पूछने वाला नहीं कि रोजी–रोजगार की सुरक्षा को दाँव पर लगाकर किसानों को सुरक्षा और सम्मान का पाठ पढ़ाने वाले हिन्दू हृदय सम्राट और महापंचायती इस मुसीबत की घड़ी में कहाँ चले गये।

मुजफ्फरनगर की ताजा घटनाएँ देशभर में हुई साम्प्रदायिक हिंसा की बड़ी घटनाओं में से एक है। गुजरात नरसंहार (2002) के बाद पिछले दस वर्षों के दौरान देशभर में ऐसी सैकड़ों वारदातें हुईं, लेकिन उस नरसंहार के बाद यह अल्पसंख्यकों पर सबसे बड़ा हमला है। शुरू से आखिर तक पूरे घटनाक्रम को देखें, तो जाहिर होता है कि यह अपने–आप फूट पड़ने वाला या आसमान से टूट पड़ने वाला कहर नहीं, बल्कि जान बूझ कर, योजना बना कर रची गयी गहरी साजिश का नतीजा है।

इस बात पर लगभग सभी सहमत हैं कि इस कत्लोगारद के पीछे 27 अगस्त को कवाल गाँव में हुई तीन नौजवानों की हत्या की नृशंस और दुखद घटना है। पहले दो जाट युवकों, गौरव और सचिन ने शाहनवाज की हत्या की जिसके जवाब में भीड़ ने उन दोनों भाइयों की हत्या कर दी। घटना की प्राथमिकी और अगले दिन अखबारों में छपी खबर के मुताबिक झगड़े का कारण दोनों पक्षों में मोटरसाईकिल की टक्कर के बाद हुआ विवाद था। लेकिन बाद में इसे मृत मुस्लिम युवक द्वारा लड़की छेड़ने से जोड़ा गया और यहाँ तक कि 'लव जेहाद' के मनगढ़ंत किस्से गढ़कर इसे साम्प्रायिक रंग दे दिया गया। कवाल जैसी हत्या और जवाबी हत्या की घटनाएँ मुजफ्फरनगर और आस–पास के इलाकों के लिए कोई नयी बात नहीं। अगर प्रशासनिक लापरवाही न होती और वोट बैंक के लिए राजनीतिक पार्टियों के फिरकापरस्त हिन्दू–मुस्लिम नेताओं ने इसे साम्प्रदायिक रंग नहीं दिया होता तो यह दुर्भाग्यपूर्ण घटना हिंसा–प्रतिहिंसा की एक सामान्य आपराधिक घटना होती और इसे कानूनी दायरे में ही सुलटा लिया जाता। लेकिन साम्प्रदायिक घृणा की जो मुहिम विभिन्न पार्टियों की ओर से और खास तौर पर साम्प्रदायिक हिन्दू संगठनों की ओर से पिछले कई महीनों से लगातार उस इलाके में चलायी जा रही थी इस वारदात को उसी सिलसिले से जोड़ दिया गया। एक तरफ भाजपा नेताओं ने खुद इसे हिन्दुओं के मान सम्मान से जोड़ कर साम्प्रदायिक तनाव पैदा करने का काम किया तो दूसरी ओर सपा, बसपा और कांग्रेस पार्टी के कुछ मुस्लिम नेताओं ने खुद को मुसलमानों का हितैषी साबित करने के अनुकूल अवसर में बदल दिया। स्थानीय प्रशासन और उत्तर प्रदेश की सपा सरकार की ओर से पूरी तरह लापरवाही बरती गयी। सबसे बड़ी बात यह है कि इलाके में शान्ति स्थापित करने और साम्प्रदायिक सौहार्द कायम करने के लिए, किसी भी पार्टी ने कोई प्रयास नहीं किया। यहाँ तक कि इस बारे में किसी बड़े नेता का बयान भी नहीं आया। इस तरह साम्प्रदायिक तनाव और नफरत फैलाने वालों को एक तरफ से खुली छूट दे दी गयी।

इसमें कोई संदेह नहीं कि अगर राजनीतिक पार्टियों के नेता किसी तनावपूर्ण घड़ी में आग में घी डालने का काम न करें और प्रशासन अपने काम में ढिलाई न बरते तो देश में कहीं भी दंगा भड़कने की सम्भावना बहुत ही कम होती है और अगर हो भी जाय, तो उसे आसानी से काबू किया जा सकता है। यह बात विभिन्न जगहों पर हुए दंगों की जाँच रिपोर्टों से पूरी तरह पुष्ट होती है। अगस्त महीने में ही मुजफ्फरनगर जिले में हुई ठीक इसी से मिलती–जुलती दो अन्य घटनाएँ भी इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं। पहली घटना 9 अगस्त की है, जब इद–उल–फितर के दिन मुजफ्फरनगर में ईदगाह के पास इदरिस की हत्या की गयी। इसका कारण यह था कि इदरिस ने अपनी बेटी के साथ छेड़खानी करने वाले एक लड़के को सरेआम थप्पड़ मारा था। इस घटना पर प्रशासन ने तुरन्त कार्रवाई की और अभियुक्तों को गिरफ्तार कर लिया। हालाँकि हिन्दुत्ववादी संगठनों ने हत्या के आरोपियों की गिरफ्तारी को लेकर हंगामा खड़ा किया और इस घटना को साम्प्रदायिक रंग देने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी। पकड़े गये आरोपियों को बचाने के लिए दबाव भी बनाया लेकिन इसके बावजूद वे साम्प्रदायिक हिंसा भड़काने में कामयाब नहीं हो पाये। दूसरी घटना 18 अगस्त को सोरम गाँव में हुई जिसमें जाट युवकों ने एक मुस्लिम लड़की के साथ छेड़छाड़ की और विरोध करने पर उसके परिवार वालों के साथ मारपीट की। इसको लेकर दोनों पक्षों में टकराव और हिंसा की घटना भी हुई, लेकिन उस पर जल्द ही काबू पा लिया गया। ये दोनों घटनाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि प्रशासन की चुस्ती से साम्प्रदायिक तनाव और हिंसा पर काबू पाना कठिन नहीं। दूसरे, ये दोनों घटनाएँ हिन्दुत्ववादी संगठनों द्वारा फैलाई गयी 'लव जेहाद' के काल्पनिक सिद्धान्त का भी भण्डाफोड़ करती है जो महिलाओं के साथ छेड़छाड़ को साम्प्रदायिक चश्में से देखते हैं, इसके लिए केवल एकतरफा मुसलमानों को दोषी ठहराते हैं और साम्प्रदायिक जहर फैलाते हैं।

कवाल की घटना 27 अगस्त को हुई, लेकिन उस घटना के दस दिन बाद, 7–8 सितम्बर को ही साम्प्रदायिक हिंसा का खूनी खेल शुरू हुआ। इस बीच अलग–अलग ताकतें अपनी–अपनी कारगुजारियों से इसकी जमीन तैयार करने में लगी रहीं। मुसलमानों का मुहाफिज और असली नुमाइन्दा साबित करने की होड़ में मुस्लिम नेताओं ने 30 अगस्त को निषेधाज्ञा का उल्लंघन करते हुए मुजफ्फरनगर में एक सभा की, जिसमें बसपा के सांसद कादिर राणा, विधायक जमील अहमद कासमी और कांग्रेस के पूर्व विधायक सइदुज्जमा सहित कई नेता शामिल हुए। बिना इजाजत के बीच शहर में आयोजित इस सभा में उपस्थित भीड़ को मनाने और सभा खत्म करवाने के लिए जिले के अन्य अधिकारियों ने सभा स्थल पर जाकर उन नेताओं से ज्ञापन लिया। इसी तरह भाजपा के प्रयासों से जाटों की एक पंचायत हुई जिसमें तय हुआ कि 7 सितम्बर को ''माँ, बेटी, बहू बचाओ'' के नारे के साथ कवाल के निकट नंगला मंदौड़ में एक महापंचायत की जायेगी।

इस बीच इंटरनेट और मोबाइल के जरिये साम्प्रदायिक जहर और मुसलमानों के प्रति नफरत से भरे संदेश भेजने का सिलसिला जारी रहा। खास तौर पर जिन गाँवों में साम्प्रदायिक ताकतों का प्रभाव था, वहाँ मुसलमानों के पहनावे, खान–पान और धार्मिक व्यवहारों को लेकर छींटाकशी करने तथा हिन्दुओं को बदले की कार्रवाई के लिए उकसाने वाली बातें भी होती रहीं। ऐसा माहौल बनाया गया, जैसे हिन्दुओं की बहु–बेटियों की इज्जत को मुसलमानों से खतरा है और इसके खिलाफ आर–पार की लड़ाई जरूरी है। इसी दौरान एक वीडियो को भारी पैमाने पर प्रसारित किया गया जिसमें दो नौजवानों की पीट–पीट कर हत्या करते हुए दिखाया गया था। दरअसल वह वीडियो पाकिस्तान के स्यालकोट में दो साल पहले तालिबानियों द्वारा दो मुस्लिम युवकों की हत्या का था, जिसे इंटरनेट से डाउनलोड करके उसे कवाल की घटना बता कर प्रचारित किया गया। पूरे इलाके में साम्प्रदायिक जहर फैलाने में इस वीडियो और दूसरी अफवाहों की काफी भूमिका रही है। काफी समय बाद जब सच्चाई का पता चला, तो इस वीडियो को फैलाने के आरोप में भाजपा विधायक संगीत सोम सहित 200 से भी अधिक लोगों पर मुकदमा कायम किया गया।

नफरत और हिंसा भड़काने वाली इन कार्रवाइयों, अफवाहों, पंचायतों, आम सभाओं और बंद के आह्वान को रोकने के बजाय प्रशासन हाथ पर हाथ धरे बैठा रहा। जो नेता तटस्थ थे, उन्होंने भी हिन्दू–मुस्लिम जनता के बीच पीढ़ियों से कायम भाई–चारे को बनाये रखने के लिए कोई प्रयास नहीं किया –चाहे उत्तरप्रदेश की सपा सरकार हो या इस इलाके में काफी समय से प्रभावशाली और साम्प्रदायिकता विरोधी छवि वाले रालोद और किसान यूनियन के नेता। इस तरह साम्प्रदायिक ताकतों को खुल कर खेलने का मौका मिल गया।

इतना सब कुछ होते हुए भी दस दिनों तक हिन्दू–मुस्लिम जनता के बीच अपने–आप कोई झड़प तक नहीं हुई। जाहिर है कि साम्प्रदायिक हिंसा सचेत प्रयासों का परिणाम थी। 7 सितम्बर को नंगला मंदौड़ में हुई पंचायत भी लोगों का स्वतःस्फूर्त जमावड़ा नहीं थी, बल्कि उसे पूरी तैयारी के साथ आयोजित किया गया था। निषेधाज्ञा लागू होने के बावजूद वहाँ भारी संख्या में लोग इकठ्ठा हुए। प्रशासन ने उसे रोकने का कोई प्रयास नहीं किया। हिन्दुत्ववादी संगठनों के साम्प्रदायिक दुष्प्रचार का इस महापंचायत पर पूरा असर था। कवाल की दुर्भाग्यपूर्ण घटना की उन्होंने जिस तरह मनमानी व्याख्या की थी, यह उसकी चरम परिणति थी। हुकुम सिंह, संगीत सोम, सुरेश राणा सहित भाजपा के कई छोटे–बड़े नेता इसमें सक्रिय रूप से शामिल थे। जाट नेताओं की उपस्थिति तो वहाँ नाम मात्रा की थी, जबकि भाजपा नेता आग बोने में कोई कसर नहीं छोड़ रहे थे। मुसलमानों के प्रति नफरत और गुस्सा पैदा करने वाले नारे लगाये जा रहे थे और मोदी की जय जयकार हो रही थी। 'लव जेहाद' की काल्पनिक और बेहूदी धारणा पर आधारित यह पंचायत बहू–बेटी की रक्षा करने के नाम पर आयोजित हुई थी, जबकि सबको पता है कि वहाँ उपस्थित ऊपरी जाति के लोगों की बहू–बेटी पर कोई खतरा नहीं मँडरा रहा था। जहाँ तक महिलाओं के साथ छेड़छाड़ की बात है तो यह हिन्दू और मुस्लिम, सवर्ण और दलित, सभी महिलाओं के साथ होता है और ज्यादातर गरीब परिवार की औरतों के साथ ही होता है। इस हकीकत को नकारते हुए इस समस्या को साम्प्रदायिक रंग दे दिया गया। सब कुछ हिन्दू साम्प्रदायिक संगठनों की योजना के अनुसार ही हुआ। इसका प्रमाण यह है कि जब हिंसा की आग अभी

बुझी भी नहीं थी, तभी विश्व हिन्दू परिषद के सबसे बड़े नेता अशोक सिंघल का गर्वोक्तिपूर्ण बयान आया था कि मुजफ्फरनगर में मुसलमानों के 'लव जेहाद' का हिन्दुओं ने गुजरात जैसा जवाब दिया है।

महापंचायत शुरू होने से पहले ही, वहाँ जाने वाली भीड़ और मुस्लिम बहुल गाँवों के लोगों के बीच झड़प होनी शुरू हो गयी थी और पंचायत खत्म होने के बाद नफरत का लावा हिंसा का रूप लेकर कई गाँवों में फूट पड़ा। जब हिंसा का ताण्डव शुरू हो गया तभी जाकर प्रशासन हरकत में आया। तीन थाना क्षेत्रों में कर्फ्यू लगाया गया और इलाके में सेना की तैनाती हुई। इसके कारण शहरी क्षेत्रों में दंगाइयों पर लगाम कसना सम्भव हुआ। वहाँ कोई खास रक्तपात नहीं हुआ। लेकिन दूरस्थ गाँवों में इन उपायों का तत्काल असर न होना था और न हुआ। अगले दिन 8 सितम्बर को मुस्लिम समुदाय पर हमले शुरू हुए, जो बाद में भी छिटपुट रूप में जारी रहे। इन दो–तीन दिनों में जो कुछ हुआ, उसका वर्णन करना लगभग असम्भव है। अब तक की सूचना के मुताबिक इस घटना में लगभग 63 लोगों की मौत हुई, 150 लोग घायल हुए और 50,000 लोगों को अपने गाँव–घर से उजड़ कर राहत शिविरों में शरण लेनी पड़ी। सरकार द्वारा नियुक्त विशेष जाँच दल के पास अब तक लूट, आगजनी, बलात्कार और हत्या के 400 से भी अधिक मामले दर्ज कराये गये हैं। मौत का यह सिलसिला अभी भी थमा नहीं है।

मुजफ्फरनगर में गुजरात जितने बड़े पैमाने पर हत्याएँ नहीं हुई तो इसका कारण यही है कि आम तौर पर दंगाई बाहर से नहीं आये थे, बल्कि गाँव के ही लोग थे। जिन लोगों ने हमले को अंजाम दिया वे दूसरे को अच्छी तरह जानते थे और उनका असली मकसद बड़े पैमाने पर हत्या करना नहीं, बल्कि मुसलमानों को गाँव से बाहर भगाना था। धार्मिक घृणा से भरी बातें करने और ताना मारने, डराने, धमकाने ''पाकिस्तान या कब्रिस्तान'' जैसे नारे लगाने, दाढ़ी–टोपी को आतंकवाद की निशानी बताने तथा गाली गलौज और मारपीट करने का सिलसिला काफी पहले से ही चल रहा था। इसके कारण मुस्लिम आबादी में खौफ और दहशत का माहौल बना हुआ था। इसीलिए हमला होने की आशंका पर हमलावर भीड़ का शोर सुनते ही लोग अपना सबकुछ छोड़कर जान लेकर भागे। उन्होंने मुस्लिम बहुल गाँवों में या फिर कस्बों के धार्मिक स्थलों में पनाह ली।

इस पूरे घटनाक्रम में स्थानीय हिन्दी अखबारों ने अत्यन्त आपराधिक और घिनौनी भूमिका निभायी। तथ्यहीन, सनसनीखेज, भड़काऊ और अफवाह करने वाली खबरों ने लोगों की हिंसा की लपटों को तेज करने का काम किया। इसके लिए जौली गाँव के निकट गंगनहर से जुड़ी खबर का उदाहरण ही काफी है। अखबारों में यह खबर आयी कि उस नहर के पास पंचायत से लौटते हिन्दुओं पर जौली गाँव के मुसलमानों ने एक तरफा हमला करके बड़ी संख्या में हिन्दुओं की हत्या की और उनकी लाश गंग नहर में फेंक दी गयी। इस खबर ने पूरे इलाके में आग भड़काने का काम किया। सच्चाई यह है कि वह दोनों पक्षों के बीच का टकराव था। एक महीने के बाद पूरे इलाके में सभी मृत और लापता लोगों की सूचनाएँ मिल जाने और तहकीकात करने के बाद पुलिस की अन्तिम रिपोर्ट थी कि इस घटना में चार मुस्लिमों और तीन हिन्दुओं की मौत हुई थी। मरने वालों की संख्या को देखते हुए कोई भी समझ सकता है कि यह घटना एकतरफा हमले की नहीं बल्कि दो पक्षों के बीच टकराव की थी।

8 सितम्बर को दैनिक जागरण की खबर बताते हुए इंटरनेट के जरिये सोशल नेटवर्क पर फैलायी गयी दो जाली खबरों ने भी आग में घी डालने का काम किया जिनके शीर्षक थे– ''मुजफ्फरनगर में मुसलमानों का आतंक, हिन्दुओं में खौफ'' और ''मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं का कत्लेआम जारी'' जाँच करने पर पता चला कि दैनिक जागरण में छपी मूल खबर में शीर्षक ''पंचायत से लौटते दो लोगों की हत्या'' और ''दंगाइयों को गोली मारने के आदेश''था। सोशल मीडिया के जरिये इसी तरह के अफवाह फैलाने का काम बड़े पैमाने पर किया गया।

इस पूरे घटनाक्रम पर सरसरी निगाह डालने के बाद भारतीय समजा में लगातार बढ़ रहे हिन्दू–मुस्लिम द्वेष और साम्प्रदायिक ताकतों के कुप्रभाव की छानबीन करना तथा इनके कारण और समाधान पर विचार करना भी बहुत जरूरी है।

यह खुली सच्चाई है कि मुजफ्फरनगर की विनाश लीला के पीछे राजनीतिक पार्टियों द्वारा हिन्दू–मुस्लिम वोटों का ध्रुवीकरण करके चुनाव में अपना–अपना वोट बढ़ाना और चुनाव जीतना है। इस पूरे प्रकरण में संघ परिवार की प्रमुख भूमिका रही है। दंगों के बीज बोना और वोट की फसल काटना इनकी आजमायी हुई तरकीब है। इसी के दम पर भाजपा ने संसद और विधान सभाओं में अपनी ताकत बढ़ायी है। 1984 में लोकसभा में भाजपा के सिर्फ 2 सांसद थे। रामजन्म भूमि आन्दोलन और आडवाणी की रथयात्रा के बाद पूरे देश में साम्प्रदायिकता की आग भड़की, जगह–जगह पर दंगे हुए और वोटों का ध्रुवीकरण हुआ। इसका लाभ उठाते हुए 1991 के चुनाव में भाजपा के 119 सांसद लोकसभा में पहुँचे। 2002 के गुजरात नरसंहार में हजारों मुसलमानों को हताहत करके भाजपा ने एक बार फिर अपनी राजनीतिक ताकत बढ़ाई और 2004 के चुनाव में इसके 137 सांसद चुने गये। वर्तमान लोकसभा में इसके सांसदों की संख्या घटकर 117 रह गयी है। और अब 2014 के चुनाव में गुजरात नरसंहार के आरोपी मोदी को प्रधानमंत्री का उम्मीदवार घोषित करके हर कीमत पर चुनाव जीतने के लिए भाजपा फिर अपने ढर्रे पर लौट आयी है।

केवल मुजफ्फरनगर ही नहीं बल्कि पूरे देश में साम्प्रदायिक आधार पर वोटों का ध्रुवीकरण करने के लिए भाजपा गुजरात मॉडल को आजमा रही है। पिछले डेढ़ साल में प्रदेश में 40 स्थानों पर साम्प्रदायिक दंगे हुए जिसमें 150 लोगों की मौत हुई। इस सिलसिले को 2014 के चुनाव तक जारी रखते हुए हिन्दू वोटों के ध्रुवीकरण की जोर–शोर से तैयारी चल रही है।

दूसरी ओर, सपा सरकार पर दंगों को प्रभावी तरीके से रोक पाने में असफलता का आरोप भी सही है। सरकार केवल हिंसा रोकने में ही नहीं, बल्कि पुनर्वास और न्याय के मामले में भी पूरी तरह निकम्मी साबित हुई है। मुलायम सिंह जैसे समाजवादी भौंडे तरीके से मुसलमानों को खुश करने में लगे रहते हैं। इनकी निगाह मुसलमानों के वोट पर रहती है। सरकार चाहे तो दंगों को रोका जाना मुमकिन है। 1991 में मुलायम सिंह की सरकार ने मुस्तैदी से काम किया था और साम्प्रदायिक आग को काबू में कर दिया था। अभी हाल ही में सपा सरकार ने 84 कोसी परिक्रमा के जरिये माहौल बिगाड़ने के विश्व हिन्दू परिषद के प्रयास पर भी पानी फेर दिया था। ऐसे में मुजफ्फरनगर की घटना में सरकार की लापरवाही और निष्क्रियता सपा सरकार की नीयत पर सवाल खड़ा करती है। निश्चय ही भाजपा ने सपा सरकार की इस नरमी का भरपूर लाभ उठाया है और मजेदार बात यह कि सरकार की इस नरमी को मुस्लिम वोट की राजनीति का नाम देते हुए भाजपा इसे ही दंगे का मूल कारण बता रही है। जाहिर है कि सपा और भाजपा दोनों ही पार्टियों के नेता इस आग में अपने हाथ सेंक रहे हैं। राष्ट्रीय लोक दल, जिसका एक समय इस इलाके में गढ़ रहा है, इस पूरे प्रकरण में पूरी तरह गायब रही। चौधरी चरण सिंह ने हिन्दू–मुस्लिम एकता की जिस विरासत को कायम रखा, उसकी हिफाजत के लिए रालोद ने कोई प्रयास नहीं किया। जाटों के बीच इसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाने के लिए भाजपा ने भरपूर प्रयास किया। वोटों के इस बँटवारे का सबसे अधिक खामियाजा रालोद को ही भुगतना होगा। अब भाजपा जाटों के बीच अपनी पार्टी के लिए उम्मीदवाद तलाशने में ऐड़ी चोटी का जोर लगा रही है, क्योंकि इस खूनी खेल का चुनावी लाभ उठाने के लिए फिलहाल इस पार्टी में सक्षम जाट नेताओं का अभाव है।

* * * * *

कुल मिलाकर, आज ऐसी कोई भी पार्टी नहीं है जो वोट और चुनाव की राजनीति से ऊपर उठकर सम्प्रदायवाद को शिकस्त दे और उसे नेस्तेनाबूद करे, हिन्दू–मुस्लिम एकता स्थापित करे और समाज में खड़ी हो रही जाति–धर्म की दीवारों को गिराकर जनता के बीच सच्ची एकता कायम करे और उसे अंजाम तक पहुँचाये। निश्चय ही यह एक गम्भीर और चिन्ताजनक स्थिति है।

मुजफ्फरनगर की त्रासद घटनाओं ने हमारे समाज के एक ऐसे कुरूप और घिनौने चेहरे को सामने ला दिया है, जिससे आँख चुरा पाना सम्भव नहीं। अपने समाज की उन कड़वी सच्चाइयों और उसके अप्रिय पहलुओं को स्वीकार किये बिना, जो साम्प्रदायिक राजनीति के लिए खाद–पानी का काम करती है, इस समाज को समझना और उसके खिलाफ निर्णायक संघर्ष की जमीन तैयार करना सम्भव नहीं हैं। कौमी एकता के तराने गाने और साम्प्रदायिक एकता की तमन्ना के चलते सच की अनदेखी

करना और मनभावन सच्चाइयों की तस्वीर सामने लाना, दरअसल कड़वी सच्चाइयों से मुँह चुराना है। मसलन, यह बात सही है कि जनता स्वाभाविक रूप से शान्तिप्रिय होती है, लेकिन यह भी सही है कि भारतीय जनमानस में साम्प्रदायिक भेदभाव और नफरत भी मौजूद है तथा अलग–अलग धर्मों के अनुयायियों के भीतर आपसी द्वेष और दूरी लगातार बढ़ती जा रही है। जनता का स्वाभाविक रूप से शान्तिप्रिय होना तथा उसका धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक मूल्यों से ओतप्रोत होना, दोनों अलग–अलग चीजें हैं।

अलग–अलग धर्मावलम्बियों के बीच लम्बे समय से मौजूद और लगातार बढ़ रहा अलगाव, सामाजिक जीवन पर विभिन्न धर्मों का वर्चश्व और पिछड़े मूल्यों का प्रबल प्रभाव तथा उनके बीच धार्मिक असहिष्णुता और कटुता की मजबूत जमीन पर ही साम्प्रदायिक राजनीति का जहरीला पौधा पनपता और फलता–फूलता है। हमारे परिवार में, समाज में और सामाजिक संस्थाओं में लोकतांत्रिक मूल्यों का लगभग पूरी तरह अभाव है। हर जगह निरंकुश स्वेच्छाचारिता का बोलबाला है। आजादी के 66 साल बाद आज भी धर्मनिरपेक्षता केवल संविधान में लिखी हुई पवित्रा वाणी मात्रा है। धर्मनिरपेक्षता और लोकतांत्रिक मूल्य केवल थोड़े से प्रबुद्ध और प्रगतिशील राजनीतिक चेतना वाले लोगों तक ही सीमित हैं। धार्मिक सहिष्णुता, भाईचारा और जनतांत्रिक मूल्य व्यापक जनता के जीवन में रचे–बसे नहीं हैं। इतना ही नहीं, छुद्र और स्वार्थी चुनावी राजनीति करने वालों ने इस स्थिति का लाभ उठाते हुए सामाजिक बँटवारे और भेदभाव की खाई को दिनोंदिन और अधिक चौड़ा करने का ही काम किया है।

भारतीय समाज की यही स्थिति साम्प्रदायिक और फासीवादी राजनीति को भौतिक आधार प्रदान करती है। अलग राय, अलग विचार, अलग जीवन शैली और यहाँ तक कि अलग तरह के खानपान और पहनावे को भी हमारे समाज में बर्दाश्त नहीं किया जाता। ऊपरी तबके को छोड़ दें तो हर परिवार में निरंकुशता अपने चरम रूप में दिखाई देती है। सरकारी तंत्रा की निरंकुशता तो आम जनता को हर रोज अपनी जिन्दगी में झेलनी ही पड़ती है, खुद जनता के विभिन्न स्तरों के बीच भी स्वेच्छाचारिता और भेदभाव मौजूद है। दलितों, शोषितों और महिलाओं के लिए लोकतंत्रा आज भी सपना ही है।

पश्चिम से उधार में ली गयी संसद, न्यायपालिका और अन्य लोकतांत्रिक संस्थाएँ भारतीय समाज में एक ढकोसला बन कर रह गयी हैं। आज जनता की नजर में ये सिर्फ अमीरों, पूँजीपतियों और नेताओं के हित साधने और उनकी हिफाजत करने वाली संस्थाएँ हैं। शिक्षा, वैज्ञानिक चेतना और सम्मानजनक रोजगार से वंचित जनता के लिए भला जनवाद और आपसी भाईचारे का क्या मोल हो सकता है। जिस समाज में मुठ्ठीभर धनाढ्यों के लिए वैभव, विलास और सुख सुविधा के सारे साधन आरक्षित हों और दूसरी ओर बहुसंख्य जनता अपने को जिन्दा रखने के लिए दिन–रात खटने पर मजबूर हो वहाँ समानता, स्वतंत्राता और भाईचारा मजाक बन कर रह जाना लाजिमी है। ऐसे हालात में अगर उन्हें संगठित करने और उनकी बुनियादी माँगों को लेकर संघर्ष करने वाली ताकतें मौजूद न हों, तो साम्प्रदायिक संगठनों के लिए उन्हें अपने प्रभाव में ले लेना और जाति–धर्म–क्षेत्रा के नाम पर उनमें फूट डालकर लड़ाना आसान हो जाता है।

साम्प्रदायिक ताकतें स्वतंत्राता आन्दोलन के दौर से ही सक्रिय रही हैं। बाँटो और राज करो की नीति के तहत अंग्रेजों ने हिन्दू–मुस्लिम साम्प्रदायिक शक्तियों को बढ़ावा दिया और अंततः वे भारत को धार्मिक आधार पर दो टुकड़ों में विभाजित करने में सफल हुए। आजादी के बाद शासक पूँजीपति वर्ग की नीतियों में वैज्ञानिक नजरिया, लोकतंत्रा और धर्मनिरपेक्षता जैसे मूल्यों को जन–जन तक पहुँचाने की कोई गुंजाइश ही नहीं थी। आर्थिक नीतियों के मामले में उसने सामन्ती वर्गों के साथ समझौता किया, और क्रान्किारी भूमि सुधार के वादे को तिलांजलि दे दी जिसके कारण पूँजीवादी विकास का आधार भी बहुत ही सीमित रहा। मरने से ठीक पहले नेहरू ने अपनी नीतियों की असफलता को संसद में स्वीकार किया था, लेकिन उसके बाद भी उन नीतियों का कोई विकल्प शासक वर्गों के पास नहीं था।

★★★★★

1991 में नेहरूवादी नीतियों का परित्याग करते हुए उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की जिन नीतियों को भारतीय शासक वर्ग ने स्वीकार किया, उस पर देश की सभी प्रमुख पार्टियों और यहाँ तक कि क्षेत्राीय पार्टियों की भी आम सहमति रही है। सबका एक ही मकसद है– देशी–विदेशी पूँजीपतियों को हर तरह से लूट की छूट देना, उनकी खिदमत क[illegible] और अपने लिए राजसी ठाटबाट का पुख्ता इंतजाम

मुजफ्फरनगर दंगा : निशाने पर गाँव

—पंकज श्रीवास्तव

आजाद भारत में दंगों का लंबा सिलसिला रहा है, लेकिन मुजफ्फरनगर दंगा इस इतिहास का एक नया मोड़ साबित हो सकता है। यह बदलते भारत में पलते धधकते इरादों की शिनाख्त करता है। यह पहली बार है जब साम्प्रदायिकता की लपटों ने गाँवों को भी अपनी चपेट में ले लिया है। जिन गाँवों ने राम मंदिर आंदोलन के तनाव भरे दिनों में भी सौहार्द का झंडा बुलंद रखा था, वे भरोसे के टूटने और रिश्तों के छूटने के दर्द से कराह रहे हैं। मीठे गन्ने और सोंधे गुड़ के लिए मशहूर मुजफ्फरनगर में लगी इस आग ने सैकड़ों साल पुराने रिश्तों को खाक करने की कोशिश की है। इन रिश्तों में पुरखों की आँख का पानी था, खेतों की हरियाली, माटी की महक और पसीने की गंध थी।

सवाल ये है कि ये आग लगी कैसे। क्या पश्चिमी उत्तर प्रदेश की फिजा में ये जहर अचानक ही घुला। पद्मश्री से सम्मानित, मेरठ के मशहूर हकीम, बुजुर्ग सैफुद्दीन का मानना है कि लंबे समय से जारी दुष्प्रचार और सरकार की सुस्ती ने हालात खराब कर दिये। वाकई, बात छोटी सी थी, लेकिन जिस तरह पूरा इलाका जलने लगा, वे बताता है कि इसके पीछे कितनी बड़ी साजिश थी।

शुरुआत हुई थी 27 सितंबर को कवाल गाँव में एक लड़की से छेड़खानी को लेकर अल्पसंख्यक समुदाय के एक युवक की हत्या से। हत्या करने वाले दो भाई थे। उसी दिन बदले में दोनों भाइयों की भी हत्या कर दी गयी। दोनों तरफ से मुकदमा लिखा गया। पुलिस ने दोनों भाइयों की हत्या में करीब एक दर्जन लोगों को गिरफ्तार कर लिया। लेकिन समाजवादी पार्टी के कुछ नेताओं के दबाव में सिवाय एक के बाकी छोड़कर सभी को रिहा कर दिया गया। लोगों की नजर में छोड़े जाने वालों में असल दोषी भी थे। बस यहीं से मामला गरमाने लगा। इस प्रचार ने जोर पकड़ा कि समाजवादी पार्टी की सरकार वोटों के लालच में अल्पसंख्यक समुदाय से जुड़े लोगों का हर गुनाह माफ कर रही है।

वैसे, स्त्रियों के बारे में जड़ सामंती चिंतन में जकड़े, खाप संस्कृति वाले इस इलाके में एक अच्छी बात भी थी। यहाँ गाँव की लड़की को पूरे गाँव की इज्जत समझा जाता था। चाहे वह किसी भी धर्म या जाति की हो। लेकिन इस बार बड़े शातिर तरीके से छेड़खानी का सवाल समुदायों की बहू–बेटी की इज्जत से जोड़ा जाने लगा। अचानक इंटरनेट में दो लड़कों की सरेआम हत्या करने का एक वीडियो प्रचारित किया जा रहा था। बताया गया कि ये कवाल गाँव के दो हिंदू लड़कों की हत्या का वीडियो है। इसे शेयर करने का आरोप बीजेपी विधायक संगीत सोम पर भी लगा है। हालाँकि बाद में पता चला कि ये वीडियो पाकिस्तान का है। लेकिन तब तक साम्प्रदायिकता और राजनीति का जहरीला मेल गुल खिला चुका था।

मुजफ्फरनगर दंगे में आगे का सिलसिला कुछ यूँ है—

30 अगस्त—– शुक्रवार को शहर में जुम्मे की नमाज के बाद अल्पसंख्यकों ने सभा की। इसमें सभी पार्टियों के मुस्लिम नेता शामिल हुए। धारा 144 लगी थी, लेकिन सरकारी अफसर रोकने के बजाय, मंच पर ज्ञापन लेते नजर आये।।

31 अगस्त—– दो हिंदू लड़कों की हत्या के आरोपियों के खिलाफ नंगला मांदेड़ गाँव में पंचायत हुई। इसे हिंदुओं की पंचायत का नाम दिया गया। यहाँ समाजवादी पार्टी का झंडा लगाये जा रही एक गाड़ी को रोककर उसे आग के हवाले कर दिया गया। गाड़ी में एक अल्पसंख्यक परिवार बैठा था, जिसे पुलिस ने बड़ी मुश्किल से बचाया।

7 सितंबर—– नंगला मंदोड़ गाँव में बहू बचाओ–बेटी बचाओ नारे के साथ पंचायत हुई। इसमें भी कई पार्टियों के नेता शामिल हुए। साध्वी प्राची ने

हिंदुओं की रक्षा के सवाल पर ललकारा। माहौल गरमा गया। एक टैक्सी के ड्राइवर को मुस्लिम जानकर मौके पर ही पीट–पीटकर मार डाला गया। पंचायत से लौटते लोगों ने राह चलते अल्पसंख्यकों पर हमले किये। मजहब के खिलाफ नारे लगाये।

इस घटना की तीखी प्रतिक्रिया हुई। भोपा थाना क्षेत्रा में पंचायत से लौट रहे लोगों पर हमला किया गया। दर्जनों ट्रैक्टर गंग नहर में फेंक दिये गए। मोटरसाइकिलों में आग लगा दी गयी। मौके पर पुलिस वाले थे, लेकिन वे भाग खड़े हुए। इस घटना में चार मुसलमान और तीन हिन्दू मारे गये जाहिर है कि यह दोनों पक्षों के बीच टकराव था, एकतरफा हमले की खबर स्थानीय अखबारों ने प्रकाशित किया था। इसके बाद अफवाहों का बाजार गर्म हो गया। सभी अल्पसंख्यकों को दोषी बताकर उन पर हमला करने के लिए उकसाने वाले सक्रिय हो गये। नतीजतन दर्जनों गाँवों में अल्पसंख्यकों पर हमले हुए। उनकी जान–माल का काफी नुकसान हुआ।

प्रशासन शुरू से सख्ती करता तो पंचायतों को रोक सकता था। उसका इकबाल होता तो कवाल में हुई हत्या की घटनाएँ आपराधिक रिकार्ड भर होतीं, लेकिन उसकी सुस्ती और बदनीयती ने इसे मजहबी लड़ाई में बदल जाने दिया... बारूद इकट्ठा करने वाले तो मौके की ताड़ में थे। उन्होंने ऐसा जहर फैलाया कि लोग अपना घर छोड़ने को मजबूर हो गये।

मुजफ्फरनगर में हुई हैवानियत का हासिल है–– लगभग 50 मौतें और 50 हजार बेघर। ये ऐसे बदनसीब लोग हैं जिन्हें अपने पुश्तैनी घर से महज कुछ किलोमीटर दूर पनाह लेनी पड़ी है...इन बेघरों के लिए जिले में करीब दस राहत शिविर स्थापित किये गये हैं। जिंदगी अजब मोड़ पर है। मेहनत और ईमान की खाने वाले अचानक खैरात पर पलने वाले बन गये। शिविरों में खाना है, पानी है, दवा का इंतजाम है... ऐसी मेहरबानी सरकार ने उन पर पहले कभी नहीं की। लेकिन दहकते तंदूर में इतनी आग कहाँ कि सारी फिक्र राख हो जाए... ये बेजारी तो बस बच्चों में है या परिंदों में... खेल में मशगूल बच्चों ने दुख में भी सुख ढूँढ लिया है, लेकिन बड़ों के लिए मुस्करा पाना बच्चों का खेल नहीं है। जोला गाँव में लगे राहत शिविर में 38 गाँवों के 6000 लोगों ने शरण ले रखी है। हर किसी के पास दर्द से डूबी कहानी है। लाख गाँव के मोहम्मद अख्तर ने 8 सितंबर की हिंसा में अपनी पत्नी, पिता और भाई को खो दिया, वे उस मंजर को याद करके काँप जाते हैं। कुछ यही हाल फुगाना गाँव की शबनम का भी है। उनका कुनबा किसी तरह हत्यारों से बचकर भाग आया। उन्हें यकीन नहीं हो रहा कि जिनके साथ रात–दिन का संग–साथ था, उन्होंने ऐसा किया।

शरणार्थी शिविरों के ऐसे दृश्य इस इलाके में कभी नहीं देखे गए। 1947 के बँटवारे के समय भी नहीं। हकीम सैफुद्दीन बताते हैं कि तब तनाव तो था, लेकिन आपसी रिश्ते जस के तस थे। हिंदू और मुसलमान एक दूसरे के शादी–ब्याह में खुशी–खुशी शरीक होते थे। आपसदारी में कोई कमी नहीं आयी थी, हालाँकि कुछ गुंडे–मवालियों ने कोशिश जरूर की थी। जाहिर है, अपने ही घर में शरणार्थी बनने को मजबूर लोगों के लिए न लोकतंत्रा का कोई मतलब रह गया है और न ही विकास का। अपना घर छोड़कर राहत शिविरों में रहने को मजबूर लोगों के लिए सबसे जरूरी है जान–माल की हिफाजत। जो सरकार लोगों की जान–माल की हिफाजत की गारंटी नहीं कर सकती, उसके होने या न होने में कोई फर्क नहीं है।

बहरहाल, इस किस्से का एक दूसरा पहलू भी है। कमालपुर गाँव के रैदास आश्रम में कवाल, बसी और पलड़ा गाँव के 385 दलितों ने शरण ले रखी है। इनमें महिलाओं और बच्चों की भी बड़ी तादाद है। 7 सितंबर को हुई हिंसा की प्रतिक्रिया से डरकर ये अपना गाँव छोड़कर भाग आये। ये लोग मुस्लिम जमींदारों के खेतों में काम करते थे। भय इनके चेहरों पर साफ दिख रहा है। गाँव छोड़कर भागी कविता कहती हैं कि उन्हें धमकी दी गयी। भागते नहीं तो काट डाले जाते। खास बात ये है कि रविदास आश्रम में सरकारी राहत 15 सितंबर को ही पहुँच पायी। इसके पहले करीब एक हफ्ता स्थानीय लोगों के सहारे कटा। आश्रम में लगी डॉ. अंबेडकर की मूर्ति हैरान है कि आजादी के 65 बरस बाद भी दलितों पर सरकार की नजर सबसे आखिर में पड़ती है।

वैसे, उजड़े हुए लोगों में एक खास समानता है। राहत शिविरों में रहने वाले सभी गरीब ही हैं। यही नहीं, वे आम तौर पर या तो दलित हैं या पिछड़ी कही जानी वाली जातियों के लोग। फिर चाहे वे हिंदू हों या

मुसलमान।

वैसे, पश्चिमी उत्तर प्रदेश के ग्रामीण जीवन में हिंदू–मुस्लिम तनाव का यूँ हिंसक शक्ल लेना इतिहास को उलटने जैसा है। उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री से लेकर भारत के प्रधानमंत्री के पद तक पहुँचे चरण सिंह ने इस इलाके की खेतिहर जातियों का मजबूत राजनीतिक गठबंधन बनाया था, जिसमें धार्मिक भेदभाव की जगह नहीं थी। उनके निधन के बाद सिसौली गाँव के चौधरी महेंद्र सिंह टिकैत इस इलाके के सबसे बड़े किसान नेता बनकर उभरे। उनकी नजर में भी किसान बस किसान था। फिर चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान। 1 मार्च 1987 को शामली में पुलिस की गोली से जिन दो किसानों ने जान गँवाई उसमें एक सिंभालका गाँव के अकबर अली थे तो दूसरे निसाड़ गाँव के जयपाल चौधरी। इन दिनों राहत के काम में जुटे, यूनियन के राष्ट्रीय संचालक हाजी गुलाम मोहम्मद को आज भी याद है कि टिकैत के आंदोलन में कैसे हर–हर महादेव और अल्ला हो अकबर का नारा एक साथ लगता था।

सिसौली गाँव में आज भी शहीद किसानों की याद में 24 घंटे किसान ज्योति जलती है। गाँव में निर्माणाधीन किसान संग्रहालय में चरण सिंह और महेंद्र सिंह टिकैत के साथ–साथ दक्षिण के किसान नेता प्रो. नाजुंदास्वामी की मूर्ति स्थापित करना बताता है कि भारतीय किसान यूनियन, राष्ट्रीय स्तर पर किसान आंदोलन खड़ा करने की ख्वाहिश रखती थी, लेकिन मुजफ्फरनगर के साम्प्रदायिक तनाव ने उसकी अपनी जमीन खिसका दी है। यूनियन के राष्ट्रीय अध्यक्ष नरेश टिकैत की बैठक में मुस्लिम भी बराबर से हुक्का गुड़गुड़ा रहे हैं लेकिन उन्हें नुकसान का बखूबी अहसास है। वे मानते हैं कि दंगे से किसान यूनियन को सबसे ज्यादा नुकसान हुआ है। हिंदुओं और मुसलमानों को साथ लाना आसान नहीं होगा।

वैसे, जाट बहुल गाँव और बालियान खाप के जाटों की राजधानी कहलाने वाले सिसौली के किसी अल्पसंख्यक ने गाँव नहीं छोड़ा। नरेश टिकैत ने उन्हें सुरक्षा का आश्वासन दिया है जिस पर अल्पसंख्यकों को पूरा भरोसा है। पर सच्चाई ये भी है कि खुद नरेश टिकैत पर दंगा भड़काने का आरोप लगा है। 7 सितंबर की पंचायत के आयोजकों में वे भी थे, जिसके बाद हिंसा शुरू हुई। हालाँकि वे सारा दोष प्रशासन पर मढ़ते हैं। बहरहाल, मुजफ्फरनगर में अगर प्रशासन असफल हुआ तो राजनीतिक पार्टियों की असफलता और भी बड़ी है, जिनके नेता विचारधारा पर नहीं, धर्म के आधार पर मंच चुनते हैं।

मुजफ्फरनगर के दंगे के पीछ सियासी कोशिशों का बड़ा हाथ माना जा रहा है। जाहिर है, दंगे की आग पर राजनीति की रोटी सेंकने वाले उम्मीद से हैं। प्रेस क्लब के अध्यक्ष अनिल रॉयल साफ कहते हैं कि इससे भाजपा को फायदा होगा। भड़काऊ वीडियो शेयर करने के आरोप में गिरफ्तार भाजपा विधायक संगीत सोम पर राष्ट्रीय सुरक्षा कानून (रासुका) लगा है। वे ठाकुर हैं। भाजपा ने सीधे विरोध न करके उनकी जाति की खाप पंचायतों को आगे किया है। कहा जा रहा है कि संगीत

डॉ. दाभोलकर की शहादत को सलाम

vaèkJ)k fueZoyu lferh ds vè;{k] izxfr'khy vkSj oSKkfud psruk ds izpkj&izlkj esa th&tku ls tqVs lkekftd dk;ZdrkZ MkW- ujsanz nkHkksydj dh dk;jkuk gR;k 'kksd] {kksHk vkSj vkØks'k ls Hkj nsus okyh ?kVuk gSA

vUèkfo'okl] vkSj gj rjg ds <ksax&ik[kaM ds f[kykQ ,d etcwr vkUnksyu ds iz.ksrk dh gR;k ml iq.ks 'kgj esa gqbZ tks ,d yacs le; ls lekt lqèkkj vkSj iqjksxkeh fparu ijaijk dk dsUnz jgk gSA ujsanz nkHkksydj egkjk"Vª vaèkJ)k fueZwyu dkuwu tks egkjk"Vª foèkku lHkk esa o'kks± ls yfEcr gS] mls ikl djokus dh eqghe pyk jgs FksA

ujsanz nkHkksydj ,d vfHk;ku u dsoy iksaxkiafFk;ksa vkSj èkeZ dk èkUèkk djus okys VcVksjus okyksa dks pqHk jgk Fkk] cfYd vUèkfo'okl dks c<+kok ns dj djksM+ksa dk dkjksckj djus okys& tknwVksuk djus] Hkfo";ok.kh djus] iksFkh&irjk dk;pus] vks>kbZ&lks[kkbZ djus vkSj rjg&rjg dh Bxh&csbZekuh esa yxs èkUèkscktksa ds fy;s Hkh vk¡[k dh fdjfdjh cuk;k FkkA bl chekj&foÑr yksdra=k esa vaèkJ)k feVkus dk ne rks ugha gh gS] ;gk¡ mu rkdrksa dh fgQktr dh Hkh mEehn ugha dh tk ldrh] tks izxfr'khy psruk QSykus vkSj yksxksa dks vaèkJ)k ds nyny ls fudkyus esa lefiZr gksaA

ge ujsanz nkHkksydj dh 'kgknr dks lyke djrs gSaA fopkjksa dh gR;k ugha gks ldrhA Hkxr flag us dgk Fkk&& ^gok esa jgsxh esjs [;ky dh fctyh] ;s eq'rs [kkd gS Qkuh jgs] jgs] u jgs*—— mudk cfynku ns'k Hkj esa vaèkJ)k fueZwyu ds dke esa yxs yksxksa dk ekxZ iz'kLr djsxkA

सोम को हिंदू लड़कियों की रक्षा के लिए सताया जा रहा है। इस बहाने जाति और धर्म की गोलबंदी को गरमाये रखने की कोशिश जारी है।

बहरहाल, एक हकीकत ये भी है कि दंगे के दौरान जिले के बड़े इलाके में लोगों ने सौहार्द का झण्डा गिरने नहीं दिया। यूसुफ और उनका कुनबा भी इसी उम्मीद का सुबूत है। शहर के करीब पुरकाजी कस्बे के आतिशबाजों का ये खानदान पुश्तों से दशहरा के लिए रावण का पुतला बनाता है। इस बार माहौल बिगड़ने के बावजूद काम रुका नहीं है। पुरकाजी जैसे कस्बों ने तनाव को घुसने नहीं दिया। यहाँ के लोगों को अपने दमखम पर पूरा भरोसा है। यही नहीं, कई गाँवों के रसूखदार लोग शिविरों में जाकर उन्हें घर वापस आने के लिए मना भी रहे हैं। कुछ मान भी गये हैं। उम्मीद की जा रही है कि निष्पक्ष कार्रवाई हालात में तेजी से सुधार लाएगी। नीयत साफ हो तो मुजफ्फरनगर फिर से मुहब्बतनगर बन सकता है। आखिर इसी जिले में कैराना भी है जिसने संगीत के किराना घराने को जन्म दिया। भारत रत्न पं. भीमसेन जोशी इसी घराने के हैं। उनके पुराने सुरों में मुजफ्फरनगर का ताजा दर्द महसूस किया जा सकता है।

''हम ना मुसलमान हैं, ना हिंदू, हम तो गरीब हैं...''

—दिलनवाज पाशा

जफ्फरनगर दंगों ने हजारों लोगों को शरणार्थी बना दिया। राहत कैंपों में पड़े लोगों की दुनिया चंद घंटों में बदल गयी। शामली के लिसाढ़ गाँव के मोहम्मद यासीन काँधला के एक राहत शिविर में रह रहे हैं। यासीन राहत कैंपों के शरणार्थियों की कहानी बयाँ कर रहे हैं। उनकी बातें समाज और सरकार के सामने कई गंभीर सवाल खड़े करती हैं।

वे कहते हैं, ''हमने कभी नहीं सोचा था कि हमारे गाँव लिसाढ़ में झगड़ा हो जाएगा। गाँव में झगड़ा कहाँ था, ये तो उन्होंने किया। इसमें हमारी क्या गलती थी, कवाल (जहाँ से दंगे की शुरुआत हुई) से हमारा क्या जोड़। ये ही तो जोड़ था कि वे भी मुसलमान हैं और हम भी। लेकिन हमारे पास एक बीघा जमीन तक नहीं। आप ही लोगों की मजदूरी की और आपने ही मारा।''

उनकी बातों से उनका दर्द झलकता है, ''जो बाड़ ही खेत को खाने लगे तो फिर खेत का क्या हो? लुहार उनका काम करे थे, तेली उनकी रजाई भरे थे, लोग उनके नौकर लगे थे, धोबी उनके कपड़े धोए थे। अगर बराबर की जात होती तो रिश्तेदार संभाल लेता। हमारे तो रिश्तेदार भी ऐसे कि साँझ की रोटी ना खिला सकें।''

''राज उनका, गाँव उनका''

''... उनके हाथ में कानून है। राज उनका, गाँव उनका, उन्हीं की चलेगी। जब उनकी ही चलेगी तो अब हमें ऐसी जगह भेज दो, जहाँ उनकी ना चले और हम अपनी कर खा लें। वो कहते हैं कि तुम तो पाकिस्तानी हो। क्रिकेट खेलते हुए एक गरीब बच्चे की गेंद अच्छी पड़ गयी तो कहते हैं कि तू तो पाकिस्तानी वसीम अकरम हो रहा है।''

यासीन देश के कानून पर भी सवाल उठाते हैं, ''ये कह रहे हैं कि ये तो सन 47 से हो रहा है। हमें एक पैसे का कानून का सहारा नहीं। यहाँ जो हमें मिल रही है, वो जातीय हमदर्दी है। हमारे इस्लाम में होने के नाते लोग हमारी मदद कर रहे हैं। व्यापारी लोग खाने के लिए भेज रहे हैं। नहीं तो हमारा कौन है।''

''हमारा दर्द तुम्हारा दर्द कैसे''

''ये कौम का अहसान है कि हम यहाँ पड़े हैं। हुकूमत ने क्या हमारा पता लिया। मुख्यमंत्राी आये और बोले कि मुझे दर्द है। तुम्हारा दर्द हमारा दर्द। जरा बताओ कि हमारा दर्द तुम्हारा दर्द कैसे? तुम महल में हो और हमारी झोपड़ी भी फुँक गयी। हम तो बैंया हैं, बैंया का घर ढहा दिया।''

वह पूछते हैं कि आखिर उन्हें क्यों बेघर किया गया, ''हम किसी का विरोध नहीं करते। नहीं कहते कि उन्हें पकड़िए, सजा दीजिए। किसी ने जाट मारे, किसी ने मुसलमान मारे। लेकिन हमने किसे मारा? हमने तो कभी उनकी ओर बेअदबी की निगाह से नहीं देखा और

हम मार दिये गये। घर से बेघर कर दिये गये।''

यासीन की बीबी के पेट में बच्चा था, जो अब नहीं रहा, '' मेरी बीवी के पेट में बच्चा था। लात मार कर खत्म कर दिया। मुझे नहीं पता कि वो बच्ची थी या बच्चा था। मेरी दाढ़ी खींच दी, किसी के तबल मार दिया। एक नब्बे साल के बुड्ढे को जिंदा जलाया। उसे क्यों मार दिया। वो तो चार दिन रोटी ना मिलती तो खुद ही मर जाता? ये क्या था कि हमारे बच्चों को मार दिया।''

''...तो लिसाढ़ वालों को क्यों मारा?''

वह आगे कहते हैं, ''सुना कि कवाल में बवाल था। लेकिन कवाल और हममें क्या जोड़। हमें तो ये भी नहीं पता कि कवाल हैं कहाँ, वहाँ कौन लोग रहते हैं। तो लिसाढ़ वालों ने हमें क्यों मार दिया। एक डर होता है, एक दहशत होती है। 1947 की दहशत आज तक दिमाग से नहीं निकली थी हमारे बुड्ढों के, हमें भी डराते थे। क्या ये दहशत हमारे बच्चों के दिमाग से निकल पाएगी?''

''वे ये क्यों कहते हैं कि तुम्हारा क्या हैं यहाँ? हमारा क्या है भई, पचास–पचास गज के घर, और क्या? रोज सुबह उठते थे। दिन भर नमस्ते चौधरी जी, और ठीक हैं चौधरी जी। बस यही दुआ सलाम थी हमारी, जो खत्म कर ली उन्होंने। अगर कोई भी, एक भी आदमी ये कह दे कि लिसाढ़ में हमने किसी की ओर एक उंगली भी उठाई तो हम अपने बच्चों को लेकर चलते हैं, उन्हें गोली मार देना।''

''क्या राम उनका ही है...''

उनकी आवाज में दर्द है सब कुछ खोने का, ''हम गरीब हैं, रोजी छूट गयी तो गये, बीमार हुए तो मर गये, औरत बच्चा जनने में बीमार हुई तो मर गयी। हमें उन्हीं लोगों का तो सहारा था। वो भी हमसे छिन गया। रात को रात काट रहे थे वो भी छिन गया। ये क्या था? हमें ये लग रहा है कि हमारा कुछ था ही नहीं लिसाढ़ में। हम पुश्तों से रहते चले आ रहे थे वहाँ और एक ही दिन में उजड़ गए।''

वह सवाल उठाते हैं, ''हम हिंदुस्तान के मुसलमान हैं कि पाकिस्तान के? हम तो ना मुसलमान हैं ना हिंदू, हम तो गरीब हैं। इंदिरा ने कहा था कि गरीबी हटाओ। हट गयी गरीबी। भाजपा कहती है रामराज लाएँगे। क्या राम उनका ही है? हमारा नहीं है। जब हम उसके राज में हैं तो राम हमारा भी है।''

''सोते–सोते रात को भागना पड़ा''

''हमें सोते–सोते को रात को भागना पड़ा। बस यही आवाज आ रही थी कि मार लो–मार लो, लगा दो आग इनमें। पकड़ो भाग गये। हमारे घरों में आग दे दी। भले ही मेरा घर बच गया हो लेकिन वो मेरा कहाँ रह गया। मुझमें इतनी हिम्मत नहीं कि अपने घर को अपना कह दूँ। ये कह दूँ कि मेरा घर है, मेरा गाँव हैं, क्यों छीन लिया मेरा अधिकार ये, क्यों छीन ली मेरी नागरिकता। बस इसका जबाव दे दो।''

अब कैंप में रह रहे हैं चिंताओं का बड़ा बोझ, ''कहाँ ले जाएँ अपने बच्चों को। किसका सहारा, कोई सहारा नहीं। अब मजदूरी भी नहीं कर सकते। आगे कौन काम देगा। जहाँ जाएँगे, वहाँ लोग कहेंगे तुम तो खराब हो, जो बढ़िया होते तो तुम्हारे गाँव के लोग तुम्हें क्यों काटते, क्यों निकालते। कागज जल गये, नागरिकता का प्रमाण नहीं दे सकते।''

और आखिर में यासीन एक सवाल करते हैं, ''हमें तो बस ये जबाव दे दो कि दुनिया हमसे पूछे कि तुम क्यों सताये गये तो हम क्या जबाव दें?''

(बीबीसी से साभार)

द्र सरकार का गृह मंत्रालय कहता है कि अखिलेश राज में सौ से अधिक छोटे–बड़े दंगे हो चुके हैं। कैसे बार–बार दंगे हो रहे हैं? क्या कर रही है, राज्य सरकार? और अगर राज्य सरकार विफल है, तो केंद्र क्यों चुप व असहाय है? क्या केंद्र और राज्य सरकार की जिम्मेदारी महज इससे खत्म हो जाती है कि विपक्ष को दोषी बता दो। अगर विपक्ष दोषी है, तो कार्रवाई से किसने रोका है? केंद्र के गृहमंत्री यह सूचना दे रहे हैं कि अभी और दंगे होंगे। गृहमंत्री का काम सूचना देना है या कार्रवाई करना? दरअसल पेंच यही है।

मुज्जफरनगर के दंगे पर एक नोट

–प्रो. अजय माहोरकर

mÙkj izns'k ds eqTtQjuxj esa vxLr&flrEcj esa gq, lkEiznkf;d naxksa us vfèkdka'k Hkkjrh;ksa dks gSjr esa Mky fn;k gSA izsl esa Nih dqN [kcjksa ds vuqlkj] ;g bykdk 1857 ds dky ls gh lkEiznkf;d fgalk ls eqDr jgk gSA gkyk¡fd rgydk esa Nih ,d [kcj esa ;g mYys[k fd;k x;k fd lkEiznkf;d naxs HkM+dus ls dqN eghus igys rd ogk¡ ekgkSy dks lkEiznkf;d jax nsus okyh dqN ?kVuk,¡ ?kV jgh FkhaA flrEcj ds vkf[kj esa tc eSaus bXuw vkSj Hkxr flag iq[rdky;] 'kkgnjk ds dqN fo|kfFkZ;ksa ds lkFk yksuh ¼xkft;kckn½ flFkr jkgr f'kfoj dk nkSjk fd;k] rc naxk ihfM+rksa esa ls dqN yksxksa us eq>s crk;k fd e`rdksa dh la[;k ljdkjh vk¡dM+ksa ls dkQh T;knk gks ldrh gSA muds vuqlkj eqt¶Qjuxj uxj ftys ds vyx&vyx xkaoksa esa vHkh Hkh dqvksa vkSj ugjksa esa dqN vkSj yk'ksa fey ldrh gSaA

naxksa ds rkRdkfyd dkj.kksa dks ysdj rhx;h [kcjksa ds ewy :i ls rhu laLdj.k gSaA ckny xk¡o dh [kcj ds vuqlkj ,d ekewyh ?kVuk uk;dksa ds nks nyksa ds chp ekjihV esa cny x;hA ;g >xM+k rc dkcw ls ckgj gks x;k tc bl ?kVuk us èkkfeZd jaxr vf[r;kj djuk 'kq: dj fn;kA ?kVuk ds nwljs laLdj.k ds vuqlkj dcky esa ,d eqfLye yM+ds us ,d fganw tkV yM+dh ds lkFk NsM+[kkuh djds mls ckj&ckj ijs'kku fd;kA mlds Hkkb;ksa us bl yM+ds dks ekj Mkyk vkSj tc mUgksaus Hkkxus dh dksf'k'k dh rks cnys esa eqfLyeksa dh ,d HkhM+ us mUgsa Hkh ekj MkykA mlds rRdky ckn ds fnuksa esa ;g ?kVuk fgalk vkSj izfrfgalk ds pØ esa rCnhy gks x;hA ,slh lwpuk gS fd igyh ?kVuk ds ckn iz'kklu dkjZokbZ djus esa vlQy jgkA

murhu ukStokuksa dh ekSr ds eqn~ns ij nksuksa lEiznk; ds usrkvksa dh vksj ls uQjr QSykus okys Hkk'k.kksa dk flyflyk 'kq: gks x;kA blh rkSj ij fgUnqopkrh yksxksa }kjk forfjr QthZ lhMh vkSj ,l,e,l bR;kfn ls QSyk;h x;h vQokgksa us lkaiznkf;d ?k`.kk ds igys ls gh xeZ ekgkSy dks vkSj [kjkc djus esa ;ksxnku fn;kA bu ?kVukvksa dks ysdj vk;ksftr dbZ xkaoksa dh rksdM+h egkiapk;rksa us xqLls dks HkM+dkus dk dke fd;kA blh ds ckn xzkeh.k bykdksa esa fgald okjnkrsa 'kq: gqb±A fu'p; gh blds ckn vc izeq[k jktuhfrd ikfVZ;k¡ blesa 'kkfey gks x;h gSaA vkSj rks vkSj] mÙkj izns'k ljdkj }kjk LFkkuh; Hkktik foèkk;d dks jk"Vªh; lqj{kk vfèkfu;e ds rgr vkjksfir djus ds f[kykQ vius fojksèk ntZ djkus ds fy;s ljèkuk ¼esjB½ esa 40 xk¡oksa dh egkiapk;r dk vk;kstu fd;k x;kA tc iqfyl ml txg ij igq¡ph rks bl vQokg ds QSyus ls fd ,d LFkkuh; yM+dk tks iqfyl dk;ZokbZ esa ?kk;y gks x;k Fkk og ej x;k gS] xqLlk;h HkhM+ us iqfyl okguksa vkSj nwljs vU; okguksa esa vkx yxk nhA blh chp ,d ehfM;k fLVax dk;ZokbZ ls ;g lwpuk vk;h fd mÙkj izns'k ljdkj ds ,d ea=kh us lhèks naxk izHkkfor {ks=k ds iqfyl LVs'ku ds izHkkjh dks Qksu djds ;g vkns'k fn;k Fkk fd fdls fxj¶rkj djuk gS vkSj fdls NksM+ nsuk gSA ehfM;k ls gkfly [kcjsa gesa ;g Hkh lwfpr djrh gSa fd lektoknh ikVhZ ds usr`Ro okyh mÙkj izns'k ljdkj us Hkktik vkSj ch,lih tSlh ikfVZ;ksa ds foèkk;dksa vkSj lnL;ksa dks gh fxj¶rkj fd;k tcfd [kqn lik ds lnL;ksa ij Hkh naxks dks gok nsus vkSj ljdkj }kjk bl nkSjku i{kikriw.kZ O;ogkj djus dk bYtke gSA

Åij eSaus eqTtQjuxj naxksa dh eq[;èkkjk ehfM;k ds }kjk is'k dh x;h dqN rLohjksa dks ,d lkFk is'k djus dk iz;kl fd;k gSA ;g rLohj ¼vkus okys jkT; pqukoksa vkSj mlds ckn gksus okys jk"Vªh; pqukoksa ds en~ns ut+j½ Hkkjr dh izeq[k jktuhfrd ikfVZ;ksa dh naxksa dk ykHk mBkdj vius jktuhfrd Qk;ns ds fy;s fganw ;k eqfLye fuokZpu {ks=kksa ij viuh idM+ cukus dh izo`fÙk dks Hkkn'kkZrh gSA fu'p; gh dqN lekpkj ekè;eksa us tcFkkuk izHkkjh dk lk{kkRdkj fn[kkdj ;g js[kkafdr fd;k fd lektoknh ikVhZ ds ea=kh us naxs dks fu;af=kr djus dh dkjZokbZ esa lhèkk gLr{ksi fd;k] rks ogha mUgksaus ;g fuyZTt eqík js[kkafdr djus dk iz;kl Hkh fd;k fd gj ikVhZ ,slk gh djrh gS vkSj 2002 esa ujsUnz eksnh us Hkh ;gh fd;k FkkA esjh jk; esa ;g dVqrkiw.kZ fVIi.kh vkt Hkkjr esa igpku vkSj lkEiznkf;d jktuhfr ds ,du;s vkSj ?kfV;k Lrj dh Lohdk;Zrk gSA blesa ,d cgqfu;kn èkkj.kk fufgr gS fd jktuhfr dk eqdln flQZ lÙkk gkfly djuk gS vkSj vkt lÙkk dk vfHkizk; fdlh Hkh rjhds ls ¼ftlesa fgalk Hkh 'kkfey gS½ lÙkk ds xfy;kjksa esa igq¡puk gSA fu'p; gh ;g ,d ,slh voèkkj.kk gS ftls vkt lHkh jktuhfrd ikfVZ;k¡ lk>k djrh gSa ftuesa dkeiaFkh Hkh 'kkfey gSaA rLyhek ulhju izdj.k esa lhih,e ds iksfyr C;wjks ds lnL; ds izfl) dFkrO; dks ;kn djsa fd ßD;k vkidks eqfLye dksV ugha pkfg;sAÞ

bl ckr dks vuns[kk fd;k tkrk gS fd jktuhfr dk dke yksxksa ds mu eqn~nksa dks mBkuk Hkh gS ftuls vius jkstejkZ ds thou&la?k"kksa+ esa mudk lkeuk gksrk gSA blds erycgS fd fookl vkfndM+sukjksa dks uflQZ fookl ds vanfuZfgreqn~nksa&fopkjèkkjk] fl)kar vkSj fopkj&foe'kZ ds lkFk lEiUu djuk gS cfYd tudkjZokb;ksa ds ekè;e ls mls yksxksa ds chp Hkh ys tkuk gSA bl dk;Z dks turkaf=kd rjhds ls lEiUu djus dk eryc yksxksa dks tehuh Lrj ij lkEizkf;drk@igpku dh jktuhfr ds }kjk ykecan djuk ugha gS] cfYd muds lkFk ukxfjdksa vkSj balkuksa dh rjg 'kkfey gksuk gS tks u flQZ vius vklikl dh rsth ls cnyrh nqfu;k dks le>us ds fy;s la?k"kZ jrgSa] cfYd lkFk&lkFk vius vfLrRo cpk;s j[kus dk Hkh iz;kl djjgs gSaA tSls xk;èkhth us vius jpukRed dk;ZØeksa ds ekè;e ls fd;k FkkA ;g og dfBu dk;Z gS tks ikfVZ;ksa] muds dk;ZdrkZvksa vkSj muds leFkZdksa dks djuk gSA ;g dk;Z tc pqukoh ekgkSy ugha gksrk rc Hkh vkSj pqukoh vfHk;ku ds rkSjku Hkh djuk gS] rkfd fookl ds ml eqís dks LoLFk] jpukRed vkSj leFkZ dk;Z{ks=k esa lEiUu fd;k tk ldsA vkS|ksfxd fo'o ds dkn dh ftl nqfu;k esa ge jgrs gSa] mlds lUnHkZ esa ;gdke vkSj Hkh eqf'dy gks tkrk gS] tgk¡ ge ls lqnwj orhZ nqfu;k ds vyx&vyx fgLlksa esa ?kVus okyh ?kVuk;sa ehfM;k vkSj lapkj rduhd ds ekè;e ls gesa izHkkfor djus dh izo`fr j[krh gSa vkSj lkFk gh gesa igpku vkSj igpku ls lEcafèkr jktuhfr dh :<+hokrh èkkj.kkvksa dh rjQ vklkuh ls iyk;u ds fy, Hkh izksRlkfgr djus dh izo`fÙk j[krh gSA tkfgj rkSj ij ;gk¡ tudk;ks± ds u;s rjhds bZtkn djus ds vko';drk gSA

D;k lkEizkf;drk ds bfrgkl ij fy[kk x;k bfrgkl&ys[ku bl pqukSrh dk lkeuk djus esa l{ke gS\ mifuos'kh vkSj lkezkT;okrh bfrgkl&ys[ku ijEijk esa tkfr] uLy] fyax] oxZ bR;kfn dh :<+hokrh èkkj.kk dks izksRlkfgr djus dh izo`fr gksrh gSA bl le> ds lkFk eSdkys dh voèkkj.kk] uLy bR;kfn dh :<+hokrh voèkkj.kk dks fQj ls QSykus dh izo`fr dks izksRlkfgr djrh gSA blh rjg mifuos'kh ekuo&foKku ds tkfr] uLy bR;kfn ls izHkkfor bfrgkl&ys[ku :<+hokrh voèkkj.kk dks leqnk;ksa] igpkuksa bR;kfn dh izo`fr ls eqpkcyk djus esa csgn de enn djrk gSA ftl le; jk"V^ªokrh vkSj jk"V^ªokrh ekDlZokrh er ¼fcfiupanz bR;kfn½ ds bfrgkl ys[ku us Hkkjrh; jk"V^ªokn dh :<+hokrh voèkkj.kk ls la?k"kZ djus ds fy;s dkQh dqN fd;k] fQj Hkh og mls ml iwoZèkkj.kk ls eqDr ugha j[k ldk tks dkLro esa lÙkk ds fy;s la?k"kZ dk bfrgkl jgk gSA ;g ,d ,slk vkèkkj gS tks :<+hokrh voèkkj.kk dkyh lksp dks fQj ls iSnk djus esa enn djrk gSA ;g iz.kkyh&lEcafèkr eqís dks mHkkjrk gS D;ksafd blesa ;grF; 'kkfey gS fd ,d bfrgkl dkj ,slh iwoZèkkj.kkvksa ds f[kykQ la?k"kZ djus ds fy;s ekuodkfr&foKku vkSj ekuo&foKku {ks=k dh miyfCèk;ksa ¼mu ls Hkh vkxs tgk¡ mifuos'kh voèkkj.kkvksa ds f[kykQ la?k"kZ fd;k tkrk gS½ ls vkxs tkrk gSA Kkusanz ikaMs; us] ftUgksaus mÙkj izns'k esa lkEizkf;drk ds bfrgkl ij dkQh dke fd;k gS] orZeku rkSj ds lkEizkf;d naxksa ds Nkuchu ds ysdj 1991 esa bZihMCY; wesa ,d ys[k fy[kk FkkA mUgksaus fcgkj esa 1989 esa Hkkxyiqj esa gq, lkEizkf;d naxksa ds nq"ifj.kkeksa ds dkjs esa ih;wMh vkj dh rF;kUos'kh Vhe ds lnL; ds rkSj ij vius vuqHkoksa dks lk>k fd;kA mUgksaus ihfM+rksa dks fo'ks"k rkSj ls vkSjrksa dks vius vuqHkoksa ds dkjs esa dkr djus esa vfuPNqd ik;kA fo'ks"k rkSj ls tc os mu t?kU; vijkèkksa]tSls &naxksa ds lkFk&lkFk cykRdkj tSls vijkèkksa dk f'kdkj gksa] A mudk lkeuk [kkeks'kh] [kfy'k vkSj 'kadk ls gqvk ftl s bfrgkl ds iz.kkyh&lEcaèkh ifjizs{; esa tehuh Lrj ls le>uk t:jh gSA mUgksaus rdZ fn;k fd ;g gesa mRFkyh le:irk vkSj :<+hokrh voèkkj.kk ls nwj ys tkrh gSA gkyk¡fd bl txg lqfer ljdkj gesa lkoèkku djrs Sgafd ;gk¡ Åij ls Fkksik x;k bfrgkl Hkh gS vkSj gesa lkEizkf;drk dk eqpkcyk djus ds fy;s ,d Lora=k vkSj turkaf=kd jk"V^ª dh Hkwfedk dks vuns[kk ugha djuk pkfg;sA

fo|kfFkZ;ksa ds lkFk ykshu flFkr 'kj.kkFkhZ f'kfojdk esjk rkSjkml le; gqvk tc fgalk dh dkjrkrksa dh lwpuk, ¡ vHkh Hkh vk jgha FkhaA ge muvknfe;ksa vkSj vkSjrksa ls feys ftUgksaus vius vuqHkoksa dks gekjs lkFk lk>k fd;kA ge f'kfoj esa O;kIr izR;{k Hk; dks egIwl dj lds FksA naxk izHkkfor yksxksa dh t:jrksa dk irk yxkus vkSj viuh {kerk Hkj ;ksxnku djus ds dkn geus vkil es bl dkjs esa dkrphr dh fd gesa ls gj dksbZ bl ifjfLFkfr dks dSls le>rk gSA ml lew gesa lHkh ;dvksa dh lksp èkeZfujis{k Fkh vkSj ihfM+r yksxksa ds izfr mlesa xgjh lgkuHkwfr fn[khA dqN fo|kfFkZ;ksa us f'kfoj ds vklikl dh xUnxh dks lkQ djus ds dke dks vius gkFk esa ys fy;kA fdLFkkiu dh bl ifjfLFkfr esa gjNksVh&cM+h lgk;rk emnxkj gksrh gS vkSj [kklrkSj ij lkaizkf;drk;js dks udkjrs gq, lPps fny ls izdV dh x;h gennhZ HkhA dknes irk pyk fd jkgr f'kfoj es 'kkfn;k¡ Hkh gqb± vkSj mlesa lEiUu; fganw&eqfLye fuokfl;ksa us Hkh Hkkxhnkjh dh A

tc jktuhfr dk mn~ns';gj dher ij lÙkk gkfly djuk gks vkSj vklkuh ls thr gkfly djus ds fy, igys ls gh lekt esa tM+ tek;s tkfr vkSj èkeZ ds Vdjkoksa dks c<+kok fn;k tk; rks ,slh fgald ?kVuk, ¡ gksuk vfuok;Z gSA ;g gekjs ns'k ds fy, cgqr fpUrktud fLFkfr gSA bl ij jksd yxkuk t:jh gSA

साम्प्रदायिक राजनीति चुनाव के दौरान सबको सुहाती है। क्यों कांग्रेस ने राजीव गाँधी के कार्यकाल में अयोध्या मंदिर का ताला खुलवाया? क्या यह सब बोफोर्स और अन्य प्रकरणों से ध्यान हटाने के लिए था? याद रखिए शाहबानो प्रकरण। इसके बाद अयोध्या में ताला खुलना। एक समूह को खुश करने के लिए आप कानून बदलेंगे, तो कल दूसरा समूह भी माँग करेगा। क्या ऐसी रणनीति से देश चलता है? एक वर्ग शाहबानो प्रकरण पर सुप्रीम कोर्ट के फैसले से नाराज हुआ, तो दूसरे वर्ग को खुश करने के लिए आपने अयोध्या में मंदिर का ताला खुलवा दिया। इस रणनीति से तात्कालिक सत्ता या गद्दी भले ही मिले, पर दीर्घकाल में देश–समाज एक नहीं रह सकते।

इससे पहले लौट कर देखें, तो 1964 में राउरकेला का दंगा, 1967 में रांची दंगा, 1969 में अहमदाबाद दंगा, 1970 में भिवंडी दंगा, 1979 में जमशेदपुर दंगा, 1980 में मुरादाबाद दंगा, 1983 में असम के नेल्ली का दंगा, 1984 के दंगे, 1984 में भिवंडी दंगा, 1985 में गुजरात के दंगे, 1986 में अहमदाबाद के दंगे, 1987 में मेरठ के दंगे, 1989 में भागलपुर के दंगे, 1990 में हैदराबाद के दंगे, 1992 में मुंबई के दंगे, अलीगढ़ के दंगे, सूरत के दंगे, बाबरी मस्जिद प्रकरण, गोधरा प्रकरण, 2002 के गुजरात के दंगे और अब उत्तर प्रदेश में लगातार हो रहे दंगे।

दरअसल, इन दंगों के पीछे राजनीतिक दलों का खेल है। दंगों का सामाजिक ध्रुवीकरण अगर भाजपा के पक्ष में जाता है, तो कांग्रेस को भी इससे लाभ है। इसी तरह अब क्षेत्रीय दलों का भी इसमें गहरा स्वार्थ है। कांग्रेस का एक वर्ग बेचैन था कि भाजपा जल्द नरेंद्र मोदी को प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार घोषित करे, ताकि चुनावी लाभ के लिए पूरे देश में साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण किया जाय। इसका तात्कालिक लाभ यह होगा कि कांग्रेस के शासन में जो स्तब्ध कर देने वाले भ्रष्टाचार हुए हैं, अर्थव्यवस्था जिस दुर्दिन में है, नौकरियाँ जिस तरह खत्म हो रही हैं, महँगाई की मार से जिस तरह लोग तबाह हैं, ऐसे सवाल चुनावी मुद्दे न बनें।

(हरिवंश, संपादक, प्रभात खबर)

आस्था के नाम पर

–मीरा नंदा

च पूछें तो आसाराम की गिरफ्तारी एक घिसीपिटी कहानी है। यही न, कि एक और संत लोगों की नजरों से गिर गया, भला इसमें नया क्या है? क्या हम आये दिन साधू–संतो के ढोंग–पाखंड का भण्डाफोड़ होने के आदि नहीं हो गये हैं। शायद जॉर्ज ओरवेल ने बिल्कुल सही कहा था कि “हमें संतों को तब तक गुनहगार मानना चाहिए, जब तक कि वे बेगुनाह साबित न हो जाएँ” क्योंकि कोई भी अति–मानव संत कभी भी अपना भगवानपना नहीं छोड़ेगा। हमारे लिए शायद यही ठीक होगा कि हम इन पाखंडी महात्माओं की विकट महत्त्वाकांक्षाओं के दुखांत नाटक पर गहरायी से विचार करें और आगे बढ़ें।

फिर भी, अगर थोड़ा रुक कर इस बारे में सोचें तो आसाराम की गिरफ्तारी सिर्फ एक और संत के पतित होने भर का मामला नहीं है। यह घटना श्रद्धा और अंधश्रद्धा के बीच के बारीक फर्क को और साथ ही मौजूदा भारतीय समाज में धर्म, राजनीति और पैसे के आपस में पूरी तरह घुल–मिल जाने को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करती है।

आसाराम के ऊपर सोलह वर्षीय लड़की के साथ बलात्कार करने का जो आरोप लगा है, वह इस बात का भी सबूत है (अगर और अधिक सबूत जरूरी हो तो) कि अंधविश्वास और कुप्रथाओं के खिलाफ डॉ. नरेन्द्र दाभोलकर का संघर्ष आज भी कितना जरूरी है। उस लड़की को गुरू के पास झाड़–फूँक करके भूत भगाने के लिए लाया गया था। ताजा खुलासों के अनुसार आसाराम के सहयोगियों ने लड़की और उसके माता–पिता को विश्वास दिलाया था कि लड़की को भूत धर लिया है और गुरूजी इससे छुटकारा दिलाना जानते है। हमारे समाज में ये साधू–संत हर रोज इस तरह की अंधश्रद्धा या अंधविश्वास फैलाते रहते है और इसके जरिये लोगों का शोषण करते रहते हैं। इसी बुराई के खिलाफ डॉ. दाभोलकर और महाराष्ट्र अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति के उनके साथी लड़ रहे थे। इसी लड़ाई के कारण ही डॉ. दाभोलकर को अपनी जान तक गंवानी पड़ी।

आसाराम का मामला एक और बात का सबूत हैदृ (अगर और अधिक सबूतों कि जरूरत हो तो)दृकि भारत में राज्य, मंदिर और पूँजी–प्रतिष्ठान का गठजोड़ हमेशा और हर जगह कार्यरत है। आम तौर पर यह हमारी नंगी आँखों को दिखाई नहीं देता। अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों को, सभ्य समाज के मानिन्द लोगों को जाने–माने वैज्ञानिक से लेकर थैलीशाहों, बॉलीवुड के सुपरस्टारों तक को भगवान और साधू–संतों के आगे झुकते हुए देखने के हम इतने आदी हो चुके हैं कि इस बात कि तरफ हमारा ध्यान ही नहीं जाता कि आस्था, राजनीती और पैसा एक–दूसरे के साथ कितनी सफाई से घुलमिल गये हैं। जब कोई

साधू कोई बुरा व्यवहार करता है (जैसा कि आसाराम के मामले में हुआ), या जब हुक्मरानों के साथ उनकी अनबन हो जाती है (जैसा कि भ्रष्टाचार के खिलाफ रामदेव की रैली के बाद उनके साथ हुआ), तब नकाब उलट जाता है। ऐसे ही मौकों पर हम अपनी नाक के निचे हरदम चल रहे राज्य, मंदिर और पूँजी–प्रतिष्ठान की दुरभिसंधि को साफ–साफ देख पाते हैं।

नरेन्द्र मोदी और अन्य नेता इस पतित साधू से भले ही आज रणनीतिक कारणों से दूरी बनाना चाहते हैं, लेकिन यह राज तो जगजाहिर है कि चाहे भाजपा का शासन रहा हो या कांग्रेस का, आसाराम को गुजरात में राजगुरू का दर्जा मिला हुआ था। वास्तव में यदि सारी बातों का बारीकी से जायजा लिया जाय, तो साफ नजर आता है कि आसाराम के आश्रमों, गुरूकुलों और स्कूलों का मुनाफे में चलने वाला कारोबार सरकारी अनुदान से ही फूला–फला (हाँ! बाद में जरूर उसने अतिक्रमण करके और अधिक जमीन कब्जा ली)। इसके साथ ही, मालदार सिंधी–मारवाड़ी समुदाय से मिलने वाले निजी चंदे का भी उसके कारोबार को फैलने में बड़ा योगदान रहा है। अपने राजनीतिक सम्बंधों के सुरक्षा कवच की बदौलत ही वह अपने बड़े से बड़े आरोपों (जिनमें बच्चों की हत्या तक शामिल है) और आपराधिक कुकर्मों से अब तक बचता रहा है। हत्या जैसे गुनाह से सचमुच यह संत बच निकला। यानी आसाराम, दौलत बनाने के लिए सियासी कवच का इस्तेमाल करने वाला कोई अकेला शख्स नहीं है। इस देश के हर सफल साधू–संत के पीछे प्रभावशाली नेताओं का गिरोह खड़ा होता है, जिनके पास सार्वजानिक संसाधनों को लूटने और राज्य के पूरे लाव–लश्कर का लाभ उठाने कि खुली छूट है। एक बार लोगों कि निगाह में चढ़ जाने के बाद ये गुरूघंटाल आसानी से अपने कारोबार का विराट साम्राज्य खड़ा कर लेते हैं, जो आगे चल कर दूसरे पूँजी प्रतिष्ठानों को भी आकर्षित करने लगता है, खास कर शिक्षा और पर्यटन के क्षेत्रा में, जिनका बाजार आजकल गर्म है।

देशी–विदेशी निजी पूँजी को आकर्षित करने के लिए भारत में जब से नवउदारवादी व्यवस्था को अपनाया गया है, तब से धार्मिकदृसह–व्यापारी साम्राज्य स्थापित करने के लिए जनता का पैसा झोकना और सार्वजनिक संसाधनों को लूटना पहले से आसान हो गया है। आमतौर पर इसके लिए बस इतना करना होता है कि जमीनों के इस्तेमाल में बदलाव (जैसे खेती कि जगह संस्थागत या व्यापारिक उपयोग के लिए जमीन का स्थानांतरण किया जाय) और "मूल्यदृआधारित" शिक्षा के नाम पर किसी गुरू द्वारा स्थापित शिक्षा की दुकान, यानी ट्रस्ट को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) या राज्य द्वारा विश्वविद्यालय का दर्जा देने वाले कानून के जरिये मान्यता दे दी जाये। सार्वजानिक–निजी साझेदारी (पीपीपी) के नवउदारवादी मन्त्रा ने इन धार्मिक उद्योगों को किसी अन्य पूँजी–प्रतिष्ठान की तरह ही भरपूर लाभ पहुँचाया है। फर्क सिर्फ इतना है कि देवत्व की आभा तथा श्रद्धा और अंधश्रद्धा कि परतों के कारण ये साधू किसी दूसरे पूँजी–प्रतिष्ठान की तुलना में कोई चुनौती तो क्या, किसी जाँच से भी आसानी से बच जाते हैं। अभी हाल–फिलहाल तक राज्य सरकारों में, खासतौर पर भाजपा की सरकार वाले राज्यों में रामदेव के प्रमुख आश्रम,दृसह–आयुर्वेदिक अस्पतालों को हरी झंडी दिखाने और हरिद्वार (उत्तराखंड) के पतंजलि योगपीठ की शाखाओं को अपने राज्यों में खुलवाने के लिए एक–दूसरे के साथ होड़ मची थी। उत्तराखंड सरकार ने रामदेव के आश्रम को विश्वविद्यालय का दर्जा दे दिया। हरियाणा सरकार ने इस बाबा के गुरूकुल को मान्यता दे दी। ये संस्थाएँ धर्मादा नहीं, बल्कि बकायदा फीस लेकर, मुनाफे के लिए चलने वाली शिक्षा की दुकानें हैं। हाँलाकि उन्हें धर्मादा संस्थाओं का दर्जा देकर टैक्स में छूट दी जा रही है। सरकार द्वारा प्रायोजित रामदेव की आयुर्वेदिक रसशाला ने अपनी दवाइयाँ बेचकर करोड़ों रुपये कमाये हैं। ये दवाएँ सुरक्षा और उपयोग दोनों ही दृष्टि से संदिग्ध हैं। रामदेव का टीवी चैनल आस्था, जिसे उन्होंने अपने कुछ पिट्ठुओं के मार्फत खरीद रखा है, भरपूर मुनाफा कमा रहा है। जब ये उद्योग चालू हुए थे, तब भारत और विदेशों के मालदार दाताओं ने इन्हें खूब मदद की थी। एक बार भौतिक संसाधन जुट जायें तो फिर सरकारी सहायता देने वाली संस्थाओं और पूँजीपतियों के स्वार्थ भी सड़क, होटल, रिसोर्ट्स जैसे बुनयादी ढाँचे बनाने और लक्जरी बसें चलाने के लिए आगे आ जाते हैं।

राजसत्ता, हिंदू संस्कृति के पुरातन मूल्यों के कारोबारी और निजी दौलत, इन तीनों का तिकोना सम्बन्ध इन सभी ब्रांडेड गुरुओं का आजमाया हुआ सामान्य कारगर मॉडल है। राज्य चाहे धर्मनिरपेक्ष हो, जैसा कि कांग्रेस और कुछ दूसरी क्षेत्रीय पार्टियाँ अपने को बताती हैं, या इसका सम्बन्ध हिंदुत्ववादियों के साथ हो, इससे कोई फर्क नहीं

पड़ता ।

पट्टे की जमीन पर आश्रम

श्री श्री रविशंकर का उदाहरण लें, जिन्होंने कर्नाटक सरकार द्वारा 99 साल की लीज पर दी गयी जमीन पर अपने 'आर्ट ऑफ लिविंग' का मुख्यालय बनाया। 'आर्ट ऑफ लिविंग' को इन्फोसिस तथा बेंगलूर स्थित दूसरी सोफ्टवेयर कम्पनियों से मिलने वाले सहयोग से सभी वाकिफ हैं। मगर रुकिए! बात और भी है। ओडिसा सरकार ने 'आर्ट ऑफ लिविंग' को 200 एकड़ जमीन का अनुदान दिया, जहाँ प्राचीन मूल्यों के साथ आधुनिक शिक्षा देने वाले नये विश्वविद्यालय पिछले साल से कार्यरत हैं। मध्यप्रदेश में भी यही बिजनेस मॉडल अपनाया गया। वहाँ जन्म लेने वाले महर्षि योगी को विश्वविद्यालय के लिए मुफ्त में जमीन देकर सम्मानित किया गया। (मेरी किताब 'द गॉड मार्किट' में ऐसे मामलों में राज्य से दिये गये भरपूर सहयोग के कई सबूत दिये गये हैं। ये सारे सबूत सार्वजनिक रूप से उपलब्ध हैं। मैंने तो बस अलग–अलग जगहों से उन्हें इकठ्ठा किया है और जहाँ भी गुरूओं तथा सहयोग करने वाले सियासी लोगों और पूँजीपतियों के बीच सक्रीय सहयोग दिखायी दिया, उन बिंदुओं को जोड़ दिया है।)

गुरूओं को मिलने वाले ये अनुदान राज्य सरकारों के उन प्रत्यक्ष अनुदानों के अतिरिक्त हैं, जहाँ सरकारें मंदिर के पुजारियों का वेतन देती हैं, मंदिर की मरम्मत का खर्च उठाती हैं या वैदिक पाठशालाएँ खोलती है, जहाँ विद्यार्थी कर्मकांडी या पुजारी बनने की विद्या सीखते हैं। मंदिरों को सबसे बड़ा अप्रत्यक्ष सरकारी अनुदान शायद पर्यटन के माध्यम से मिलता है। केन्द्र से मिले अनुदान का इस्तेमाल राज्य सरकारें नये–नये तीर्थ–मार्गों के सर्किट बनाने के लिए करती हैं। राज्यों के पर्यटन विभाग के लिए यह असामान्य नहीं है कि वे मंदिरों के व्यवस्थापकों के साथ मिलकर, जिस मंदिर के पर्यटन को वे बढ़ावा देना चाहते हैं, उसका प्राचीन इतिहास खोज निकालें, या फिर धार्मिक उत्सवों के साथ जुड़ी सांस्कृतिक परम्पराओं को प्रायोजित करें (जैसे गुजरात और हिमाचल प्रदेश में राज्य प्रायोजित नवरात्रि और मकरसंक्रांति के उत्सव) या फिर कुछ एकदम ही नयी परम्पराएँ ढूँढ निकालें (जैसे मदुरई के मीनाक्षी मंदिर में सोने के रथ का जुलूस या केरल में सबरीमाला मंदिर में दिव्य प्रकाश का आयोजन)।

सार्वजनिक धन और संसाधनों को हिंदुओं की (और अल्पसंख्यकों की भी जो राजनीतिक जोड़–घटाव पर निर्भर करता है) धार्मिक सस्थाओं की तरफ मोड़ दिया जाना बहुत ही बुरा है। लेकिन राज्य और धर्मो के इस मेल से नागरिक समाज के सांस्कृतिक वातावरण का जो नुकसान होता है, उसे केवल रुपयों में नहीं आंका जा सकता। राज्य–मंदिर–पूँजी प्रतिष्ठान की दुरभिसंधि का आधार है –भगवान में उनकी साझा आस्था और इस धरती पर भगवानों की बिक्री करने वालों के साझा अंधविश्वास।

धर्म पर आधारित अंतर्सम्बंध

हमारे निर्वाचित प्रतिनिधि, योजनाकार तथा राज्य के अधिकारी जब धार्मिक संस्थाओं के पास भक्त के रूप में जाते हैं, न कि राज्य के ऐसे धर्मनिरपेक्ष अधिकारी के रूप में जिन पर धर्मनिरपेक्ष सार्वजनिक संस्कृति कायम करने की संवैधानिक जिम्मेदारी है, तब हमें ऐसी संस्कृति मिलती है जिसमें कानून के प्रति अनादर की भावना होती है और जो आलोचनात्मक जाँच परख को नहीं, बल्कि विवेकहीन अंधविश्वास की रक्षा करती है।

वरिष्ठ पुलिस अधिकारी बंजारा के मामले को ही लें, जिन पर गुजरात में फर्जी मुठभेड़ कराने के आरोप लगे हैं। ऐसी ही एक मुठभेड़ में 19 वर्षीय इशरत जहाँ के साथ तीन अन्य लोगों की जान चली गयी थी। अपने इस्तीफे में बंजारा ने, जो इस समय साबरमती केन्द्रीय जेल में हैं, नरेन्द्र मोदी को अपना 'भगवान' और किसी दूसरे को नहीं बल्कि आसाराम को अपना 'गुरू' बताया। ऐसा लगता है कि उनके इस्तीफे की वजह इस बात पर उनकी बौखलाहट है कि उनका 'भगवान' उनके 'गुरू' को बचाने में असमर्थ रहा। कानून के इस रखवाले अधिकारी की चिंता और दूसरी तरफ इस संत के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध जगजाहिर हैं। अंतर्विरोध यह है कि अपने गुरू से जो 'आध्यात्मिकता' उन्हें हासिल हुई वह मासूमों को फर्जी मुठभेड़ में मारते हुए भी किसी नैतिकता के लिहाज से बिल्कुल प्रभावित नहीं हो पायी। हमें गंभीरता से सोचना होगा कि बंजारा जैसे कानून के ऐसे कितने ही रखवाले अधिकारी समाज में और भी हैं जो अपने भक्तों का शोषण करने वाले आसाराम जैसे गुरूओं को पूजते हैं। जब तक आस्था पर आधारित यह दुरभिसंधि कायम है, तब तक क्या हम कानून तोड़ने वालों को सजा होने की और लोगों को न्याय मिलने की उम्मीद कर सकते हैं? खासतौर पर

ऐसे मामलों में जहाँ खुद गुरू ही उन गुनाहों में लिप्त हो जिनकी जाँच होनी है?

राज्य द्वारा विवेकहीन श्रद्धा तथा नुकसानदेह धार्मिक प्रथाओं को दिया जाने वाला संरक्षण तब और भी नुकसानदायक होता है, जब सत्ताधारी लोग घुटनों पर रेंगते हुए हाथ जोड़े धर्मगुरुओं के पास जाते हैं। इसका एक उदाहरण यह है कि लालू प्रसाद यादव उत्तरप्रदेश के मिर्जापुर जिले के 'तांत्रिाक' विभूति नारायण, उर्फ, पगला बाबा से मिलने गये थे, जहाँ उन्होंने विधिवत पूजा अर्चना भी की थी।

सभी जानते हैं कि तांत्रिक विश्वास असामान्य और पराभौतिक शक्तियों से सम्बन्धित होते हैं, जिनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता। वास्तव में, आसाराम पर जिस लड़की के साथ बलात्कार करने का आरोप है, उसे वे ऐसे ही भूत–प्रेतों से मुक्ति दिलाने का आश्वासन दे रहे थे, जो तांत्रिक विद्या का ही एक रूप है। आप खुद से यह सवाल पूछिए, क्या लालू प्रसाद अपने राजनीतिक प्रभाव का इस्तेमाल करके अपने 'भगवान' को आगे बढ़ाएँगे या भूतप्रेतों के अस्तित्व पर प्रश्न उठाने वाले तार्किक मूल्यों को बढ़ावा देंगे? हम सब को इसका जवाब पता है।

अंधविश्वास के खिलाफ कानून

क्या करें? क्या अंधविश्वास विरोधी कानून, जिस तरह के कानून के लिए डॉ. दाभोलकर और उनके सहयोगी लम्बे समय से एक कठिन लड़ाई लड़ रहे हैं, मददगार साबित होगा? क्या ऐसे कानून से आसाराम के आश्रम में हुई उस भयंकर वारदात को, जिसके लिए उन्हें मुलजिम करार दिया गया, उसे रोका जा सकता था?

बलात्कार और हत्या जैसे अपराधों के लिए निश्चय ही किसी नये कानून की जरूरत नहीं है। अपराध के आरोपियों को सजा दिलवाने के लिए संतों या उनके सियासी आकाओं की देवतुल्य ताकत से भय खाए बिना, सख्ती से और सही तरीके से मुकदमा चलाने भर की जरूरत है।

लेकिन अगर ऐसा कोई कानून बन गया होता, जो भूत–प्रेत भगाने की शक्ति के बारे में अथवा भौतिकी या जीवविज्ञान के नियमों का उल्लंघन करते हुए चमत्कार करने के बारे में अथवा जिन बीमारियों का अभी तक कोई इलाज नहीं, उन्हें ठीक करने के बारे में किसी भी सार्वजनिक प्रवचन, विज्ञापन या प्रदर्शन पर रोक लगा देता, चाहे उसे किसी भी धर्म या परम्परा से जुड़े लोगों द्वारा किया जा रहा हो? यह भी कल्पना कीजिये की ऐसा कानून राष्ट्रीय स्तर पर बना दिया जाता, जिसे सारे राज्य अमल में लाने के लिए बाध्य होते। यह भी कल्पना कीजियेदृ (हालाँकि इसकी बहुत ही कम संभावना है) कि यह कानून बिना किसी भय या लालच के बड़ी सख्ती से लागू किया जा रहा होता। (हम जिस कानून की यहाँ कल्पना कर रहे हैं, वह उस कानून पर आधारित है जो कई वर्षों तक महाराष्ट्र विधान सभा में लम्बित रहा और डॉ. दाभोलकर की हत्या के बाद एक अध्यादेश के जरिये पारित किया गया।)

क्या ऐसे कानून से आसाराम के आश्रम में हुए कथित बलात्कार और अन्य अपराधों को रोक पाना सम्भव होता?

इसका जवाब सीमित अर्थों में ही सही 'हाँ' ही होना चाहिए। ऐसा कानून सबसे पहले तो आसाराम को अपनी देवी शक्तियों को प्रचारित करने से रोकता। निश्चय ही ऐसे कानून से अपराध पूरी तरह गायब नहीं हो पाता, क्योंकि बलात्कार और हत्या करने के लिए धर्म की आड़ लेना ही जरूरी नहीं। मगर ऐसे कानून से धर्म को तरह–तरह के अपराधों, भ्रष्टाचारों और दूसरे कदाचारों को संरक्षण देना जरूर मुश्किल हो जाता।

इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि ऐसे कानून से इन संतों द्वारा रात–दिन दिये जाने वाले सार्वजनिक प्रवचन जैसे भ्रष्ट आचरण को रोका जा सकता है, जो लोगों में पारलोकिक चमत्कारी शक्तियों के प्रति अंधविश्वास भरता है, जिनसे प्राकृतिक सच्चाइओं का कोई लेना–देना नहीं होता।

क्या ऐसा कानून लोगों को अपने मनपसंद धर्म का पालन करने के उनके संवैधानिक अधिकार से वंचित करेगा, जैसा कि नागरिक अधिकार के नाम पर कहा जा रहा है? क्या अंधविश्वास के खिलाफ कानून खुद धर्म के ही खिलाफ है, जैसा कि डॉ. दाभोलकर की पहल के खिलाफ एकजुट रूढ़िवादी ताकतें कह रही हैं?

अपने धर्म में आस्था रखना और उसका पालन करना, एक बहुमूल्य अधिकार है, जिस पर रोक नहीं लगायी जा सकती। इस मुद्दे पर तो कोई विवाद ही नहीं है। असली सवाल तो यह है कि क्या धर्म की स्वतन्त्राता का अर्थ अंधविश्वास का धंधा करने, उसे बढ़ावा देने और उससे मुनाफा कमाने की स्वतन्त्राता है? धर्म कहाँ खत्म होता है और अंधविश्वास कहाँ शुरू होता है? क्या

डॉ. नरेन्द्र दाभोलकर की हत्या

अंधविश्वास विरोधी कानून की आलोचना करने वालों का यह अक्खड़पन ठीक है कि बिना अंधविश्वास के धर्म का अस्तित्व नहीं रह पायेगा?

ख जो इस बात से भयभीत हैं, कि इस कानून की वजह से भारत के नागरिकों के अंतःकरण की और मुक्त रूप से धर्म पालन की स्वतन्त्राता का हनन होगा, उन्हें संविधान को ठीक से पढ़ना चाहिए। संविधान में धर्म की स्वतन्त्राता नागरिकों के मौलिक अधिकारों के मातहत है। इसका मतलब यह है कि कोई भी "आर्थिक, वित्तीय, राजनीतिक या धर्म से इतर कोई अन्य गतिविधि, जो भले ही धार्मिक व्यवहार से सम्बंधित हो, अगर वह गतिविधि "सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता, स्वास्थ्य तथा इस भाग के अन्य प्रावधानों के मानदंडों" के विपरीत जाता हो, तो राज्य उसे नियंत्रित करने और उसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार रखता है। यहाँ "भाग" से तात्पर्य नागरिकों के मौलिक अधिकार से है, जो संविधान के भाग 3 में दिये हुए हैं। भूत–प्रेत के प्रभाव की झूठी बातें कह कर किसी के मानसिक तनाव का इलाज करने का जो दावा आसाराम कर रहे थे उसे कोई "धार्मिक व्यवहार से जुड़ी धर्म से इतर गतिविधि" मान सकता है। ऐसे में इसके पीछे कोई तर्क नहीं कि लोगों के हित में, उनके जीवन और आजादी के मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए राज्य ऐसे व्यवहारों को नियंत्रित न करे।

धार्मिक व्यवहार से जुड़ी धर्म से इतर गतिविधियाँ अगर नागरिकों के मौलिक अधिकारों के खिलाफ जाती दिखे, तो भारतीय राज्य का केवल यह अधिकार ही नहीं, बल्कि वास्तव में उसका संवैधानिक कर्तव्य भी बन जाता है कि वह उन्हें रोके। 1977 में आपातकाल के दौरान संविधान में 42वाँ संशोधन करके उसमें अनुच्छेद 51ए(एच) समाविष्ट किया गया, जिसके तहत वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानवतावाद तथा शोध और सुधार की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना, वस्तुतः भारतीय नागरिकों के मौलिक कर्तव्यों में से एक है। चूँकि सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ मामलों में इस सिद्धांत को स्वीकार किया है कि नागरिकों के लिए ये कर्तव्य बाध्यकारी हैं, इसलिए राज्य को भी इनके प्रति चौकन्ना रहना चाहिए।

जिन लोगों को इस तरह के कानून की सम्भावना, उ★की आस्था पर असहनीय बंधन लगता है, उन्हें अपनी आत्मा को टटोलने की जरूरत है। क्या उनका धर्म इतना नाजुक है कि वह इन अतार्किक, अंधविश्वासी और हानिकारक रीती–रिवाजों के बिना खड़ा ही नहीं रह पायेगा? क्या धर्म को अपनाने का दावा करने वालों का यह कर्तव्य नहीं है कि उनकी धार्मिक परम्पराएँ इन पुरानी पड़ चुकी, कुप्रथाओं और ज्ञान प्राप्ति के अतार्किक तौर–तरीकों से अपने आप को मुक्त करें?

निष्कर्ष यह है कि डॉ. दाभोलकर ने अंधविश्वासों के★खिलाफ जिस लड़ाई के दौरान अपनी जान कुर्बान की, उस लड़ाई को जारी रखने से बढ़कर कुछ भी नहीं। अंधविश्वास का धंधा चलाने वालों और उनके सियासी मददगारों के खिलाफ हमारे पास बस एक ही हथियार है ★वैज्ञानिक नजरिया और आलोचनात्मक चिंतन के प्रति हमारी प्रतिबद्धता।

(लेखिका आधुनिक विज्ञान के इतिहास की ज्ञाता हैं। उनकी ताजा पुस्तक हैदृ''द गॉड मार्केट : हाउ ग्लोब्लाइजेशन इज मेकिंग इण्डिया मोर हिन्दू'' जो भारत में ★ण्डम हाउस द्वारा (2009) और अमरीका में मंथली रिव्यू प्रेस द्वारा (2011) में प्रकाशित हुई है। यह लेख फ्रंटलाइन, 4 अक्टूबर 2013 के अंक में प्रकाशित हुआ है। हिन्दी अनुवाद और प्रकाशन के लिए हम फ्रंटलाइन और मीरा नंदा के आभारी हैं । अनुवाद –सुजाता)

★वैज्ञानिक विचारधारा के प्रयासों को तेज करेगी।

★ –दिनेशराय द्विवेदी

धविश्वास और काले जादू के खिलाफ मुहिम चलाने वाले डॉ. नरेन्द्र दाभोलकर पुणे स्थित अपने निवास से सुबह की सैर के लिए निकले थे कि औंकारेश्वर पुल के नजदीक मोटरसाइकिल पर सवार दो हमलावरों ने उनके सिर पर करीब से गोलियाँ दाग कर उन की हत्या कर दी। उन्हें देख कर लोगों ने उन्हें ससून अस्पताल पहुँचाया जहाँ उनकी मृत्यु हो गयी। पुणे के पुलिस आयुक्त

गुलाबराव ने दाभोलकर की मौत की पुष्टि करते हुए बताया कि पुलिस हत्या के कारणों की जाँच कर रही है लेकिन अभी तक किसी हमलावर की पहचान नहीं हुई है।

★ देश और दुनिया–भर के अंधश्रद्धा विरोधी और वैज्ञानिक विचार के समर्थक लोगों और उनके आन्दोलन को इस घटना से गहरा दुख पहुँचा है। अनेक राजनेताओं और सामाजिक कार्यकर्ताओं ने दाभोलकर की हत्या की कड़ी निंदा करते हुए उन्हें प्रगतिवादी सोच के लिए समर्पित सामाजिक कार्यकर्ता बताया है। डॉ. दाभोलकर प्रगतिवादी सोच के लिए महाराष्ट्र में विशेष रूप से काम कर रहे थे।

महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री पृथ्वीराज चव्हाण ने डॉ. दाभोलकर की हत्या की निंदा करते हुए उनके हत्यारों का सुराग बताने वाले को दस लाख रुपए इनाम की घोषणा की है। राज्य के गृहमंत्री आर आर पाटिल ने डॉ. दाभोलकर की हत्या पर क्षोभ और दुःख व्यक्त करते हुए पुलिस के शीर्ष अधिकारियों को इस मामले की तह में जाने का निर्देश दिया है। पुलिस ने बताया कि 69 साल के डॉ. दाभोलकर को कुल चार गोलियाँ मारी गयी थीं जिनमें दो उनके सिर पर लगी थीं।

डॉ. दाभोलकर समाज में व्याप्त अंधविश्वासों को खत्म करने और वैज्ञानिक चेतना जगाने के लिए चलाये जा रहे अभियान अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति की अगुवाई कर रहे थे। साथ ही वे प्रगतिवादी विचारधारा की पत्रिाका 'साधना' के संपादक भी थे। महाराष्ट्र के सतारा जिले के रहने वाले डॉ. दाभोलकर सामाजिक कुप्रथाओं और अंधविश्वास के ख़िलाफ कानून लाने के लिए महाराष्ट्र विधानसभा में एक विधेयक लाने का प्रयास कर रहे थे लेकिन कुछ लोग उनकी इस मुहिम के खिलाफ थे। इस विधेयक में जिन कृत्यों को अपराध घोषित किए जाने का प्रस्ताव था वे निम्न प्रकार हैं––

भूत उतारने के बहाने किसी व्यक्ति को, रस्सी या जंजीर से बाँधकर रखना, पीटना, लाठी या चाबुक से मारना, पादत्रााण भिगाकर उसका पानी पिलाना, मिरची का धुआँ देना, छत से लटकाना, रस्सी या बालों से बाँधना, उस व्यक्ति के बाल उखाड़ना, व्यक्ति के शरीर पर या अवयवों पर गरम की वस्तु के दाग देकर हानि पहुँचाना, सार्वजनिक स्थान पर लैंगिक कृत्य करने की जबरदस्ती करना, व्यक्ति पर अघोरी कृत्य करना, मुँह में जबरदस्ती मूत्रा या विष्ठा डालना या ऐसी कोई कृति करना।

किसी व्यक्ति को तथाकथित चमत्कार कर उससे आर्थिक प्राप्ति करना और इसी प्रकार ऐसे तथाकथित चमत्कारों का प्रचार और प्रसार कर लोगों को फँसाना, ठगना अथवा उन पर दहशत निर्माण करना।

अतिन्द्रीय शक्ति की कृपा प्राप्त करने के लिए ऐसी अघोरी प्रथाओं का अवलम्ब करना जिन से जान का खतरा होता हो या शरीर को जानलेवा जख्म होते हों; और ऐसी प्रथाओं का अवलम्ब करने के लिए औरों को प्रवृत्त करना, उत्तेजित करना या उनके साथ जबरदस्ती करना।

मूल्यवान वस्तु, गुप्त धन, जल स्रोत खोजने के बहाने या तत्सम कारणों से करनी, भानामति इत्यादि नामों से कोई भी अमानुष कृत्य करना या ऐसे अमानुष कृत्य करने और जारण–मारण अथवा नरबलि देना या देने का प्रयास करना, या ऐसे अमानुष कृत्य करने की सलाह देना, उसके लिए प्रवृत्त करना, अथवा प्रोत्साहन देना।

अपने भीतर अतींद्रिय शक्ति है ऐसा आभास निर्माण कर अथवा अतींद्रिय शक्ति संचरित होने का आभास निर्माण कर औरों के मन में भय निर्माण करना या उस व्यक्ति का कहना न मानने पर बुरे परिणाम होने की धमकी देना।

कोई विशिष्ट व्यक्ति करनी करता है, काली विद्या करता है, भूत लगाता है, मंत्रा–तंत्रा से जानवरों की दूध देने की क्षमता समाप्त करता है, ऐसा बताकर उस व्यक्ति के बारे में संदेह निर्माण करना, इसी प्रकार कोई व्यक्ति अपशकुनी है, रोग फैलने का कारण इत्यादि बताकर या आभास निर्माण कर सम्बंधित व्यक्ति का जीना मुश्किल करना, कष्टमय करना या कठिन करना, कोई व्यक्ति शैतान या शैतान का अवतार है, ऐसा घोषित करना।

जारण–मारण, करनी या टोटका करने का आरोप लगा कर किसी व्यक्ति के साथ मारपीट करना, उसे नग्नावस्था में घुमाना या उसके रोज के व्यवहार पर पाबंदी लगाना।

मंत्रा की सहायता से भूत–पिशाचों का आह्वान कर या आह्वान करने की धमकी देकर लोगों के मन में घबराहट निर्माण करना, मंत्रा–तंत्रा अथवा तत्सम बाते बनाकर किसी व्यक्ति को विष–बाधा से मुक्त

करने का आभास निर्माण करना, शारीरिक हानि (क्षति) होने के लिए भूत या अमानवी शक्ति का कोप होने का आभास करा देना, लोगों को वैद्यकीय उपचार लेने से रोककर, उसके बदले उन्हें अघोरी कृत्य या उपाय करने के लिए प्रवृत्त करना अथवा मंत्रा–तंत्रा (टोटका) जादू–टोना अथवा अघोरी उपाय करने का आभास निर्माण कर लोगों को मृत्यु का भय दिखाना, पीड़ा देना या आर्थिक अथवा मानसिक हानि पहुँचाना।

vk कुत्ता, साँप, बिच्छु आदि के काटे व्यक्ति को वैद्यकीय उपचार लेने से रोककर या प्रतिबंध कर, उसके बदले, मंत्रा–तंत्रा, गंडा–धागा आदि अन्य उपचार करना।

'उंगली से शल्यक्रिया कर दिखाता हूँ' ऐसा दावा करना या गर्भवती स्त्राी के गर्भ का लिंग बदल कर दिखाता हूँ ऐसा दावा करना।

(क) स्वयं में विशेष शक्ति होने या किसी का अवतार होने या स्वयं पवित्रा आत्मा होने का आभास निर्माण कर या उसकी बातों में आये व्यक्ति को पूर्वजन्म में तू मेरी पत्नी, पति या प्रेयसी, प्रियकर था ऐसा बताकर, उस व्यक्ति के साथ लैंगिक संबंध रखना।

(ख) संतान न होने वाली स्त्री को अतींद्रिय शक्ति द्वारा संतान होने का आश्वासन देकर उसके साथ लैंगिक सम्बंध रखना।

मंद बुद्धि (मेंटली रिटार्टेड) व्यक्ति में अतींद्रिय शक्ति है ऐसा अन्य लोगों के मन में आभास निर्माण कर उस व्यक्ति का धंधे या व्यवसाय के लिए प्रयोग करना।

डॉ. दाभोलकर की हत्या से वैज्ञानिक विचारधारा के सभी समर्थक अत्यन्त हतप्रभ हैं। लेकिन यह वैज्ञानिक विचारधारा के समर्थन में अभियान चलाने वालों का जीवन समाप्त कर देने के प्रयासों का पहला अवसर नहीं है। इतिहास में ऐसा होता आया है। लेकिन इसके बावजूद मनुष्य का अज्ञान से ज्ञान की ओर बढ़ने का प्रयास कभी रुका नहीं, वह और बलवान होकर आगे बढ़ता रहा। अब भी इस घटना से यह अभियान रुकने वाला नहीं है। वह और मजबूत हो कर आगे बढ़ेगा। हम इस अभियान को निरंतर आगे बढ़ाएँगे। एक दिन अवश्य आयेगा जब दुनिया अंधश्रद्धा से मुक्त होगी।

व्यर्थ नहीं जायेगी डॉ. नरेन्द्र दाभोलकर की शहादत

–उमाशंकर सिंह

मानव सभ्यता के इतिहास में अंधविश्वास के खिलाफ और वैज्ञानिक चेतना के लिए लड़ने वालों की हत्या या उनके खिलाफ हिंसा कोई नयी बात नहीं है। हजारों वर्ष पहले वेद–पुरान की बखिया उधेड़ने वाले चार्वाक को इसी 'सभ्य धार्मिक समाज' ने जलाकर मार डाला था। गियोर्डानो ब्रूनो की हत्या इसलिए कर दी गयी थी क्योंकि उसने चर्च के आधिपत्य के दौर में एक बात कही जो चर्च की मान्यताओं के खिलाफ थी कि सूर्य पृथ्वी के नहीं, पृथ्वी सूर्य के चारों तरफ चक्कर काटती है। कॉपरनिकस पर चर्च की टेढ़ी नजर की बात सब जानते हैं। गैलीलियो को तो चर्च ने आजीवन नजरबंद की सजा दी थी और उसी दौरान उनकी मृत्यु हुई या ये कहें कि चर्च के हाथों हत्या हुई। ईश निंदा और नास्तिकता के आरोप में ही सुकरात को जहर का प्याला थमा दिया गया था। आज सब जानते हैं कि ब्रूनो, कॉपरनिकस, गैलीलियो और सुकरात सही थे। हालाँकि इन सबके सामने चुप रहने और बच जाने का विकल्प था। यह श्रृंखला बहुत लंबी है और आज तक चली आ रही है।

पुणे में अंधविश्वास के खिलाफ लड़ने वाले डॉ. दाभोलकर की हत्या 'सभ्य–धार्मिक समाज' की इसी हिंसा की एक कड़ी है। यह हत्या साजिशन है और इसकी तुलना जमीन, दौलत या निजी दुश्मनी में की गयी हत्या से नहीं की जा सकती। हत्यारों में तमाम धर्म के ठेकेदारों की मिलीभगत हो सकती है क्योंकि अंधविश्वास की दुकान सभी धर्मों के ठेकेदारों ने खोली हुई है। वे दाभोलकर को मार देना चाहते थे क्योंकि उनका जिंदा रहना हत्यारों और उनकी विचारों के अस्तित्व पर खतरा बन रहा था। मूर्तिबाजी में मेरा कोई यकीन नहीं है। इसके बावजूद मैं श्री दाभोलकर की पुणे में प्रतिमा बनाने और नीचे चबूतरे पर उनकी प्रमुख शिक्षाओं का उल्लेख करने की माँग करता हूँ। वे उन्हें मारना चाहते हैं और हम उन्हें जिंदा रखना चाहते हैं। साथ ही सामाजिक कुप्रथाओं और अंधविश्वासों, जिसके शिकार सबसे अधिक महिलाएँ और दलित–पिछड़े होते हैं, के विरुद्ध महाराष्ट्र विधानसभा में वो एक विधेयक पास कराने की कोशिश में थे। मैं उस विधेयक को भी अविलंब पारित करने की माँग करता हूँ।

भारतीय इतिहास में तर्कशास्त्र की परम्परा

‘‘अंधविश्वासी रीति–रिवाजों को जमीन में गाड़ दो!’’

–ए आर वेंकटचलपति

स्तिकता और नास्तिकता, ईश्वरवाद और अनीश्वरवाद तथा जाति और समानता एक दूसरे के जन्मजात दुश्मन हैं। जब एक पैदा होता है तो दूसरा उसे चुनौती देने के लिए उठ खड़ा होता है। यही नहीं, जैसा कि देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय ने काल–क्रम में वर्णन किया है, प्राचीन भारत में जैसे ही वैदिक परम्परा सुदृढ़ हुई, निरीश्वरवाद उभर आया। जब तिरुवल्लुवर ने अपने ग्रन्थ तिरुकुरल में पूछा, ”यदि कोई इश्वर के चरणों की वन्दना नहीं करता तो भला ज्ञान का क्या उद्देश्य है”, तो वे इस सच्चाई को स्वीकार कर रहे थे कि उस काल में उनसे भिन्न तरह से सोचने वाले विद्वान भी मौजूद थे, जो ईश्वर वन्दना में विश्वास नहीं करते थे।

ज्ञान का विकास प्रश्न उठाने से होता है। सवालों से वंचित और अपने ज्ञान से आत्मसंतुष्ट समाज केवल बौना ही हो सकता है। एक तरफ जहाँ शासकों के संरक्षण में, उन्हीं से खुराक पाकर और सामाजिक असमानता को न्यायसंगत ठहराते हुए सुसंगठित धर्म फलता–फूलता रहा, उसी तरह दूसरी परम्पराएँ भी बची रहीं।

kj समाज के धुँधलके से बाहर रहने वाले तमिलनाडू के विद्रोही गायक सिथार बहुत ही रूखेपन से सवाल पूछते हैं –

ये मन्त्रा क्या है,
तुम अपने मुँह में क्या बुदबुदाते हो,
ये परिक्रमा क्या है,
ये रोपा हुआ पत्थर क्या है,
तुम इस पर क्यों फूल चढ़ाते हो,
क्या पत्थर बोल सकता है?
जब भगवान तुम्हारे अंदर है,
क्या कलही और पतीला जिनमें भोजन पकता है,
खाने का स्वाद ले सकते हैं?

बाद के दौर में एक प्रसिद्द अकवाल कविता में कपिलार पूछते हैं कि –

क्या बारिश कुछ खास लोगों के लिए होगी,
और दूसरों को वंचित कर देगी,
क्या हवाएँ कुछ लोगों से भेदभाव करेंगी,
क्या धरती कुछ लोगों का भार सहने से इन्कार कर देगी,
और सूरज कुछ लोगों को धूप देने से मना कर देगा।

15वीं शताब्दी में उत्तारानल्लूर नंगाई में पैचालूर की दलित लड़की, जिसे एक ब्राह्मण लड़के से प्रेम हो गया था, उसने उसे जिन्दा जलाने आये गाँव वालों को चुनौती दी और कहा कि –

मैंने एक गुच्छा देखा,
बगुले के सर पर,
और एक सींग,
मुर्गी के सर पर।
मैंने एक थुल–थुल पूँछ देखी।
मैंने पानी पर आग देखी।
इसलिए बात मत करो,
चार वेदों की ;
ये कहकर कि तुम हो,
ऊँची जाति के।

धर्मग्रंथों ने ऐसी आवाजों को दबाने की कोशिश की लेकिन पीढ़ी दर पीढ़ी वाचिक रूप से प्रसारित होने के कारण वे जनता के बीच जिन्दा रहीं। उन्नीसवीं सदी में पश्चिमी देशों से शिक्षा प्राप्त, प्रबोधन काल के विचार से प्रभावित भारतीय बुद्धिजीवी अपने आधुनिक समानतावादी विचारों को पुष्ट करने के दौरान इन परम्पराओं के प्रति आकृष्ट हुए। बुद्धवाद की फिर से खोज ने तर्कशीलता के शास्त्रागार को उन्नत किया। एविपक्कम वेंकटचला रामास्वामी नायकर और अयुत्तीदास पांडितर जैसे निम्न जाति के सिद्धान्तकारों की जड़ें इसी तथाकथित शास्त्रा विरुद्ध परम्परा में थी। यदि बंगाली ब्रह्म समाज में तमिलनाडू के सुधारों के स्तर की दीप्ती

नहीं दिखती, तो इसके पीछे इसी परम्परा का योगदान है।

यही नहीं, सुब्रमण्यम भारती ने अपने अंतिम वर्षों में लिखा कि– 'स्मृति और महाकाव्य और कुछ नहीं, बस नैतिकता सिखाने वाले किस्से हैं।' जब उनके शिष्य भारती दासन ने पेरियार के तर्कवादी आदर्शों का समर्थन किया, तो उनकी विवेचनाओं से प्रभावित कहानीकार पुदुमाया पित्थन ने उनका विरोध करने वाले दकियानूसों को यह कहकर चुप करा दिया कि 'क्या वे सिथारों से भी ज्यादा रेडिकल थे।'

पेरियार के आत्मसम्मान आंदोलन के शुरूआती प्रकाशनों में से एक था– वल्लालर रामलिंगा स्वा[illegible]गल की कविताओं का संकलन। इस पुस्तक में वल्लालर द्वारा लिखित रेडिकल भर्त्सना की "अंधभक्ति के रीती–रिवाजों को जमीन में गाढ़ दो" को प्रमुखता से शामिल किया गया था। भगत सिंह का मैं नास्तिक क्यों हूँ और धर्म के बारे में लेनिन के लेखों का अनुवाद भी पेरियार प्रेस से छपे थे।

1943 में सी एन अन्नादुरई ने जब "आग को फैलने दो" की घोषणा की और कम्बार रामायण और पेरिया पुराणम को जलाने का आह्वान किया तो ईश्वर में विश्वास करने वाले तमिल विद्वान सोम सुंदर भारती और आर पी सेथू पिल्लई इस मुद्दे पर वाद–विवाद के लिए अन्ना से मिले। शब्द से शब्द का और विचार से विचार का टकराव हुआ। गोलियों और खून का नहीं।

हर नास्तिक इतना सौभाग्यशाली नहीं होता कि डावकिन्स की तरह ऑक्सफोर्ड की कुर्सी हासिल कार पाये। वल्लालर रहस्यमयी परिस्तिथियों में गायब हो गये। पाइचालुर के विद्रोही बेरहमी से मार डाले गये। नरेंद्र दाभोलकर का शरीर भले ही गोलियों से छलनी कर दिया गया, लेकिन शब्द, गीत और विचार अभी भी जिन्दा हैं।

(इस लेख में जिन कविताओं को उद्धत किया गया है वे तमिल सिथार कविताओं की शीघ्र प्रकाश्य पुस्तक से ली गयी हैं जिनका अनुवाद एम एल थन्गप्पा और सम्पादन ऐ आर वेंकटचलपति ने किया है। 'द हिन्दू' में प्रकाशित लेख की आभार सहित प्रस्तुति। अनुवाद– प्रवीण)

संघ की विचारधारा : नस्लवादी राष्ट्रवाद

ष्ट्रवाद का अर्थ अक्सर हमारे यहाँ सरलीकृत रूप में 'देशभक्ति' से लगाया जाता है और इसमें 'हिन्दू' जोड़ देने से भी इसे बहुसंख्यक आबादी की देशभक्ति जैसी कोई चीज मान लिया जाता है। वास्तव में हिन्दू राष्ट्रवाद क्या है, इसे जानने के लिए प्रस्तुत है, गोलवरकर की किताब 'वी आर अवर नेशनहुड डिफाइंड' से उनकी 'हिन्दू राष्ट्रवाद' की परिभाषा।)

''हम दुहराते हैं– हिन्दुओं की धरती हिन्दुस्तान में हिन्दू राष्ट्र रहता है और रहना ही चाहिये– जो आधुनिक विश्व की नस्ल सम्बंधी वैज्ञानिक अवधारणा की सभी पाँच जरूरतों को पूरा करता है। फलतः केवल वही आंदोलन सच्चे अर्थों में 'राष्ट्रीय' हैं जो हिन्दू राष्ट्र के पुनर्निर्माण, पुनरोद्भव तथा वर्तमान स्थिति से इसकी मुक्ति का उद्देश्य लेकर चलते हैं। केवल वही राष्ट्रीय देशभक्त हैं जो अपने हृदय में हिन्दू नस्ल और राष्ट्र के गौरवान्वीकरण की प्रेरणा के साथ कार्य को उद्धत होते हैं और उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये संघर्ष करते हैं। बाकी सभी या तो गद्दार हैं और राष्ट्रीय हित के शत्रु हैं या अगर दयापूर्ण दृष्टि अपनायें तो बौडम हैं।

''अगर निर्विवाद रूप से हिन्दुस्तान हिन्दुओं की धरती थी और अगर केवल हिन्दुओं का ही फलना–फूलना निश्चित था तो इन सभी लोगों की नियति क्या होनी थी जो यहाँ रह रहे थे परन्तु हिन्दू धर्म, जाति और संस्कृति से सम्बद्ध नहीं थे?

'वे सभी जो इस विचार की परिधि से बाहर हैं राष्ट्रीय जीवन में कोई स्थान नहीं रख सकते। वे राष्ट्र का अंग केवल तभी बन सकते हैं जब अपने विभेदों को पूरी तरह समाप्त कर दें, राष्ट्र का धर्म, इसकी भाषा व संस्कृति अपना लें और खुद को पूरी तरह राष्ट्रीय नस्ल में समाहित कर दें। जब तक वे अपने नस्लीय, धार्मिक तथा सांस्कृतिक अंतरों को बनाये रखते हैं वे केवल

विदेशी हो सकते हैं, जो राष्ट्र के प्रति या तो मित्रावत हो सकता है या शत्राुवत।

''अगर वे ऐसा नहीं करते हैं तो उन्हें राष्ट्र के रहमो–करम पर राष्ट्र की सभी संहिताओं और परम्पराओं से बँधकर केवल एक बाहरी की तरह रहना होगा, जिनको किसी अधिकार या सुविधा की तो छोड़िये, किसी विशेष संरक्षण का भी हक नहीं होगा। विदेशी तत्त्वों के लिये बस दो ही रास्ते हैं, या तो वे राष्ट्रीय नस्ल में पूरी तरह समाहित हो जायें और यहाँ की संस्कृति को पूरी तरह अपना लें या फिर जब तक राष्ट्रीय नस्ल उन्नत अनुमति दे वे यहाँ उसकी दया पर रहें और राष्ट्रीय नस्ल की इच्छा पर यह देश छोड़कर चले जायें। अल्पसंख्यक समस्या पर यही एक पुख्ता विचार है। यही इकलौता तार्किक और सही समाधान है। केवल यही राष्ट्रीय जीवन को स्वस्थ तथा अबाधित रखेगा। केवल यही राष्ट्र में राज्य के भीतर राज्य पनपने के कैंसर के खतरे से राष्ट्र को सुरक्षित रखेगा।''

यही है संघ का राष्ट्रवाद और हिन्दू राष्ट्र की उनकी घृणित अवधारणा क्या ये विचार भारतीय संविधान की मूल भावनाओं से मेल खाती हैं? इस चिन्तन के मुताबिक मुट्ठीभर संघ के कार्यकर्त्ताओं को छोड़ कर बाकी सभी भारतीय ''गद्दार हैं और राष्ट्रीय हित के शत्राु हैं।

मीडिया और विज्ञान का भगवाकरण

–अतुल आनंद

''मैं अपने धर्म की शपथ लेता हूँ, मैं इसके लिए अपनी जान दे दूँगा। लेकिन यह मेरा व्यक्तिगत मामला है। राज्य का इससे कुछ लेना–देना नहीं। राज्य का काम धर्मनिरपेक्ष कल्याण, स्वास्थ्य, संचार, आदि मामलों का खयाल रखना है, न कि तुम्हारे और मेरे धर्म का।''

–महात्मा गाँधी

रत एक धर्मनिरपेक्ष देश है, ऐसा हमारे संविधान में कहा गया है। संक्षेप में कहें तो धर्मनिरपेक्षता का अर्थ होता है धर्म का राज्य से अलग होना। कई बार इस धर्मनिरपेक्षता शब्द का कोई अर्थ नहीं रह जाता है जब राष्ट्रीयता, मीडिया और विज्ञान के मामलों में देश के बहुसंख्यक धर्म का विशेष खयाल रखा जाता है। आज से लगभग दस साल पहले भाजपा के शासन वाली सरकार में एनसीईआरटी की इतिहास की किताबों से छेड़छाड़ कर उनका भगवाकरण करने की कोशिश की गयी थी। जिसका देश भर के शिक्षाविदों और बुद्धिजीवियों ने विरोध किया था। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय को भी हस्तक्षेप करना पड़ा था। समय के साथ दक्षिणपंथी समूहों और उनके "इतिहासकारों" व "बुद्धिजीवियों" द्वारा हिंदुत्व का प्रचार और भगवाकरण करने की कोशिशें बढ़ी हैं।

भारत माता, जो एक हिन्दू देवी दुर्गा का प्रतिरूप लगती है, को दक्षिणपंथी समूहों ने एक "राष्ट्रीय" प्रतीक के रूप में लगभग स्थापित कर लिया है। भारत माता गौरवर्णा है। भारत माता का रंग–रूप से लेकर उनका पहनावा तक एक हिन्दू देवी की तरह है, जो आधे से अधिक भारतीय महिलाओं के रंग–रूप और पहनावे से मेल नहीं खाता। वह दुर्गा की तरह शेर पर सवार है। दिलचस्प बात यह है कि देश का एक प्रमुख दक्षिणपंथी संगठन भारत माता की इस छवि को अपने प्रतीक के रूप में इस्तेमाल करता आया है। भारत माता की जय के नारे हिन्दू संगठनों के कार्यक्रमों से लेकर भारतीय सेना में समान रूप से गूँजते है।

मीडिया का जितना कवरेज हिन्दू धर्म के पर्व–त्योहारों को मिलता है, उतना कवरेज दूसरे धर्मों के पर्व–त्योहारों को शायद ही नसीब होता है। हिन्दू पर्व–त्योहारों के समय प्रमुख हिंदी अखबार अपने 'मास्टरहेड' को उन पर्व–त्योहारों के रंग से रंग देते हैं। त्योहारों के विशेष पृष्ठों और खबरों से अखबारों को भर दिया जाता है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भी बहुसंख्यक धर्म के त्योहारों में पूरी तरह डूब जाती है। वैसे भारतीय मीडिया सालभर हिन्दू धर्मग्रंथों के पात्राों और मिथकों को उद्धृत करती रहती है। भीम जैसे धार्मिक पात्राों को लेकर कार्टून–शो बनाए जाते हैं। हिंदी फिल्मों के नायक भी अधिकतर हिन्दू पात्रा ही होते हैं, भले ही उस पात्रा को निभाने वाले अभिनेता किसी दूसरे धर्म के हों। हाल ही में इतिहास से छेड़छाड़ का एक और उदाहरण देखने को मिला। टीवी पर शुरू हुए एक नये "ऐतिहासिक" कार्यक्रम में जानबूझकर अकबर को एक मुस्लिम आक्रान्ता और खलनायक के रूप में दिखाने की कोशिश की गयी

है। यह अकबर जैसे उदारवादी और धर्मनिरपेक्ष शासक का गलत चित्राण कर नयी पीढ़ी को भ्रमित करने की कोशिश है।

दूसरी तरफ हमारे शासक वर्ग ने (खासकर भाजपा के शासन–काल के दौरान) विज्ञान, स्वदेशी तकनीक और आविष्कारों को हिन्दू धर्म के प्रचार–प्रसार का साधन बना दिया। भारत में विकसित तकनीकों और मिसाइलों का नामकरण हिन्दू मिथकों और पात्रों के नाम पर किया जाने लगा। “अग्नि”, “इंद्र”, “त्रिशूल”, “वज्र”, “पुष्पक” आदि इसके उदाहरण हैं। दिलचस्प बात यह है कि हिन्दू मिथकों के नाम पर रखे गये इन मिसाइलों के विकास और निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाले ‘मिसाइलमैन’ डॉ कलाम एक अल्पसंख्यक समुदाय से हैं।

इतना ही नहीं, खेल के क्षेत्रा में मिलने वाले पुरस्कारों के नाम “अर्जुन”, “द्रोणाचार्य” आदि भी हिन्दू धर्मग्रंथों से लिये गये हैं। मध्यप्रदेश में “गौ–रक्षा कानून” जैसे अनूठे कानून लागू हैं। अब वहाँ निचली कक्षा के बच्चों को स्कूलों, मिशिनिरियों और मदरसों में गीता पढ़ाये जाने की कोशिश की जा रही है। यहाँ यह सवाल उठाना बेकार है कि यह कृपा सिर्फ हिन्दू धर्मग्रंथों पर ही क्यों की जा रही है? ईसाई और मुस्लिम धर्म के धर्मग्रंथों पर यह कृपा क्यों नहीं की जा रही? जब नरेन्द्र मोदी खुद के हिन्दू राष्ट्रवादी होने की घोषणा करते हैं तो हम भारतीयों को आश्चर्य नहीं होता क्योंकि यह देश तो पहले ही आधे हिन्दू–राष्ट्र में बदल चुका है। सावरकर और गोलवलकर के “हिन्दू–राष्ट्र” की संकल्पना को यथार्थ में बदलने की पूरी कोशिश की जा रही है।

दुर्भाग्य है कि बुद्धिजीवियों और वैज्ञानिकों का एक वर्ग आधे–अधूरे और बेबुनियाद तथ्यों के आधार पर हिन्दू मिथकों को स्थापित करने और हिंदुत्व का प्रचार–प्रसार करने का प्रयास कर रहा है। हाल ही में मीडिया और विज्ञान के भगवाकरण का एक बेमिसाल उदाहरण देखने को मिला। दिनांक 29–07–2013, सोमवार के दैनिक भास्कर, झारखंड संस्करण में पृष्ठ संख्या 12 को ‘सोमवारी’ विशेष पृष्ठ बना दिया गया था। दूसरे पृष्ठों पर भी श्रावण महीने में शिव आराधना और सोमवारी से जुड़ी खबरें हैं, लेकिन इस विशेष पृष्ठ पर “विशेषज्ञ” शिव और शिव–अराधना के महत्त्व का बखान कर रहे हैं। एक विशेषज्ञ जहाँ शिव की उपासना विधि बता रहे है वहीं दूसरी तरफ एक दूसरे विशेषज्ञ यह वा कर रहे हैं कि “शिवजी की उपासना से अपमृत्यु

इतिहास के साथ यह अन्याय

जब मैं इलाहाबाद में 1928 ई. में टीपू सुल्तान के सम्बन्ध में रिसर्च कर रहा था, उस वक्त मुझे इतिहास की एक पुस्तक मिली जिसे डॉ. हर प्रसाद शास्त्री ने लिखी थी, जो कलकत्ता विवि में संस्कृत के विभागाध्यक्ष थे। उसके एक अध्याय में लिखित बाक्य ने मुझे आश्चर्य में डाल दिया ‘तीन हजार ब्राह्मणों ने आत्महत्या कर ली, क्योंकि टीपू उन्हें जबरदस्ती मुसलमान बनाना चाहता था।’

मैंने तुरंत डॉ. शास्त्री को लिखा की उन्होंने टीपू के बारे में उपरोक्त बाक्य किस आधार पर और किस हवाले से लिखा है। कई पत्र लिखे जिसका जवाब नहीं मिला अंत में उन्होंने कहा की यह घटना ‘मैसूर गजेटियर’ से ली गयी है। गजेटियर न तो इलाहाबाद और न ही इम्पीरियल लाइब्रेरी कलकत्ता में मिल सका। तब मैंने मैसूर विवि के तत्कालीन कुलपति सर बृजेन्द्र नाथ सील को लिखा की डॉ. शास्त्री ने जो बात लिखी है उसके बारे में जानकारी दें। कुलपति जी ने मेरा पत्र प्रोफेसर कन्टैया के पास भेज दिया जो उस वक्त मैसूर गजेटियर का नया संस्करण तैयार कर रहे थे।

प्रो. कन्टैया ने कहा की मैसूर गजेटियर में ऐसी किसी घटना का नामो निशान नहीं है और मैसूर के इतिहास का विद्यार्थी होने के नाते मुझे इस बात का पूरा यकीन है कि ऐसी कोई घटना नहीं घटी। उन्होंने मुझे बताया की टीपू का सेनापति कृष्ण राव एवं प्रधानमंत्री पुरैया दोनों ही ब्राह्मण थे। उन्होंने मुझे 156 ऐसे मंदिरों की सूची भी भेजी जिसे टीपू सुल्तान वार्षिक अनुदान दिया करते थे। उन्होंने मुझे टीपू के उनतीस पत्रों की फोटोकॉपियाँ भेजी जो उन्होंने श्रृंगेरी मठ के जगद्गुरु शंकराचार्य को लिखे थे और सुलतान के उनसे अति घनिष्ठ सम्बन्ध थे। डॉ. शास्त्री की किताब पश्चिम बंगाल, असम, बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं राजस्थान के पाठ्यक्रम के लिए स्वीकृत थी। मैंने कलकत्ता विश्व विद्यालय के कुलपति सर आशुतोष चौधरी को किताब में जो झूठे बाक्य आये हैं उन्हें हटाने एवं समुचित कार्यवाई करने के लिए लिखा। तत्काल जवाब आया की वे सारे शब्द हटा लिये गये हैं।

लेकिन 1972 में आत्महत्या की वह घटना बाली बात उत्तर प्रदेश में जूनियर हाईस्कूल की इतिहास पाठ्यक्रम में उसी तरह मौजूद रही।

(उड़ीसा के पूर्व राज्यपाल, राज्यसभा के सदस्य और इतिहासकार प्रो. विशम्भरनाथ पाण्डेय, अपनी किताब ‘इतिहास के साथ यह अन्याय’ में)

देशों में लोकप्रिय है।

लोर्का की हत्या फासिज्म के अपराधों के इतिहास का एक सबसे दर्दनाक, खौफनाक, अमानुषिक और जघन्य कुकर्म का पन्ना है। लोर्का से स्पेन की जनता इतना प्यार करती थी कि कोई सोच भी नहीं सकता था कि उसकी हत्या भी की जा सकती है। नेरूदा ने लिखा है, "कौन विश्वास कर सकता था कि इस धरती में भी शैतान हैं, लोर्का के अपने शहर ग्रानादा में ही ऐसे शैतान थे जिन्होंने यह जघन्यतम अपराध किया।... मैंने इतनी प्रतिभा, स्वाभिमान, कोमल ह्रदय और पानी की बूँद की तरह पारदर्शिता, एक ही व्यक्ति में एक साथ कभी नहीं देखा। लोर्का की रचनाशीलता और रूपकों पर उसके समर्थ अधिकार ने मुझे हमेशा हीन बनाया। उसने जो भी कुछ लिखा। उस सबसे मैं प्रभावित हुआ। स्टेज में और खामोशी में, भीड़ में या दोस्तों के बीच उसने हमेशा सौंदर्य की श्रृष्टि की। मैंने उसके अतिरिक्त और किसी भी व्यक्ति के हाथों में ऐसी ऐंद्रजालिक क्षमता नहीं देखी। लोर्का के अतिरिक्त मेरा और कोई ऐसा भाई नहीं था जिसे मुस्कानों से इतना ज्यादा प्यार हो। वह हँसता था, गाता था, पियानो बजाने लगता था, नाचने लगता था।"

उसके एक समकालिक कवि ने उसके बारे में टिप्पणी करते हुए लिखा था। "दूसरे कवि पढ़े जाने के लिए हैं, लोर्का प्यार किये जाने के लिए है।" लोर्का के मन में अपनी उत्पीड़ित, दुखी, संघर्षशील जनता से अथाह प्यार था और जनता के प्यार का अथाह समुद्र भी उसे मिला था। उसने कहा था, "मैं कविता इसलिए लिखता हूँ कि लोग मुझसे प्यार करें।" लोगों ने उससे बेइंतहा प्यार किया। लेकिन फासिस्ट फ्रैंकों के गुर्गों की पाशविक नफरत उसे मिलनी ही थी।

डॉक्टर नारमन बेथ्यून की याद में

सूंग चिंग–लिंग ;मैडम सुनयात सेनद्ध

तीत के मानव समाजों की तुलना में, हमारी दुनिया बेहद जटिल है। इसके अत्यन्त विकसित संचार साधनों के चलते, पृथ्वी के हर हिस्से और मानव समाजों में होने वाली घटनायें परस्पर घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई हैं। अब कोई भी पृथक आपदा नहीं है और ऐसी कोई भी प्रगति नहीं है जो सभी की प्रगति में सहायक न हो।

यह परिस्थिति इंसानों के दिमागों में प्रतिबिंबित होती है। मनुष्यों के दिमाग भी विस्तार और जटिलता के मामले में विश्वव्यापी हो गये हैं। अपनी जनता और देश के हित की खोज में लगे मनुष्य के लिये अपने निकटतम पड़ोसी के सन्दर्भ में अपनी घरेलू परिस्थितियों पर विचार करना पर्याप्त नहीं है। विश्व प्रवृतियाँ हम सभी को अपने घेरे में समेट लेती हैं और इनमें अपनी भागीदारी से और इनमें अपना योगदान देकर ही हम अपने भविष्य को प्रभावित करते हैं। आज मनुष्यों के दिमागों के सामने सबसे बड़ा कार्यभार प्रतिगामी और मृत्यु की शक्तियों को समझने और उनके खिलाफ संघर्ष करने का है, उन सम्भावनाओं को सशक्त करने और वास्तविकता में परिवर्तित करने की आवश्यकता है जिन्हें हमारी दुनिया पेश करती है, जिन्हें सभी मनुष्यों के सम्पूर्ण जीवन में, अतीत की किसी भी दुनिया ने पेश नहीं किया।

किसी भी युग का नायक वह है जो बेमिसाल समर्पण, दृढसंकल्प, साहस और कौशल से उन महत्त्वपूर्ण कार्यों को पूरा करता है जिन्हें पूरा करने के लिये वह समय सभी लोगों के सामने चुनौती पेश करता है। आज ये सभी कार्य विश्वव्यापी हैं और परम्परागत नायक, चाहे वह अपने देश में काम करता है या विदेशी जमीन पर, अब एक विश्व नायक है और ऐसा सिर्फ ऐतिहासिक सिंहावलोकन के तौर पर नहीं है।

नॉर्मन बेथ्यून ऐसे ही एक नायक थे। वह तीन देशों में रहे, वहाँ काम किया और संघर्ष किया। कनाडा, जो उनकी जन्मभूमि थी; स्पेन, जहाँ नाजीवाद और फासीवाद के अंधकार के खिलाफ महान जनता के पहले संघर्ष में भाग लेने के लिये सभी राष्ट्रों के प्रगतिशील लोग एकत्रित हुए थे और चीन, जहाँ उन्होंने उन इलाकों में राष्ट्रीय स्वतंत्राता और लोकतंत्रा के नये आधार केंद्रों पर कब्जा करने और निर्माण करने में हमारी गुरिल्ला सेनाओं की मदद की, जिन पर जापान के सैन्य फासीवादी बड़ी लालसा से कब्जा करने की आशा करते

थे। उन्होंने वहाँ शक्तिशाली नागरिक सेना गठित करने में हमारी सहायता की जिसने अंततः पूरे चीन को आजाद किया। एक विशिष्ट पहचान के तौर पर वह इन तीनों देशों के नागरिकों से जुड़े हुए हैं। एक वृहद पहचान के तौर पर वह उन सभी लोगों से जुड़े हुए है जो राष्ट्रों के और नागरिकों के शोषण के खिलाफ संघर्ष करते हैं।

नॉर्मन बेथ्यून एक डॉक्टर थे और वह अपने पेशे का इस्तेमाल करते हुए और उसके दायरे में रहकर उन हथियारों से लड़े जिन्हें वे बेहतर ढंग से जानते थे। वह अपने विज्ञान के क्षेत्रा में एक विशेषज्ञ और पथप्रदर्शक थे। उन्होंने अपने हथियारों को धारदार और तेज बनाये रखा और उन्होंने अपने कौशल को सतर्कतापूर्वक और निरंतर, फासीवाद और साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष करने वाले अग्रणी समूहों के लिए समर्पित किया। उनके लिए फासीवाद मानवता के लिए किसी भी अन्य बुराई से बड़ी बीमारी था, एक ऐसा प्लेग जो करोड़ों लोगों के दिमागों और शरीरों को नष्ट कर देता था और मनुष्यता के गुणों को नकारते हुए वह उन सभी विज्ञानों को भी नकारता था जिनका उदय इंसानों के स्वास्थ्य, जोश और प्रगति में सहायक होने के लिए हुआ था।

नॉर्मन बेथ्यून ने जापान की गोलाबारी में काम करते हुए अपने चीनी विद्यार्थियों को जिन तकनीकों को सिखाया उनका महत्त्व इस बात से तय होता था कि उनका इस्तेमाल किस मकसद के लिये किया जाता था। जर्मनी और जापान तकनीकी तौर पर बेहद विकसित देश थे, परन्तु वे मानवता के विकास के शत्राुओं के नेतृत्व में काम कर रहे थे इसलिये उनका विज्ञान और उनका कौशल मानवता के लिये सिर्फ दुर्भाग्य लेकर आया। जनता के लिये लड़ने वालों का कर्तव्य है कि वे उन्नत तकनीकी कौशल हासिल करें, क्योंकि तकनीक वास्तव में सिर्फ उन्हीं के हाथों इंसानों की सेवा कर सकती है।

डॉक्टर नॉर्मन बेथ्यून चिकित्सा से जुड़े वह पहले व्यक्ति थे जो रक्त बैंकों को युद्धभूमि तक लेकर आये और उनके रक्त–आधान ने स्पेन गणतंत्रा के सैकड़ों लड़ाकों को जीवनदान दिया। चीन में उन्होंने यह नारा दिया, "डॉक्टरों! घायलों के पास जाओ! उनके अपने पास आने का इंतजार मत करो" और खुद इसका पालन किया। एक ऐसे परिवेश में जो स्पेन से एकदम अलग और काफी पिछड़ा हुआ था, वहाँ उन्होंने एक गुरिल्ला चिकित्सकीय सेवा की प्रक्रिया को संगठित किया जिसने हमारे हजारों बेहतरीन और बहादुर लोगों को जीवनदान दिया। उनकी योजनाएँ और तरीके न सिर्फ चिकित्सा विज्ञान के अनुभव पर आधारित थे, बल्कि सैनिक व राजनीतिक अध्ययन और नागरिक युद्ध में मोर्चो पर हासिल हुए अनुभव पर आधारित थे। स्पेन और चीन में बेथ्यून युद्धभूमि में चिकित्सा प्रदान करने वालों में अगुआ थे।

वे संघर्ष की परिस्थितियों, रणनीति, कार्यनीति और भूभाग को पूरी तरह से समझते थे और वे जानते थे कि उन चिकित्साकर्मियों से क्या उम्मीद की जा सकती है जो आजाद लोग थे और जो अपने घरों और भविष्य के लिये दूसरे आजाद लोगों के साथ मिलकर संघर्ष कर रहे थे। वे डॉक्टर, नर्स और अर्दली जिन्हें उन्होंने प्रशिक्षण दिया वे खुद को न सिर्फ तकनीकी सहायक, बल्कि मोर्चे पर काम करने वाले सैनिक समझते थे, जिनका काम उतना ही महत्त्वपूर्ण था जितना उनका जो मोर्चे पर लड़ने वाली टुकड़ियों में शामिल थे।

डॉक्टर बेथ्यून ने यह सब ऐसी परिस्थितियों में कार्यान्वित किया जिनमें कोई अन्य चिकित्सक इस कार्य की व्यापक समझ के बिना पूरा करने की उम्मीद नहीं कर सकता था। उन्होंने चीन के बेहद पिछड़े इलाकों के पहाड़ी गाँवों में ये कार्य पूरे किये, उन लोगों के साथ काम करते हुए जिनकी भाषा की उन्हें पहले से लगभग कोई समझ नहीं थी और तब जब उनके तपेदिक से बेहद कमजोर पड़ चुके शरीर में उनके प्रबल दृढ़विश्वास और दृढ़इच्छाशक्ति के अतिरिक्त कोई अन्य दमखम शेष नहीं था।

दुनिया की उनकी व्यापक समझ, जिससे वे शक्ति हासिल करते थे, वह एक ऐसा गुण था जिसने हमारे समय में काम करने वाले उन दूसरे चिकित्सक नायकों की तुलना में उनके काम को ज्यादा वैश्विक अर्थ प्रदान किया जो इसी प्रकार की हृदयविदारक परिस्थितियों में जी–तोड़ कोशिश कर रहे थे, जैसे कि लाब्राडोर में फादर डेमियन और डॉक्टर ग्रेनफेल।

डॉक्टर बेथ्यून को किसने मारा? डॉक्टर बेथ्यून फासीवाद के खिलाफ लड़ाई में मारे गये, जिसके विरुद्ध उन्होंने अपने जूनून, कौशल और क्षमता का इस्तेमाल किया। जिस इलाके में उन्होंने काम किया, उसकी सिर्फ जापानी दुश्मनों के द्वारा नाकेबंदी नहीं की गयी थी। चियांग काई–शेक की प्रतिक्रियावादी सरकार ने भी उसकी घेराबंदी की हुई थी जो जनता की लड़ाई में भाग लेने के बजाय हमेशा ही जीत के लिये समझौता करने को तत्पर रहती थी। बेथ्यून जिन लोगों के लिये लड़े उन्हें सिर्फ हथियारों और गोला–बारूद के मामले

को ही अयोग्य नहीं माना जाता था बल्कि उन्हें अपने घायलों के जख्म भरने के लिये चिकित्सीय सामान की आपूर्ति के लायक भी नहीं समझा जाता था। वे संक्रमण से मर जाते थे क्योंकि उन्हें आधुनिक प्रतिकारक दवायें हासिल नहीं थी।

बेथ्यून जहरबाद (घाव के सड़ने) से मरे, क्योंकि वह रबर के दस्तानों के बिना ऑपरेशन कर रहे थे और उनके इलाज के लिये सल्फा दवा (एटीबायोटिक) उपलब्ध नहीं थी।

इंटरनेशनल पीस हॉस्पिटल जिसकी डॉक्टर बेथ्यून ने स्थापना की, वह अब नयी परिस्थितियों में काम कर रहा है। चीन आखिरकार, आजाद हो गया है। परन्तु बेथ्यून की मृत्यु के पश्चात उनकी जगह नियुक्त, डॉक्टर किश्च को, जिन्होंने स्पेन में उनके साथ काम किया था, चियांग काई–शेक की घेराबंदी ने उस पद पर काम करने से रोक दिया था। भारतीय चिकित्सकीय दल के डॉक्टर कोटनीस, जो अंततः डॉक्टर बेथ्यून अस्पतालों में से एक के निर्देशक बने और जिन्होंने बहादुरी के साथ उनके काम को जारी रखा, वे भी अपने पद पर काम करते हुए मारे गये। वह भी इसीलिये क्योंकि उनका इलाज करने के लिये फौरन ही दवाइयाँ उपलब्ध नहीं थी। डॉक्टर बेथ्यून और डॉक्टर कोटनीस ऐसे कई पीड़ितों में से दो लोग थे, जो अगर घेराबंदी नहीं होती, तो शायद वे आज भी जीवित होते और दुनियाभर के आजाद लोगों के ध्येय के लिये संघर्ष कर रहे होते।

मुझे ऐसे लोगों के अलावा जो हमारे समय के इस नायक के जीवन से परिचित हैं, दूसरे अनगिनत लोगों का डॉक्टर नॉर्मन बेथ्यून से परिचय कराते हुए बेहद प्रसन्नता हो रही है, जो आजादी की लड़ाई में सभी लोगों के एकसमान ध्येय के शानदार प्रतीक हैं। उनका जीवन, मृत्यु और विरासत विशेषतौर पर मेरे करीब है, सिर्फ इसलिये नहीं क्योंकि राष्ट्रीय मुक्ति के हमारे नागरिक संघर्ष में उन्होंने बेहद शानदार सेवा की लेकिन चीन वेलफेयर लीग में अपने खुद के कार्यों के कारण भी, जिसकी मैं अध्यक्ष हूँ। लीग को यह निर्देश है कि वह बेथ्यून पीस हॉस्पिटल और बेथ्यून मेडिकल स्कूल समूह को मदद हासिल कराने की दिशा में काम करे जो उनके कार्यों और उनकी यादों को आगे बढ़ाने के लिये बने हैं।

नया चीन कभी भी डॉक्टर बेथ्यून को नहीं भुला पायेगा। वह उन लोगों में से एक थे जिन्होंने आजाद होने में हमारी सहायता की। उनके काम और उनकी यादें हमेशा हमारे साथ बनी रहेंगी।

(यह लेख सिडनी गोर्डन और टेड एलान की बहुचर्चित पुस्तक 'द स्काल्पेल, द सोर्ड' की भूमिका से लिया गया है। हिन्दी अनुवाद 'नार्मन बेथ्यून की जीवनी' गार्गी प्रकाशन से शीघ्र प्रकाश्य। अनुवाद : दिनेश पोसवाल)

एदुआर्दो गालेआनो की कविता

सपना देखने का अधिकार

युक्त राष्ट्र संघ ने 1948 में और दुबारा 1976 में मानवाधिकारों की लम्बी सूची जारी की, लेकिन मानवता की भारी बहुसंख्या आज भी सिर्फ देखने, सुनने और चुप रहने के अधिकार का ही उपभोग कर पाती है। मान लीजिये की हम सपना देखने के अधिकार का प्रयोग करने लगें, जिसकी आज तक किसी ने घोषणा नहीं की? मान लीजिए कि हम थोड़ा बक–बक करने लगें? आइये, हम अपनी निगाहें इस मौजूदा घिनौनी दुनिया की जगह एक बेहतरीन दूसरी दुनिया की ओर टिकाएँ जो मुमकिन है–

हवा तमाम जहरीली चीजों से साफ हो, सिवाय उन जहरों के जो पैदा हुए हों इंसानी डर और इंसानी जज्बात से;

सडकों पर, कारें रौंदी जाएँ कुत्तो के द्वारा;

लोग कारों से न हाँके जाएँ या संचालित न हों कम्प्यूटर प्रोग्राम से या खरीदे न जाएँ सुपर बाजार के द्वारा या उन पर निगाह न रखी जाय टेलीविजन से;

आगे से टीवी सेट परिवार का सबसे खास सदस्य न रह जाएँ और उनके साथ वैसा ही सलूक किया जाये, जैसा इस्तरी या वाशिंग मशीन के साथ;

लोग श्रम करने के लिए जीने के बजाय जीने के लिए श्रम करें;

कानून की नजर में माना जाये मूर्खता का अपराध कि लोग धन बटोरने या जीतने के लिए जिन्दा रहें, बजाय इसके कि सहजता से जीयें, उन पंछियों की तरह जो अनजाने ही चहचहाते हैं और उन बच्चों की तरह जो खेलते हैं बिना यह जाने कि वे खेल रहे हैं;

किसी देश में युद्ध के मोर्चे पर जाने से इन्कार करने वाले नौजवान जेल नहीं जायें बल्कि जेल जायें वे

योग से मिल सकता है छुटकारा"। इस तरह के विशेष पृष्ठ और विशेषज्ञ विश्लेषण दूसरे धर्मों के त्योहारों के लिए नहीं दिखते हैं।

सबसे दिलचस्प लेख तो इस पृष्ठ के निचले भाग पर "एक वैज्ञानिक विश्लेषण" के रूप में है। शायद अखबार ने दूसरे लेखों की अवैज्ञानिकता को संतुलित करने के लिए इस "वैज्ञानिक विश्लेषण" को जगह दी है। हालाँकि यह लेख भी दूसरे लेखों की ही तरह अवैज्ञानिक है। इस लेख का शीर्षक है "न्यूक्लियर रिएक्टर की बनावट है शिवलिंग के जैसी"। आश्चर्य नहीं कि इस तरह के बेसिरपैर की खबरों के कारण हिंदी मीडिया की यह दुर्गति हुई है। इस लेख को लिखने वाले रांची के एक जाने माने भूवैज्ञानिक डॉ. नीतीश प्रियदर्शी है। उन्होंने शिवलिंग और परमाणु संयंत्रा में समानता स्थापित करने के लिए अजीबोगरीब तथ्य दिये हैं। जैसे कि परमाणु संयंत्रा और शिवलिंग की सरंचना बेलन की तरह होती है। यह साबित करने के लिए लेखक ने भाभा परमाणु संयंत्रा का उदाहरण दिया है।

इससे यह साबित नहीं हो जाता कि परमाणु संयंत्रों का शिवलिंग से कोई रिश्ता है। अगर ऐसा होता तो परमाणु संयंत्रा का आविष्कार विदेश की जगह भारत में किसी शिवभक्त ने किया होता। ऐसे कामचलाऊ विश्लेषण को वैज्ञानिक विश्लेषण बोल कर आप खुद अपनी फजीहत करवा रहे हैं। लेखक आगे कहते हैं कि नाभिकीय संयंत्रा में भी जल का प्रयोग किया जाता है और शिवलिंग पर भी जल प्रवाहित की जाती है। नाभिकीय संयंत्रा में जल का प्रयोग नाभिकीय छड़ों को ठंडा करने के लिए किया जाता है। वहीं शिवलिंग पर जल के अलावा दूध भी डाला जाता है, लेकिन ये सब शिवलिंग को ठंडा करने के लिए तो नहीं किया जाता। लेखक महोदय भी ऐसा कोई दावा करते नजर नहीं आते।

यह लेख बेबुनियाद तथ्यों और सुनी–सुनाई बातों पर आधारित है, जिसका एक ही उद्देश्य है– हिन्दू धर्म और इसके "इतिहास" की श्रेष्ठता को साबित करना। लेखक 'स्यामंतक' नाम के किसी "रेडियोएक्टिव" पत्थर का जिक्र भी करते है जो सोमनाथ मंदिर में हुआ करता था। लेखक ने यह बताने की जरूरत नहीं समझी कि उस "रेडियोएक्टिव" पत्थर के संपर्क में आने वाले लोग कैंसर का शिकार होकर मरे थे या नहीं?

डॉ. नीतीश प्रियदर्शी के ब्लॉग पर और भी दिलचस्प चीजें मिलती हैं। इस लेख के अखबार में छपने के दिन ही डॉ. नीतीश प्रियदर्शी अपने ब्लॉग पर एक स्लाइड शो डालते हैं। प्राचीन "भारतीय" संस्कृति में नाभिकीय हथियारों के प्रयोग पर उनके शोध पर आधारित लगभग तेरह मिनट की इस स्लाइड शो का नाम है "डिड इंडिया हैव द एटॉमिक पॉवर इन एन्शिएन्ट डेज?" (क्या भारत के पास प्राचीन काल में परमाणु शक्ति थी?)। अपने शोध से वह यह निष्कर्ष निकालते हैं कि महाभारत के युद्ध में नाभिकीय हथियारों का प्रयोग हुआ था। वह अपने इस स्लाइड शो की शुरुआत कणाद द्वारा अणु के अस्तित्व को लेकर खोज से करते हैं। इस स्लाइड शो में वह हिन्दू धर्मग्रंथों से ऐसे हथियारों के उदाहरण देते है जिसका नाभिकीय हथियारों से कोई सम्बंध नहीं दिखता। जैसे राम द्वारा शिव का धनुष तोड़ा जाना, मोहनास्त्रा, आग्नेयास्त्रा, ब्रह्मास्त्रा, पाशुपतास्त्रा, इंद्र का वज्र, आदि।

इस स्लाइड शो में पौराणिक कथाओं के नागास्त्रा, जिसके प्रयोग से नागों की बारिश होती थी, के जैविक हथियार होने की सम्भावना व्यक्त की गयी है। डॉ. नीतीश प्रियदर्शी यहाँ हिन्दू संस्कृति की महानता और श्रेष्ठता सिद्ध करने के चक्कर में कुछ जरूरी सवालों का जवाब देना भूल जाते हैं। क्या इन अस्त्रों में नाभिकीय पदार्थों का प्रयोग हुआ था? सिर्फ कुछ मंत्रों के सहारे आप नाभिकीय अस्त्रा कैसे बना सकते है? अगर महाभारत के युद्ध में नाभिकीय हथियारों का प्रयोग हुआ भी था तो पांडव और दूसरे लोग जीवित कैसे बच गए? अगर कोई जीवित बचा भी तो विकिरण का प्रभाव आने वाली पीढ़ियों पर रहता, कई तरह की अनुवांशिक बीमारियाँ और विकृतियाँ होती। जिस कुरुक्षेत्रा में इन नाभिकीय हथियारों का इस्तेमाल हुआ था, वह जगह रहने लायक नहीं रहती, विकिरण का प्रभाव हजारों सालों तक रहता है। इन ग्रंथों में परमाणु हथियार या परमाणु संयंत्रा बनाने की विधि लिखी होनी चाहिए थी।

अपने इस शोध में डॉ. नीतीश प्रियदर्शी ने हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की संस्कृति को भी नहीं छोड़ा है जिनका हिन्दू सभ्यता–संस्कृति से कोई रिश्ता नहीं है। इस स्लाइड शो के अंत में डॉ. नीतीश प्रियदर्शी अपने इस शोध की जिम्मेदारियों से खुद को बचाते हुए नजर आते है। वह बड़ी चालाकी से यह कह कर निकल जाते

है कि इस शोध से उन्होंने कुछ साबित करने की कोशिश नहीं की है, यह शोध उन्होंने कुछ इंटरनेट वेबसाइटों और किताबों की मदद से किया है। हालाँकि वह उन इंटरनेट वेबसाइटों और किताबों का कोई संदर्भ नहीं देते है। डॉ. नीतीश प्रियदर्शी इन धर्मग्रंथों का वैज्ञानिक और तार्किक विश्लेषण करने की जगह इनका महिमामंडन करते दिखते हैं।

डॉ. नीतीश प्रियदर्शी अपने एक दूसरे हालिया “शोध” में झारखंड के आदिवासी गाँवों में राम–लक्ष्मण के “पद–चिन्ह” खोज रहे हैं, जिसकी खबर झारखंड के एक अंग्रेजी अखबार ने छापी है। उनके इस “शोध” का तरीका भी हिन्दू धर्मग्रन्थों के अध्ययन तक सीमित है। इस “शोध” में वह गाँव में प्रचलित महाभारत और रामायण से जुड़ी किंवदंतियों का जिक्र भी करते हैं। यहाँ पेंच यह है कि आदिवासियों के खुद के आदि–धर्म हैं, उनका हिन्दू धर्म से कोई लेना–देना नहीं, तो फिर ये महाभारत और रामायण की किंवदंतियाँ कहाँ से आयी? इस बाबत जब डॉ. नीतीश प्रियदर्शी से सवाल किया गया तो उन्होंने कहा कि वह भूवैज्ञानिक हैं और वहाँ पत्थरों और “पद–चिन्हों” पर शोध करने गये थे, उन्होंने गाँव वालों से ज्यादा बातचीत नहीं की।

“अल्पसंख्यक तुष्टिकरण” जैसे जुमलों को उछालने वाले यह आसानी से भूल जाते हैं कि इस देश में बहुसंख्यक धर्म का तुष्टिकरण कैसे कई स्तरों पर होता रहता है। इस मामले में मीडिया, बुद्धीजीवी, प्रशासन मिलकर अपनी–अपनी भूमिका निभाते ही हैं, लेकिन कई बार अदालतें भी हिन्दू मिथकों के आधार पर फैसलें सुनाती है।

(अतुल, रांची से जनसंचार में स्नातक करने के बाद अभी टाटा सामाजिक विज्ञान संस्थान, मुंबई से मीडिया में स्नातकोत्तर कर रहे है। इनसे संपर्क का पता है–
जीपदामतण्जनस ⁄ हउंपसण्बवउ)

गुजरात : गरीबी के पारावार में विकास की मीनार

–विक्रम

014 में लोकसभा चुनाव होना है। इसकी तैयारी जोरों पर है। ऐसा लग रहा है जैसे चुनावी दंगल में भाजपा के पहलवान के मुकाबले कांग्रेस का पिद्दी खड़ा है। धुँआधार प्रचार का कमाल है कि आज नरेंद्र मोदी का व्यक्तित्व नौजवानों को खूब लुभा रहा है। वे गुजराती और हिन्दी में अच्छा भाषण दे लेते हैं। 2011 में अपने ‘वाइब्रेंट गुजरात’ सम्मलेन में उन्होंने अपनी सरकार की उपलब्धियाँ गिनाते हुए कहा था कि विकास के मामले में गुजरात कितना आगे है, इसका प्रमाण यह है कि यूरोप में भिन्डी की आपूर्ति गुजरात से होती है, सिंगापुर में दूध गुजरात से जाता है, राज्य में छः लाख जल संचय के उपाय किये गये हैं, पूरे देश में जल स्तर नीचे जा रहा है जबकि अकेले गुजरात में यह ऊपर उठ रहा है।

लेकिन लगता है सच्चाई देवी उनसे खफा है क्योंकि देश में भिन्डी के उत्पादन और निर्यात के मामले में गुजरात नहीं, बल्कि आँध्रप्रदेश अग्रणी है। दूध के उत्पादन में उत्तरप्रदेश पहले स्थान पर है जबकि गुजरात चौथे स्थान पर है। पिछले साल गुजरात का “कपास का टोकरा” राजकोट जब भयंकर सूखे से जूझ रहा था तो उसके लिए सिंचाई के किसी वैकल्पिक साधन की कोई व्यवस्था नहीं की गयी। लिज्जत पापड़ की शुरूआत कुछ महिलाओं ने 1959 में की थी और उनकी संस्था ‘सेवा’ मोदी की आँखों में चुभती रही है। लेकिन अब मोदी खुद ही उनकी उपलब्धियों का श्रेय अपने कंधे पर लेकर अपनी पीठ थपथपाते फिर रहे हैं। बेरोजगारी का आलम यह है कि (एनएसएसओ) की एक रिपोर्ट के अनुसार पिछले 12 सालों में यहाँ रोजगार वृद्धि दर शून्य के करीब पहुँच चुकी है। एक सवाल सहज ही जेहन में आता है कि अगर वहाँ बेरोजगारी की समस्या हल कर ली गयी है, तो देश से रोजगारों का बहाव गुजरात की ओर क्यों नहीं हो रहा है?

सच्चाई यह है कि गुजरात निजी कम्पनियों का अभ्यारण्य बना हुआ है। टाटा ने पश्चिम बंगाल के सिंगूर से खदेड़े जाने के बाद नैनो कार का अपना प्लांट गुजरात स्थानान्तरित कर लिया। टाटा ने यहाँ 2200 करोड़ का निवेश किया, जबकि 5970 करोड़ का कर्ज

गुजरात सरकार ने 0.1 फीसदी ब्याज पर दिया। 10000 रुपये प्रति वर्ग मीटर की जमीन 900 रुपये के भाव में दी और वह भी कृषि विश्वविद्यालय की जमीन हड़प कर। इसके अलावा टाटा को बिजली, पानी, सड़क सब कुछ सस्ती दरों पर मुहैया किया गया। मोदी की कृपा बरसने के बाद अब टाटा कम्पनी बड़ी संख्या में कारों के उत्पादन में लगी हुई है। इसी तरह गौतम अदानी की कम्पनी, अमरीकी गैस कम्पनी, जियो और अन्य कम्पनियाँ तो गुजरात में बहुत फल–फूल रही हैं, लेकिन विकास की इस तेज आँधी का असर जनता की जिन्दगी पर दिखायी नहीं देता।

गुजरात सरकार ने गरीब छात्राों को शिक्षा देने से हाथ खड़े कर दिये हैं। उसने मई 2012 में उच्च न्यायालय को कहा कि सामाजिक–आर्थिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के छात्राों की प्राथमिक शिक्षा के लिए उसके पास पर्याप्त पैसा नहीं है। गुजरात सरकार का 2013–14 का बजट 1.14 लाख करोड़ का है, लेकिन उसके पास गरीब बच्चों को पढ़ाने के लिए पैसा नहीं है। दूसरी ओर 2011 के एक आदेश में सरकार ने निजी शिक्षा संस्थानों को प्रवेश प्रक्रिया और मनमानी फीस वसूलने की खुली छूट दे दी है। गुजरात के सरकारी स्कूलों की जर्जर हालत का अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि 1999–2000 में सरकारी स्कूलों में 81.34 लाख बच्चे पढ़ते थे। 2011–12 में उनकी संख्या घटकर 60.32 लाख रह गयी। बाकी गरीब बच्चों को पढ़ाई छोड़ने या मध्यवर्ग के बच्चों को निजी स्कूलों में प्रवेश के लिए बाध्य कर दिया गया, जहाँ उनके अभिभावकों को ऊँची फीस भरनी पड़ती है। 2003 में 16.80 लाख बच्चों ने पहली कक्षा में प्रवेश लिया था जबकि 2013 तक दसवीं कक्षा में मात्रा 10.30 लाख बच्चे रह गये। इस तरह बच्चों को स्कूल में रोके रखने की दर के मामले में देशभर में गुजरात का 18वाँ स्थान है। प्राथमिक विद्यालयों की उपेक्षा का आलम यह है कि जहाँ 2005–06 में अहमदाबाद नगर निगम के पास 541 प्राथमिक विद्यालय थे, वहाँ 2011–12 में घटकर 464 रह गये। शिक्षकों की कमी और खराब होता ढाँचा सरकारी विद्यालयों की पहचान बन गयी है। ये आँकड़े खुद गुजरात सरकार ने दिये हैं। निजी शिक्षा इतनी महँगी हो गयी है कि आम आदमी के बच्चे उसमें पढ़ नहीं सकते। गुजरात के बच्चे सिर्फ शिक्षा से वंचित हैं, इतना ही नहीं है। ऐसा भी नहीं है कि वे पोष्टिक भोजन पा रहे हैं और उनका स्वास्थ्य ठीक है। आँकड़े बताते हैं कि गुजरात में खून की कमी (एनीमिया) से पीड़ित बच्चों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। 1998–99 में यह अनुपात 74.5 प्रतिशत था जो 2005–06 में 80.1 प्रतिशत हो गया। इसी अवधि में एनीमिया से पीड़ित गर्भवती महिलाओं की संख्या 47.4 प्रतिशत से बढ़कर 60.6 प्रतिशत हो गयी। बाल विकास सेवा योजना के बारे में कैग की रिपोर्ट में दी गयी जानकारी चौंकाने वाली है। जिन आठ राज्यों में एक लाख से अधिक बच्चे गम्भीर कुपोषण के शिकार हैं, उनमें गुजरात भी शामिल है। बच्चों में मृत्युदर के मामले में भी गुजरात अगली कतार में है। वहाँ 2005–06 में 51,300 लोगों पर एक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र था, लेकिन 2011–12 में 56,100 लोगों पर एक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र रह गया हैं।

हिन्दू संस्कृति में महिलाओं को देवी के समान माना गया है। भाजपा ने बार–बार महिलाओं की दशा सुधारने का आश्वासन भी दिया। लेकिन वहाँ की हकीकत उनके इरादों की चुगली कर ही देती है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी एक रिपोर्ट के मुताबिक 2006–07 में दो लाख से अधिक महिलाओं को राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना का लाभ मिलना था, लेकिन उनमें से केवल 42,373 महिलाओं को ही यह लाभ दिया गया जो केवल 20 प्रतिशत है। इस मामले में देश भर में गुजरात का 17वाँ स्थान है। ग्यारवीं पंचवर्षीय योजना में अनुसूचित जाति के बच्चों और छात्राों के विकास के लिए 29 परियोजनाओं को लागू किया जाना था, लेकिन 18 परियोजनाओं में अनुमान से बहुत कम खर्च किया गया। हमारे देश में बुजुर्गों की सेवा करना धर्म माना जाता है, लेकिन गुजरात इस मामले में भी फिसड्डी साबित हुआ। 2006–07 में 3.29 लाख लोगों को राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना का लाभ मिलना चाहिए था लेकिन गुजरात सरकार ने केवल 40,117 बुजुर्गों को ही पेंशन दी, जो कुल संख्या का सिर्फ 12.2 प्रतिशत है, यानी 87.8 प्रतिशत बुजुर्गों को इससे वंचित रखा गया।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ 65 प्रतिशत से अधिक आबादी खेती पर निर्भर है। केन्द्र की कांग्रेस सरकार ने अपनी नीतियों के जरिये देश भर के किसानों को बरबादी के कगार पर ला दिया है, लेकिन इस कार्य

में अपना अमूल्य योगदान देने में गुजरात सरकार भी इसमें पीछे नहीं है। सन 2000–06 के दौरान यहाँ सिंचाई परियोजनाओं के लिए 10,158 हेक्टेयर भूमि का अधिग्रहण किया गया, जिसके चलते 15,731 किसान परिवार प्रभावित हुए और उन्हें प्रति एकड़ 22,611 रुपये मुआवजा दिया गया। इसी समय उद्योग के लिए किसानों की 3006 हेक्टयेर भूमि का अधिग्रहण किया गया, जिससे 424 परिवार प्रभावित हुए और उन्हें प्रति एकड़ 15,873 रुपये मुआवजा मिला। यह 1991–2000 के दौरान मिले मुआवजे से बहुत कम है क्योंकि उस समय उद्योग के लिए जिस 5,626 हेक्टेयर भूमि का अधिग्रहण करके 2888 परिवारों को विस्थापित किया गया था, लेकिन उन्हें साढ़े तीन गुना से भी अधिक प्रति एकड़ 59,294 रुपये मुआवजा दिया गया था। अपनी खेती से उजड़ चुके किसान बेरोजगार होकर इधर–उधर भटकने पर मजबूर हैं। आखिर मुआवजे में मिला 2–3 लाख रुपये से कितने दिन घर चलाते? इतना ही नहीं, जूनागढ़ के जैतपुर–बेरवाल के बीच बन रहे हाइवे के लिए किसानों की 720 एकड़ जमीन छीन ली गयी। इसके खिलाफ जब किसानों ने आन्दोलन किया, तो पुलिस ने आन्दोलन का दमन करने के लिए किसानों पर बर्बरतापूर्वक लाठी चलायी। सरकार ने 289 किसानों को गिरफ्तार कर लिया, ताकि किसान आन्दोलन को तोड़ा जा सके। लेकिन फिर भी किसान आन्दोलन उग्र रूप लेता जा रहा है। अब किसान किसी भी कीमत पर जमीन देने के लिए तैयार नहीं हैं। एक नाटकीय घटना में किसानों की स्त्रियों ने मदद के लिए मोदी को खून से लिखा खत भेजा। क्योंकि मोदी ने प्रचार के दौरान अपने जोशीले अंदाज में कहा था कि "हे, मेरी गुजरात की बहनों, आपको कोई समस्या हो तो मुझे 50 पैसे के एक पोस्टकार्ड पर चिट्ठी लिख भेजना, मैं आपकी सभी समस्याओं को दूर कर दूँगा।" लेकिन न तो किसी ने किसानों की बात सुनी और न ही उनकी स्त्रियों द्वारा खून से लिखी चिट्ठी ही काम आयी।

एनएसएसओ (राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संस्थान) के अनुसार, गुजरात के शहरी इलाकों में दिहाड़ी मजदूरी की दर 106 रुपये है, जबकि केरल में यह 218 रुपये है। गुजरात के ग्रामीण इलाकों में यह 83 रुपये है। दिहाड़ी मजदूरी के मामले में देश भर में गुजरात 12वें स्थान पर है। पहले स्थान पर पंजाब है जहाँ गाँवों में दिहाड़ी 152 रुपये है। मोदी ने 'वाइब्रेंट गुजरात सम्मलेन' में कहा कि "गुजरात में मजदूरी की कोई समस्या नहीं है।" सूरत में इसके एक हफ्ते बाद 30 हजार पावरलूम मजदूरों ने कम मजदूरी का विरोध करते हुए चक्का जाम कर दिया और पुलिस के हिंसक दमन के बाद उग्र होकर कई गाड़ियों में आग लगा दी। सन 2011 में मारूति–सुजुकी कम्पनी के दमन–उत्पीड़न के खिलाफ मजदूरों ने हड़ताल कर दी, तो सुजुकी कम्पनी को लुभाने के लिए मोदी जापान पहुँच गये और कम्पनी को हरियाणा में अपना प्लांट बंद करके गुजरात आने का निमंत्राण दे डाला। दरअसल गुजरात में निवेश का माहौल बनाने के लिए किसानों की जमीनों पर कब्जा करके उसे औने–पौने दामों में उद्योगपतियों को बेचा जा रहा है। उन्हें सस्ते दर पर कर्ज, बिजली और अन्य साधन मुहैया किया जा रहा है। दूसरी ओर, मजदूर यूनियनों का दमन करके उन्हें नख–दन्त विहीन बना दिया गया है। यही कारण है कि अम्बानी, आदानी, टाटा और दूसरे औद्योगिक घराने मोदी के नेतृत्व का गुणगान करते नहीं अघाते।

मोदी के विकास के दावे और हकीकत के बीच कितना अन्तर है, इसे भी देख लेते हैं। उन्होंने दावा किया कि गुजरात ने सार्वजनिक क्षेत्रा की कम्पनियों के संचालन के लिए उच्चस्तरीय पेशेवर संस्कृति विकसित की है। इनकी कार्यक्षमता में गजब का सुधार आया है। लेकिन मार्च 2013 में सार्वजनिक कम्पनियों पर कैग ने एक रिपोर्ट बनायी है, जिसमें गुजरात सरकार के दावे की कलई खुल जाती है। यह रिपोर्ट बताती है कि कुछ ही सार्वजनिक कम्पनियाँ मुनाफा कमा रही हैं, लेकिन अधिकतर कम्पनियों के वित्तीय प्रबन्धन, योजना और उन्हें लागू करवाने में भारी कमियाँ हैं। इनका कुल घाटा 4052 करोड़ रुपये है। गुजरात में 2012 के विधानसभा चुनाव के समय मोदी ने प्रत्येक जिले में एक दिन उपवास रखकर अपना सद्भावना मिशन पूरा किया। उन्होंने प्रत्येक जिले में विकास कार्यों के लिए बड़ी वित्तीय राशि जारी करने का वचन दिया। सभी जिलों को मिलाकर यह राशि 39,769 करोड़ रुपये बैठती है। अमरेली और दाहोद के जिलाधिकारियों ने इस बात से इन्कार किया कि अब तक विकास कार्यों के लिए कोई बड़ी राशि प्रदेश सरकार की तरफ से उन्हें मिली है। गुजरात के राजकीय वित्त विभाग और प्रशासन विभाग ने इस बारे में कोई जानकारी देने से इन्कार किया है। जबकि सद्भावना मिशन में जनता के टैक्स

का 160 करोड़ रुपया पानी में बहा दिया गया। क्या यह वादा खिलाफी की हद नहीं है?

दरअसल गुजरात सरकार इस मामले में भाजपा की पुरानी परम्परा को ही निभा रही है। 1997–98 के लोकसभा चुनाव के दौरान भाजपा ने अयोध्या में राम मन्दिर बनाने, भ्रष्टाचार मुक्त प्रशासन देने और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करके स्वदेशी अपनाने का वादा किया था। केन्द्र में सरकार बनाते ही वह सभी वादों को भूल गयी। राम मन्दिर का क्या हुआ, यह सभी जानते हैं। अब तक भाजपा के दो अध्यक्ष और कई बड़े नेता भ्रष्टाचार में लिप्त पाये गये। अपने शासनकाल में भाजपा ने सैकड़ों विदेशी वस्तुओं के आयात से प्रतिबंध हटाकर उनको मँगाये जाने का रास्ता साफ किया। नतीजा, उत्तरप्रदेश के सबसे बड़े गढ़ से भाजपा का बुरी तरह सफाया हो गया। उस सरकार के मुखिया, अटल बिहारी वाजपेयी के व्यक्तित्व के आगे नरेंद्र मोदी तो कहीं ठहरते भी नहीं।

मोदी की छवि और गुजरात सरकार की उपलब्धियों को चमकाने का ठेका एक अमरीकी कम्पनी एप्को को दिया गया है। वे इस काम के लिए हर महीने 17 लाख रुपये देते हैं। मोदी की तरह नाइजीरिया के पूर्व तानाशाह सानी अबाचा, कजाखिस्तान के राष्ट्रपति नूर सुलतान नजरबायेव और माफिया मिखाइल खोदोरसकी से जुड़े रूसी नेता भी इस कम्पनी के ग्राहक हैं। युद्ध भड़काने के लिए जनता को तैयार करना, तानाशाहों का बचाव करना, नेताओं को चुनाव जीतने के तिकड़म सिखाना और बड़ी कम्पनियों को मुनाफे की तरकीब सिखाना इस कम्पनी का खास धंधा है। इसने ईराक पर युद्ध थोपने के लिए पूर्व अमरीकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश और ब्रिटेन के प्रधानमन्त्राी टोनी ब्लेयर के पक्ष में हवा बनायी थी। मोदी के पक्ष में झूठ को सच और सच को झूठ बनाने की कला के पीछे एप्को का ही हाथ है। एप्को ही मोदी के भाषण लिखवाता है, उनके पक्ष में हवा बनाता और फेसबुक और ट्वीटर जैसी सोशल मीडिया को चलाता है। एप्को की कृपा से ही गुजरात सरकार की नैनो घोटाले की खबर अखबार के किसी कोने में नहीं छपती है। टाइम्स नाऊ और एनडीटीवी पर महाराष्ट्र के किसानों की दुर्दशा की खबरें तो आती हैं, लेकिन गुजरात के किसानों की आत्महत्या या उनके आन्दोलनों की कोई खबर नहीं दिखती। 2009 से पहले गुजरात सरकार सिर्फ 840, 1200 या 9000 अरब रुपये विकास पर खर्च करने के वादे करती थी। लेकिन एप्को की कृपा से उसका वादा

“जय भोले! जय नमो नमो!!”

–यश मालवीय

jk'ku vkSj fotjklu ns[kk
jk?ko ns[kk] jko.k ns[kk
vkx mxyrk vkaxu ns[kk
lwuh vk;[kksa cjlrk ns[kk
ik;ou ugha ijurZu ns[kk
'kh'ks esa vkorZu ns[kk

gj tjkZ] gj nzkZ cksyk
t; Hkksys! t; ueks ueks!!

ěkkuh ns[kk] Hkxok ns[kk
lwjt dks gh vaxk ns[kk
eq;g rks ugha exj turk ls
cfr;krk eq;gukspok ns[kk

poqfik iqfyl iz'kklu ns[kk
yaxM+k lk vuq'kklu ns[kk
xkaBks esa xBcaèku ns[kk
iy iy esa ifjorZu ns[kk
lq[k nq¢[k esa laoèkZu ns[kk
thou dks vkthou ns[kk

gj tjkZ] gj nzkZ cksyk
t; Hkksys! t; ueks ueks!!

;s xq[.kjrh djrc ns[kk
dhrZu djrk lk jc ns[kk

fc[kjh fNrjh lh rk<+h esa
lèkk lèkk in eulc ns[kk
eqnzk esa ru eu ěku ns[kk
lej ugha lejkax.k ns[kk
ykSg iq#"k dk Buxu ns[kk

dtz ugha dtzklu ns[kk
pkSdk ns[kk cklu ns[kk
vkl yxkrk vklu ns[kk
fcu thou ds thou ns[kk

gj tjkZ] gj nzkZ cksyk
t; Hkksys! t; ueks ueks!!

dM+h HkhM+ dks cdjh ns[kk
izse xyh dks ladjh ns[kk
flj dh ckr ugha Ekh dksbZ
Vksih ns[kk] ixM+h ns[kk
,s'kksg esa iwtu ns[kk
iwtu ns[kk] vpZu ns[kk

vkjh lk vkjkèku ns[kk
dVrk lk fuc±èku ns[kk
fiVrk gqvk izcaèku ns[kk
pqqk gqvk fuckZpu ns[kk

gj tjkZ]gj nzkZ cksyk
t; Hkksys! t; ueks ueks!!

अब 30,000 अरब रुपये के पार चला गया है, लेकिन इस कथनी को करनी में बदलने की दर गिरकर डेढ़ प्रतिशत तक पहुँच गयी है। हद तो तब हो गयी जब दो दिन के अन्दर 15,000 गुजरातियों को उत्तराखंड के आपदाग्रस्त दुर्गम इलाके से निकालकर उनके घर का धपोर शंख बजाया गया। इतनी ऊँची डींग हाँकने के कारण उनकी देशभर में बहुत किरकिरी हुई। आखिर झूठ बोलने की भी कोई सीमा होती है।

fi दो साल से एप्को द्वारा गुजरात सरकार की छवि सुधारने की कोशिश रंग ला रही है। मोदी के अंधभक्तों की संख्या बढ़ती जा रही है। ये लोग सच्चाई से कोसों दूर हैं और गुजरात के विकास की असलियत से मुँह चुराते हैं। इनका मानना है की कांग्रेस पार्टी गुजरात सरकार को बदनाम करने के लिए ऐसी खबरें उड़ा रही है। लेकिन कैग और एनएसएसओ जैसी संस्थाओं ने कांग्रेस सरकार के भ्रष्टाचार का भी पर्दाफाश किया है। इन्होंने ही गुजरात सरकार की असलियत को भी उजागर किया है। जिन जाँच एजेंसियों और संस्थाओं के आँकड़े यहाँ दिये गये हैं, वे पूरी तरह संविधान के दायरे में काम करती हैं और सर्वेक्षण और जाँच के मामले में इनकी तकनीक सबसे बेहतर और विश्वसनीय मानी जाती है।

गुजरात सरकार के भ्रष्टाचार प्रेम के बारे में भी जान लेना रोचक होगा। सूचना अधिकार से मिली जानकारी के अनुसार गुजरात सरकार ने टाटा को नैनो कार की एक परियोजना के लिए 9570 करोड़ का कर्ज दिया, जबकि उस परियोजना की कुल लागत इससे बहुत कम 2900 करोड़ रुपये है। कमाल की बात यह है कि टाटा को यह कर्ज 20 साल बाद लौटाना है जिस पर ब्याज की दर 0.1 प्रतिशत है। टाटा और गुजरात सरकार के बीच लॉबिंग (दलाली) का काम नीरा राडिया ने किया, जो टू जी स्पेक्ट्रम घोटाले में लॉबिंग के आरोप से घिरी थीं और टाटा के साथ फोन पर गैरकानूनी तरीके से काम कराने से सम्बन्धित उनकी बातचीत का पर्दाफाश हो चुका है। नैनो घोटाले में कुल एक लाख करोड़ की अनियमितता पायी गयी है। एक साल पहले इशाक मराडीया ने गुजरात के मत्स्य पालन मंत्री पुरुषोत्तम सोलंकी के खिलाफ 400 करोड़ के मत्स्य घोटाले की पुलिस जाँच की माँग की थी। इसे संज्ञान में लेते हुए गुजरात उच्च न्यायालय ने प्रदेश सरकार को नोटिस जारी किया। जून 2011 में 2 लाख करोड़ के कांडला बंदरगाह भूमि घोटाले का खुलासा हुआ। गुजरात सरकार ने कांडला बंदरगाह की लगभग 16 हजार एकड़ जमीन मात्रा 144 रुपये प्रति एकड़ की दर से किराये पर नमक बनाने वाली कम्पनी को दे दी, जो बाजार भाव से बहुत ही कम है।

गुजरात सरकार के आँकड़ों पर यकीन करें तो पता चलता है कि गौतम अदानी के पावर प्लांट, बंदरगाह और विशेष आर्थिक क्षेत्रा सेज के लिए गुजरात सरकार ने 131 हजार करोड़ रुपये दिये, कई अन्य घोटालों में भी अदानी का नाम शामिल है। इतना ही नहीं अदानी की कम्पनियाँ मुन्द्रा बन्दरगाह और सेज के इलाकों में पानी के बहाव को रोककर सदाबहार वर्षा वनों का नाश कर रही हैं और मोदी पर्यावरण संरक्षण पर भाषण देते फिर रहे हैं। महुआ और भावनगर के 25 हजार किसान विरोध प्रदर्शन कर रहे हैं, क्योंकि सरकार ने वहाँ 268 हेक्टेयर जमीन निरमा कम्पनी को सीमेंट का प्लांट बनाने के लिए दी है। इसमें से 222 हेक्टेयर जमीन पर एक खूबसूरत झील मौजूद है, जिसे भर कर कम्पनी उसका नामोनिशान मिटा देगी।

गुजरात हाईकोर्ट ने अप्रैल 2013 में एक जनहित याचिका की सुनवाई करते हुए गुजरात स्टेट पेट्रोलियम कार्पोरेशन (जीएसपीसी) को नोटिस भेजा और सीबीआई को के जी बेसिन गैस और तेल घोटाले की जाँच का आदेश दिया। आन्ध्र प्रदेश के कृष्णा–गोदावरी की घाटी में 64,000 अरब क्यूबिक फीट गैस मिली है। कच्चे अनुमान के हिसाब से इसकी कुल कीमत लगभग 50 लाख करोड़ है। यह गैस का इतना बड़ा भण्डार है कि अगर देशवासियों को मुफ्त में गैस सिलेंडर दिया जाये तो वह 60 साल के लिए पर्याप्त होगी। गैस के इस पूरे भण्डार पर रिलायन्स कम्पनी, विदेशी गैस और तेल कम्पनी जीओ, गुजरात स्टेट पेट्रोलियम कार्पोरेशन और ओएनजीसी का कब्जा है। सैकड़ों निजी कम्पनियों के मालिकों और मैनेजरों, सरकारी अफसरों और भाजपा–कांग्रेस के नेताओं ने मिल–बाँटकर यह खिचड़ी पकायी और भर–भर पेट खा गये। बेहयाई का आलम यह है कि गैस के मुफ्त भण्डार पर कब्जा करने के बावजूद भी उन्हें संतोष नहीं हुआ तो उन्होंने गैस सिलेंडर का न केवल दाम बढ़ा दिया, बल्कि एक परिवार

को सालाना मिलने वाले सिलेंडरों की संख्या भी सीमित कर दी और लोगों को गुमराह करने के लिए इस पर तरह–तरह की राजनीति करने लगे। यहाँ गुजरात सरकार से सम्बन्धित कुछ एक घोटालों की झलक दी गयी है, लेकिन घोटालों की यह सूची बहुत लम्बी है।

मोदी के अन्धभक्तों का कहना है कि 2014 के लोकसभा चुनाव में हार–जीत का फैसला मोदी के विकास मॉडल पर ही होगा। इसीलिए भाजपा के भीतर काफी उठापटक के बाद मोदी को प्रधानमंत्री पद का भावी उम्मीदवार भी घोषित कर दिया गया। लेकिन देश के लोकतंत्रा और चुनाव के बारे में मामूली ज्ञान रखने वाला इंसान भी जानता है कि यहाँ चुनाव जीतने के लिए धर्म और जाति के आधार पर उम्मीदवार खड़े करना, चुनाव के समय झूठे वादे करना, साम्प्रदायिक दंगे भड़काकर हिन्दू–मुस्लिम वोटों का ध्रुवीकरण करना, वोट खरीदना, शराब पिलाना, बूथ कब्जाना और तरह–तरह के आपराधिक हथकंडे ही जीत–हार का फैसला करते हैं। यह भी तर्क दिया जाता है कि उम्मीदवार यदि ईमानदार है तो गलत तरीके से चुनाव जीत कर भी काम करेगा। लेकिन हम यह भूल जाते हैं कि गलत उपाय भी तो गलत उम्मीदवार ही अपनाता है। दूसरे ताजा और अच्छा सेब भी सड़े सेब की टोकरी में रखने पर सड़ जाता है। फिर राजनीतिक पार्टियों में ईमानदार उम्मीदवार गुलर के फूल हो गये हैं। चुनावी बारिश आते ही नेता मेढक की तरह टर्राकर अपने विकास का राग अलापने लगते हैं जबकि देश में कुकरमुत्ते की तरह उग आये उनके एजेन्ट जनता को लगातार गुमराह करने की कोशिश करते रहते हैं।

“बाँटों और राज करो” नारे से रोम के गुलाम मालिकों से लेकर अंग्रेज हुक्मरानों तक ने सैकड़ों सालों तक लोगों को गुलाम बनाकर राज किया। लेकिन इतिहास में कई मिसालें हैं जब गुलामों ने आपसी भेद भुलाकर शासक वर्ग को कड़ी चुनौती दी। 1857 का स्वतंत्राता संग्राम हमारी आजादी की लड़ाई एक ऐसी ही शानदार मिसाल है। उस दौरान हिन्दू–मुस्लिम की एकजुट ताकत ने यूनियन जैक का झण्डा झुका दिया था। इंग्लैण्ड की सरकार भय से काँप उठी थी। इससे सबक लेते हुए अंग्रेजों ने हिन्दू–मुस्लिम के बीच दंगे भड़काये और भारत–पाक का बँटवारा करके न केवल देश को लूटा और कमजोर बना दिया, बल्कि राष्ट्र की आत्मा को भी रौंद दिया। आजादी के बाद कांग्रेस और भाजपा समेत सभी राजनीतिक दलों ने ‘फूट डालो, राज करो’ के इस नारे को हाथों–हाथ लिया। उन्होंने जिन्दगी के हर क्षेत्रा में इसे लागू करके मेहनतकश जनता की एकता को छिन्न–भिन्न कर दिया। सत्ता की कुर्सी पर काबिज होने के लिए वे आज भी जातिवाद, साम्प्रदायिकता और क्षेत्रावाद के आधार पर जनता में नफरत फैला रहे हैं। समय–समय पर वे इसमें विकास का तड़का भी लगा देते हैं।

इसी रास्ते पर चलते हुए नरेन्द्र मोदी ने अपने शासन के दौरान 2002 में मुसलमानों का नरसंहार करवाया और बहुसंख्य हिंदुओं की सहानुभूति हासिल करके गुजरात की सत्ता पर अपनी पकड़ मजबूत की। आज वे गुजरात के बहुसंख्य लोगों, किसानों, मजदूरों और बेरोजगार नौजवानों की छाती पर मूँग दलते हुए “गरीबों की लूट और अमीरों को छूट” की कांग्रेसी नीति का अनुसरण ही कर रहे हैं। वे गुजरात में पूँजीपतियों को हर तरह की सुविधा देते हुए गरीबी के पारावार में पूँजीवादी विकास की मीनार खड़ी कर रहे हैं। दरअसल 1991 में देश में लागू हुई वैश्वीकरण, निजीकरण और उदारीकरण की नीतियों पर सभी राजनीतिक दलों में आम सहमति है। गरीबों को लूटकर अमीरों की तिजोरी भरने का ही नतीजा है कि जहाँ एक ओर दुनिया के कुल भुखमरी के शिकार बच्चों में से आधे भारत में है और 80 करोड़ लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं तो दूसरी ओर देश में अरबपतियों की संख्या 6000 से ऊपर पहुँच गयी है, जबकि अमरीका और पूरे यूरोप को मिलाकर यह संख्या 3000 है। यही वजह है कि देश में 8200 धनी परिवारों के पास देश की 70 प्रतिशत से अधिक सम्पत्ति है और बाकी 120 करोड़ के पास 30 प्रतिशत। इन्होंने देश को लूटकर कंगाल बना दिया है। इस लूट में पूँजीपति, नेता, अफसर, माफिया और ठेकेदार अपने धार्मिक और जातिवादी भेदभाव भुलाकर लिप्त हो गये हैं। एक ही परिवार के कुछ लोग भाजपा में हैं तो कुछ कांग्रेस में। ये दोनों हाथों से मलाई मार रहे हैं। एक–दूसरे के खिलाफ बयानबाजी तो हमारी आँखों में धूल झोंकने के लिए है। लेकिन अब वह दिन दूर नहीं जब लोग इनके षड़यंत्रों को समझेंगे और जनता के बीच एक सच्ची एकता स्थापित होगी।

मोदी की निगाह में हाथ से पखाना साफ करना आध्यात्मिक साधना

ल्ली में एक सभा को सम्बोधित करते हुए नरेन्द्र मोदी ने कहा कि मंदिर से पहले शौचालय बनाना जरूरी है।18मजेदार बात यह कि कुछ समय पहले जब यही बात जयराम रमेश ने कही थी, तो संघ परिवार के लोगों ने उसे भारतीय संस्कृति का अपमान बताते हुए जयराम रमेश के आवास के सामने सामूहिक रूप से पेशाब करके विरोध जताया था। जाहिर है कि प्रधानमन्त्री पद के दावेदार मोदी के इस बयान के पीछे विवाद में बने रहकर लोकप्रियता हासिल करना ही है। लेकिन इसी बहाने हम देखें कि गुजरात में शौचालयों की दशा कैसी है।

गुजरात के सबसे समृद्ध शहर अहमदाबाद में शौचालयों की हालत पर हाल ही में मानव गरिमा संस्था ने एक सर्वे रिपोर्ट प्रकाशित की है। रिपोर्ट के मुताबिक अहमदाबाद शहर में हाथ से पाखाना उठाने की घिनौनी प्रथा आज भी जारी है, जिससे वहाँ का शासन–प्रशासन बार–बार इन्कार करता है। सर्वे के दौरान वहाँ 188 उठाऊ पाखाने पाये गये, जबकि अहमदाबाद नगरपालिका क्षेत्रा में 126 जगहों पर हाथ से पाखाना साफ करने का चलन देखा गया।

1993 में हाथ से मैला साफ करने वाले लोगों को काम पर रखने और उठाऊ शौचालय बनाने के खिलाफ कानून बना था। इस कानून में यह प्रावधान है कि जो भी ऐसा करेगा, उसे एक साल तक की सजा और 2000 रुपये तक का जुर्माना देना होगा। इस कानून का सही ढंग से पालन न होने की कई शिकायतें सर्वोच्च न्यायालय में लम्बित हैं। कानून बने 10 साल हो गये, लेकिन यह प्रथा अभी तक जारी है।

1993 में कानून बनाकर हाथ से मैला साफ करने पर रोक लगाये जाने के बावजूद अहमदाबाद नगरपालिका ने सफाई कर्मचारियों को कोई उपकरण मुहैया नहीं किया। अधिकांश कर्मचारी केवल झाड़ू और लोहे की पट्टी से पाखाना साफ करते हैं। इन कर्मचारियों में भारी संख्या में अस्थायी कर्मचारी हैं जो वहाँ पिछले 10 सालों से काम कर रहे हैं। वे ठेकेदारी प्रथा के अधीन काम पर रखे गये हैं जिन्हें 90 रुपये रोज की दिहाड़ी मिलती है। उनकी न तो कोई सेवा शर्त है और न ही जीवन बीमा या स्वास्थ्य बीमा। झुग्गी–झोपड़ी के आसपास जो सार्वजनिक शौचालय हैं, उनकी हालत खस्ता है, वहाँ न दरवाजे हैं, न पानी की टोंटी और न ही रोशनी का इन्तजाम। आबादी के हिसाब से इन शौचालयों की संख्या भी बहुत कम है। गरीब माँ–बाप बच्चों के शौचालय जाने का खर्चा नहीं उठा पाते, इसीलिए ज्यादातर बच्चे खुले में ही शौच करते हैं।

गुजरात सरकार ने गत 21 जून से 26 जून के बीच सभी बड़े शहरों और 195 नगरों में हाथ से मैला सफाई पर सर्वेक्षण करने की अधिसूचना जारी की थी लेकिन ऐसा कोई सर्वेक्षण नहीं किया गया। निजी ठेकेदारों और नगरपालिका अधिकारियों के डर से कि कहीं वे नौकरी से निकाल दिये जायें, कोई भी सफाईकर्मी हाथ से मैला साफ करने से मना नहीं कर पाता।

इस अमानुषिक और घृणित प्रथा के बारे में नरेन्द्र मोदी के विचार को देखते हुए गुजरात में इस प्रथा के बने रहना कोई अजूबा नहीं है। अपनी पुस्तक ‘कर्मयोगी’ में उन्होंने लिखा था दृ

“मैं नहीं समझता कि वे यह काम (हाथ से मैला उठाना) केवल अपनी आजीविका कमाने के लिए कर रहे हैं। अगर ऐसा होता, तो वे पीढ़ी–दर–पीढ़ी इस तरह के काम को लगातार न करते।...किसी विशेष समय पर, किसी को ज्ञानोदय प्राप्त हुआ होगा कि यह उनका (वाल्मीकि समुदाय का) कर्तव्य है कि वे पूरे समाज और प्रभुओं की खुशी के लिए यह काम करें कि उन्हें यह काम (हाथ से मैला उठाने का काम) इसलिए करना है कि भगवान ने उन्हें यह काम एक आंतरिक आध्यात्मिक साधना की तरह सदियों तक चलाते रहने के लिए सौंपा है।”

क्या नरेन्द्र मोदी यही विकास मॉडल और ऐसे ही

विचार पूरे देश पर थोपने का ख्वाब देख और दिखा रहे हैं?

अमिताभ बच्चन के नाम पत्र

दरणीय अमिताभ जी,

आज मेरे एक मित्रा की कृपा से दिल्ली में रिलायन्स मेट्रो में बैठने का मौका मिला। इस पूरी मेट्रो ट्रेन के बाहर और अंदर गुजरात के बारे में आपके विज्ञापन बने हुए हैं। आप विज्ञापन में कह रहे हैं कि कुछ वक्त तो गुजारिये गुजरात में। अमिताभ जी मैं गुजरात में कुछ वक्त गुजारना चाहता हूँ। परंतु नरेन्द्र भाई मोदी मुझे गुजरात में रुकने नहीं देते। मुझे गुजरात से बाहर फेंक देते हैं। आप पूछेंगे कि मेरी गलती क्या है? तो अमिताभ जी मुझसे गलती यह हो गयी थी कि मैं गुजरात के साबरकंठा जिले के कुछ आदिवासियों के गाँव में गया था और मैंने कुछ आदिवासियों से उनकी भयानक मुश्किलों के बारे में सुनने की गलती कर दी थी। अमिताभ जी आप एक देशभक्त इंसान हैं, इसलिए प्लीज गुजरात के इन आदिवासियों के पास, सर्वाधिक प्राचीन सभ्यता के वारिसों के पास जाइए और उनसे उनकी तकलीफें जानिये और साथ में मीडिया को भी ले जाइए, मेरा दावा है नरेंद्र भाई आपको भी पुलिस के मार्फत, उसी शाम गुजरात के बाहर जबरदस्ती फिंकवा देंगे। जैसे उन्होंने मुझे फिंकवाया था।

क्या आपको पता है? गुजरात में लाखों आदिवासी किसानों को सरकार द्वारा वन अधिकार के लाभ से वंचित किया गया है? गुजरात में आदिवासियों को वन भूमि के नए पट्टे देने के बजाय उन्हें उनकी पुश्तैनी खेती की जमीनों से भी पीट–पीट कर भगा दिया गया है। मैं इस तरह के अनेकों परिवारों से मिला और मैंने मीडिया को इस घटना के बारे में बताया। अखबारों ने मेरी यात्राा के बारे में एक लेख छाप दिया जिनका शीर्षक था ''स्वर्णिम नो साचो दर्शन।'' अर्थात गुजरात सरकार के स्वर्णिम गुजरात का सच्चा दर्शन, बस अगली सुबह पुलिस की तीन जीपें मेरे पीछे लग गयीं। पहले उन्होंने कहा कि मेरी हर मीटिंग में पुलिस मेरे साथ रहेगी, ऐसा उ+पर से हुकुम है। मैं सहमत हो गया लेकिन रात होते–होते एसपी भी आ गया और अंत में आधी रात में मेरी साइकिल पुलिस ने जीप में लादी और मुझे बरसते पानी में महाराष्ट्र की सीमा के भीतर ले जाकर फेंक दिया। मैं धन्यवाद देता हूँ नरेंद्र भाई मोदी को कि उन्होंने मुझे जान से मरवाया नहीं।

आइए, अमिताभ जी कुछ वक्त असली गुजरात में चलते हैं। आइए अहमदाबाद के मुस्लिम शरणार्थियों के शिविर में चलते हैं। यहाँ आपको कुछ माँएँ मिलेंगी। जिनकी छातियाँ का दूध सूख गया है, क्योंकि आँखों के सामने उनके बच्चों को काट कर फेंक दिया गया था और जो आज भी इस भयानक सच्चाई को स्वीकार नहीं कर पा रही हैं। उन लड़कियों से मिलते हैं जिनके पिता मारे जा चुके हैं। उन नौजवानों की जलती आँख में झाँक कर देखेंगे, जिनके सामने उनके पूरे परिवार को हमने जय श्री राम के नारे के उद्घोष के साथ जानवरों की तरह काट दिया और जिन्हें इस देश के न्याय तंत्रा ने, इस देश की सरकार ने और हमारे समाज ने अपनी स्मृति से हटा दिया है। देखिए, नरेंद्र भाई मोदी की तारीफ न इस बात में है कि गुजरात में सोमनाथ का मंदिर है न नरेन्द्र भाई मोदी की वजह से गिर में शेर होते हैं। और न ही नरेन्द्र भाई मोदी के कारण कच्छ में सफेद रेत में चाँदनी खूबसूरत होती है। हाँ, नरेन्द्र भाई मोदी के रहते हुए गुजरात के आदिवासी गाँव में महिला भूख से मर जाये तो इसके लिए वे जिम्मेदार हैं। अगर गुजरात में आदिवासियों को जिन्दा रहने भर भी जमीन खेती करने के लिए न दी जाये। लेकिन दो लाख एकड़ जमीन आदानी, टाटा, अंबानी को दे दी जाए जिसमें सिर्फ ईटीवी को एक लाख दो हजार एकड़ जमीन दे दी गयी, तो इसकी जिम्मेदारी जरूर नरेन्द्र भाई मोदी की है।

अमिताभ जी इस बार आप गुजरात जाएँ तो सामाजिक कार्यकर्ताओं से मिलिएगा। अमित जेठवा की मौत और अनेकों कार्यकर्ताओं को माओवादी कह कर जेल में डाल देने के कारण गुजरात में सामाजिक कार्यकर्ता दहशत में हैं। आप भी इस बार कुछ समय बिताइयेगा अहमदाबाद की झोपड़–पट्टी में। शहर चलाने

के साथ उपस्थित था। उसने व्यवहारिक स्तर पर निरंतर श्रम और संघर्षों के माध्यम से ही अपने कलात्मक अनुभव और शिल्प अर्जित किये थे। प्रारंभिक दिनों में उसे एक नाटक 'बटरफ्लाईज स्पेल' में खेदजनक असफलता का मुँह देखना पड़ा था। यह असफलता उसे सारी जिंदगी याद रही और उसे लगातार खरोंचती रही। इसके बाद लोर्का कभी असफल नहीं हुआ। अपनी मौत को चुनते हुए भी। 1936 में जब लोर्का को गिरफ्तार करके ग्रानादा की सड़कों पर बाहर निकाला गया और उस ओर ले जाया गया जहाँ फासिस्ट स्क्वैड उसका इंतजार कर रही थी तब भी वह असफल नहीं हुआ था। असफलता उसके लिए थी ही नहीं। वह जनता का कवि था। जन कवि। जब–जब जनता पर जुल्म ढाए गए लोर्का जख्मी हुआ। जब–जब जनता पर गोलियाँ चलीं लोर्का घायल हुआ। लोर्का जनता को बहुत प्यार करता था। जनता भी उसे अपने दिल में रखती थी। इसीलिए पाब्लो नेरूदा ने लिखा था, वे लोग जो लोर्का की जनता के सीने में गोली दागना चाहते थे, उन्होंने लोर्का को मारते हुए बहुत सही चुनाव किया था।

लोर्का की रचनाओं में स्पेन अपने विशिष्ट, उत्पीड़ित और शोकाकुल रूप में माजूद है। स्पेन की जातीय सांस्कृतिक परम्पराएँ लोर्का के लहू में थीं। शायद लोर्का से ज्यादा स्पेन और लैटिन अमरीका की पहचान किसी और रचनाकार को नहीं हो पायी। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि लैटिन अमरीकी देशों की बदली हुई आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का सामाजिक यथार्थ पारम्परिक काव्य रूपों में व्यक्त हो ही नहीं सकता था। उसके लिए एक सक्षम, प्रासंगिक राष्ट्रीय फार्म की जरूरत थी जिसमें तत्कालीन जीवन समूची जीवंतता के साथ व्यक्त हो सके। लोर्का ने परम्परिक काव्य रूढ़ियों को तोड़ा। नये सत्य को कहने का तरीका ढूँढा। यही वजह है कि स्पेनी साहित्य के इतिहास से गुजरते हुए लोर्का की रचनाओं पर आकर दृष्टि गड़ जाती है। लोर्का स्पेनी इतिहास की एक विभाजन रेखा है। वह एक युगांत और युगारम्भ है।

लेकिन दिलचस्प बात यह है कि लोर्का ने जो नया फार्म ढूँढा वह वस्तुतः बहुत पुराना था। बारहवीं शताब्दी के 'एपिक फार्म' को उसने फिर से अपनाया और इसी रूप में अपनी कविताएँ लिखीं। लगभग हजार वर्ष पुराने काव्य रूप को अपनाते हुए प्रारम्भ में लोर्का आश्वस्थ नहीं था। लेकिन एक रात वह एक शराब घर के बाहर खड़ा था तब उसे वही पुरानी, हजारों वर्ष पुरानी धुन सुनाई पड़ी। कोई अनपढ़ देहाती गिटार बजाकर, सम्मोहक रूप से गा रहा था। लोर्का ने ध्यान से सुना तो वह आश्चर्यचकित रह गया। एक–एक शब्द उसी का था –लोर्का का। लोर्का पर नशा चढ़ गया। वह खुद गा उठा। उसी हजारों साल की भूली बिसरी धुन में उसकी कविताओं को जनता ने अपना लिया था। किसी भी कवि के लिए इससे बड़ा सौभाग्य और क्या हो सकता है?

लोर्का के पहले बहुत से स्पेनी कवियों ने प्राचीन काव्य रूपों की उपेक्षा की थी और आधुनिकता की तलाश में वे योरप और अमरीका की नकल में लगे हुए थे। लोर्का ने आधुनिकता की तलाश दूसरे तरीके से की। वह अतीत की ओर लौटा और प्राचीन काव्य रूपों को परिश्रम और मनोयोग के साथ इस तरह संशोधित किया कि वे समकालीन यथार्थ को वहन कर सकें। उसकी कविताओं में इसीलिए अपेक्षाकृत पुराने, आदिम संगीत की लय है। वे गाये जा सकते हैं। अन्दालूसिया के ग्रामीण अंचलों में गाये जाने वाले लोक गीतों की लय, उनके बिम्बों और मुहावरों से लोर्का ने बहुत कुछ ग्रहण किया था। वह उन गीतों को अपना बना लेता था, इतना कि वे उसके निजी हो जाते थे। एक घटना का जिक्र उसके भाई ने किया है। एक बार वह लोर्का के साथ किसी ट्रक में सफर कर रहा था। ट्रक का ड्राइवर मस्ती में कोई लोक धुन गुनगुनाता जा रहा था। लोर्का ट्रक ड्राइवर के गीत में पूरी तरह डूब चुका था। इस घटना के बहुत दिनों बाद जब लोर्का की कविता 'फेथलेस वाइफ' प्रकाशित हुई तो उसके भाई ने उसमें उसी ट्रक ड्राइवर के गीत की एक पंक्ति देखी। संयोग से वह पंक्ति उसे अच्छी तरह से याद थी। बाद में वह उसे दुहराता रह गया। लोर्का ने कहा, यह असंभव है। यह

पंक्ति बिलकुल मेरी है। इसे मैंने लिखा है। लोर्का झूठ नहीं बोल रहा था। वह पंक्ति उसी की थी। उसने ट्रक ड्राइवर के उस लोकगीत को इतनी गहराई और संवेदनशील आत्मीयता के साथ अपना बना लिया था कि उस गीत की पंक्ति पर अब लोर्का के अतिरिक्त किसी और का अधिकार हो नहीं सकता था।

स्पेन में गणतंत्रा की स्थापना के बाद लोर्का ने ग्रानादा विश्वविद्यालय के कुछ विद्यार्थियों के साथ अपनी एक नाट्य कम्पनी भी बनायी। इस नाटक कम्पनी का नाम "ला बार्राक" था। अपनी इस नाटक कम्पनी के साथ वह ग्रामीण क्षेत्रों में गया और गाँवों में अपने नाटकों का प्रदर्शन किया। वह नाटक को जनता के बीच ले जाना चाहता था। लोर्का की नाट्य रचनाओं को उसकी काव्य रचनाओं से अलग करके नहीं देखना चाहिए। वह एक ही समय में एक ओर लंबे प्रगीत लिखता था, दूसरी तरफ लंबे नाटक भी लिख डालता था। उसके कई नाटक ऐसे हैं जिन्हें ट्रेजिक कविता या प्रगीत कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त उसके कुछ प्रगीत ऐसे हैं जिनमें इतने नाटकीय तत्व हैं कि आसानी से उनका नाट्च रूपांतरण किया जा सकता है। लोर्का कोई पेशेवर रंगकर्मी नहीं था। कविताओं में जो कुछ अनकहा रह जाता था उसे अभिव्यक्त करने के लिए वह दूसरे कला माध्यमों का सहारा लेता था। रंगमंच और संगीत और कविता उसकी एक ही रचना प्रक्रिया के अवयव थे। कभी–कभी तो कविता का कोई एक बिंब उसे इतना पसंद आ जाता था कि केवल उसी एक बिंब को साक्षात करने, उसे देख सकने की फिक्र में वह नाटक की रचना कर डालता था।

लोर्का के नाटकों में एक राजनीतिक संदेश निहित होता था जिसे मनोरंजक ढंग से वह दर्शकों के मस्तिष्क में डाल देता था। उसने अपने एक प्रारंभिक नाटक 'मारियाना पिनेदा' के माध्यम से क्रांतिकारी संदेश को जनता तक पहुँचाने का कार्य शुरू कर दिया था। 'आह! ग्रानादा का कितना उदास दिन!' पंक्ति से प्रारम्भ होने वाला यह पूरा "बैलेड" इस नाटक में खप गया था। यह नाटक उन दिनों प्रदर्शित किया गया था जब स्पेन में गणतंत्रा की स्थापना नहीं हुई थी और वहाँ तानाशाही का राज्य था। इस नाटक में प्रेमिका जिस व्यक्ति से प्यार करती है वह व्यक्ति स्वतंत्राता को संसार में सबसे ज्यादा प्यार करता है। अंत में स्वयं प्रेमिका स्वतंत्राता की आकांक्षा में स्वतंत्राता की प्रतिमूर्ति बन जाती है। तत्कालीन नाट्य–समीक्षकों ने इस क्रांतिकारी संदेश के खतरों को महसूस किया था और उन्होंने लोर्का के खिलाफ तानाशाही की तरफ से खुफियागीरी की थी। लोर्का फिर भी लिखता रहा और अपना संदेश चालाकी के साथ जनता तक पहुँचाने में लगा रहा। इसी बीच अखबारों में छपी खबरों के आधार पर, सच्ची घटनाओं को अपने नाटकों में उसने प्रस्तुत करना प्रारम्भ कर दिया। उसके प्रसिद्ध नाटक 'ब्लड वेडिंग' तथा 'हाउस आफ बेर्नाल्दा अल्बा' सच्ची घटनाओं पर आधारित थे। उसकी कविताएँ भी जिप्सियों की वास्तविक जिंदगी पर आधारित थीं। 'आन्दालूसिया' के किसान परिवारों, उनके शोषण और उत्पीड़न को उसने अपनी रचनाओं का प्रस्थान बिंदु बनाया था। इन रचनाओं ने जनता पर इतना प्रभाव डाला था कि लोर्का शासनतंत्रा के लिए खतरा बन गया था। उसकी हत्या हो ही जाती लेकिन बीच के अंतराल में गणतंत्रा की स्थापना के कारण वह बच गया।

लोर्का कहता था कि नाटक के दर्शक जब नाटक की किसी घटना को देखकर यह न सोच पाएँ कि उन्हें हँसना चाहिए या रोना तब समझना चाहिए कि नाटक अपने मकसद में सफल रहा है। वह अपने नाटकों में एक प्रकार के त्राासद व्यंग्य की स्थिति तैयार करता था। "येरमा" नामक उसका नाटक आज भी स्पेनी भाषाई

I;kj djuk vkSj thuk
mUgsa ugha vk;k
esjs nksLr
ftUnxh us ftUgsa
cfu;k cuk fn;kA
&ik'k

वाले लाखों झोपड़ी वालों को साबरमती के किनारे से उनका घर तोड़कर मरने के लिए शहर से बाहर फेंक दिया गया है। उनके बच्चों ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की थी कि प्लीज हमारे घर मत तोड़िए, पर किसी ने नहीं सुना। तो अमिताभ जी क्या आप तैयार हैं असली गुजरात में कुछ वक्त बिताने के लिए?

(इतिहासबोध बुलेटिन से साभार संपादकः प्रो. लाल बहादुर वर्मा)

16

जघन्यतम हत्याएँ खाप इलाके में बर्बरता और नृशंसता की इन्तहा

– डॉ. डी आर चौधरी

सितम्बर को रोहतक के पास एक गाँव में एक जाट प्रेमी युगल की जिस बर्बरता के साथ हत्या की गयी वह किसी भी संवेदनशील व्यक्ति की रूह कंपा देने वाली घटना थी। यूँ तो दुनिया के कई हिस्सों में “इज्जत के नाम पर हत्या” का चलन है, लेकिन खाप इलाके में खाप पंचायत के माध्यम से इस प्रक्रिया में जिस तरह से पूरा समुदाय शामिल होता है, वह इसे एक अलग परिघटना बना देता है। हरियाणा इस मामले में अव्वल है।

इस हालिया घटना में लड़की के पिता ने जिस भयानक तरीके से लड़के की हत्या की, लड़के का सिर धड़ से अलग कर दिया और फिर धड़ के कई टुकड़े कर क्षत–विक्षत लाश को लड़के के घर के सामने फेंक दिया, उसके सामने तो हैवानियत भी शर्मिंदा हो जाएगी। लड़की के पिता ने अपनी बेटी की लाश के भी छ टुकड़े किये। सिर को धड़ से अलग कर दिया और धड़ के दो टुकड़े कर दिये। हाथ और पाँव को धड़ से अलग कर दिया।

जिस आदमी ने ऐसे वीभत्स कुकृत्य को अंजाम दिया, उसे अपनी करनी पर कोई पछतावा नहीं है। उसका मानना है की उसने सही काम किया है, क्योंकि समाज को “शुद्ध करने” के लिए जरूरी है कि एक ही गाँव के शादी करने वाले लड़के–लड़की को मार दिया जाए!

यह कोई पहला और अकेला मामला नहीं है। दिल्ली के आसपास के खाप इलाके में इस तरह की बर्बर घटनाएँ पहले भी हुई हैं। इसे समझने के लिए एक ही घटना का उदाहरण काफी है। 1991 में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले की एक जाट लड़की अपने प्रेमी के साथ चली गयी। वे पकड़े गये और उन्हें गाँव में वापस ले आया गया। पंचायत ने फतवा जारी किया कि उन दोनों और उनकी मदद करने वाले साथी को एक साथ लटका कर मार दिया जाय। उन तीनों के गुप्तांगों को जला दिया गया। उसके बाद गाँव में ही पेड़ पर उन्हें फाँसी पर लटका दिया गया। उन तीनों के अभिभावकों को हुक्म दिया गया कि उनकी मौत होने तक वे फंदा पकड़े रहें। अगर आप हाड़–माँस के तालिबानों को देखना चाहते हैं, तो अफगानिस्तान के निर्जन बीहड़ों में जाने की जरूरत नहीं है। वे आपको दिल्ली के आसपास के खाप इलाके के मैदानी क्षेत्रा में ही मिल जाएँगे।

खाप नेताओं का दावा है कि “इज्जत के नाम पर की जानेवाली हत्याओं” में खाप की कोई भूमिका नहीं होती, बल्कि पारिवार के सदस्य ही अपनी “इज्जत” बचाने के लिए ऐसा करते हैं। उनका यह दावा, अधिक से अधिक एक अर्ध–सत्य है। हरियाणा में, ऐसे मामलों में खापों की प्रत्यक्ष भूमिका के कई उदाहरण है– शादीशुदा जोड़े को भाई–बहन घोषित करना (झज्जर जिले के आसंडा और जौंधी गाँवों में), शादी तुड़वा देना (भिवानी जिले के पैन्तावास और समसपुर में) और गाँव वालों को हत्या के लिए उकसाना (मनोज–बबली और वेदपाल हत्याकांड) इत्यादि।

खाप पंचायतें गोत्रा के बाहर विवाह प्रथा और गोत्रा आधारित, मजबूत पितृसत्तात्मक ढाँचे वाली संस्था है। पुरुष–वर्चश्चवादी समाज में स्त्री की यौनिकता भी पुरुषों द्वारा निर्धारित नियमों से ही नियंत्रित होती है और इन नियमों का थोड़ा भी उल्लंघन करना परिवार की बेइज्जती मानी जाती है, जिसके लिए उस लड़की को उचित सजा दी जाती है, ताकि खानदान की इज्जत बनी रहे। खापों ने नियमों का अम्बार लगा रखा है– एक ही गोत्रा और एक ही गाँव में विवाह नहीं, गाँव की सीमा से लगे गाँव में विवाह नहीं, एक ही पूर्वज वाले दूसरे कुल में विवाह

नहीं, इत्यादि। उन्होंने गाँव में परम्पराओं के नाम पर ऐसी असहिष्णु संस्कृति विकसित की है, जिसमें इन नियमों का उल्लंघन करने वाली लड़की के परिवार के ऊपर ऐसा दबाव बनता है कि उनका समाज में जीना असह्य हो जाता है। ऐसे हालात उस परिवार को "इज्जत के नाम पर हत्या" करने के लिए उकसाते हैं। इस ताजा मामले में उक्त लड़की के घर वाले इसी पतित संस्कृति के शिकार थे। हालाँकि इस मामले में खाप का कोई सीधा हाथ नहीं था।

खाप पंचायतों का कोई सुव्यवस्थित ढाँचा नहीं है। उनकी न कोई औपचारिक सदस्यता है और न ही उनके गठन के लिए चुनाव की कोई व्यवस्था। उनके प्रधान स्वघोषित व्यक्ति हैं। उनका स्वरूप पूरी तरह से अलोकतांत्रिक है। मध्ययुग में इसमें अन्य जातियाँ भी हिस्सा लेती थीं, हालाँकि उसमें जाटों का ही दबदबा होता था। आजकल यह पूरी तरह जाटों की संस्था बन चुकी है। नीचे या ऊपर की कोई भी जाति इसकी बैठकों में भाग नहीं लेती। औरतों को इसकी कार्यवाही में अपने विचार रखने की इजाजत नहीं है, जबकि वहाँ उन्हीं की जिन्दगी के बारे में जरूरी फैसले लिए जाते हैं।

खाप के समर्थक परम्परा के नाम पर इसको सही ठहराते हैं। अपनी प्रासंगिकता बनाए रखने के लिए बदलते समय के साथ परम्पराओं को बदलना चाहिए। खाप का यह अड़ियल रवैया इस बात का ही द्योतक है कि वह परम्परा और आधुनिकता में तालमेल स्थापित करने में असफल रही है। परम्पराएँ यदि आधुनिकीकरण के साथ बदलती नहीं, तो सड़ने लगती हैं और समाज पर बोझ बन जाती है, जबकि परम्परा से कटी हुई आधुनिकता भी छिछली और उथली होती है। दोनों के बीच एक स्वस्थ तालमेल ही समाज को आगे बढाता है। दुर्भाग्य से, खाप पंचायतों के कार्यकलापों में इस बुनियादी यथार्थ के लिये कोई जगह नहीं है।

खापों के इस अड़ियल रवैये को राजनीतिक अभिजात वर्ग और अधिक मजबूत करता है। हरियाणा की खाप पंचायतों और वहाँ के राजनीतिक प्रभु वर्ग के बीच भीतरी रिश्ता है। अपने अस्तित्व के लिए आज दोनों एक दूसरे से ताकत हासिल करते हैं। हालाँकि इस पारंपरिक संस्था की पकड़ उतनी मजबूत नहीं है, जितना आमतौर पर सोचा जाता है, फिर भी, वोट बैंक की अपनी घृणित राजनीति के कारण मुख्यधारा की राजनीतिक पार्टियाँ अपना वोट खोने के डर के कारण इनसे घबराती हैं, भले ही वे सभ्यता और कानून की सारी सीमाएँ लाँघ जाएँ।

केन्द्र सरकारा ने 2010 में खाप पंचायतो की सरपरस्ती में होने वाली "इज्जत के नाम पर हत्याओं" को रोकने के लिए भारतीय दण्ड संहिता में संशोधन करके एक नया कानून लाने का प्रयास किया। इसके लिए मंत्रियों के समूह का गठन किया गया और इस विषय में आठ राज्यों से राय भी माँगी गयी। सूचना के अधिकार के तहत माँगी गयी जानकारी से हरियाणा के शासकों की मानसिक बुनावट का खुलासा होता है। इस विषय पर राय माँगने पर हरियाणा सरकार के विधि सचिव ने उत्तर दिया "इज्जत के नाम पर हत्या" सर्वाधिक बर्बर कृत्य है.... भारतीय आचार संहिता और कुछ अन्य कानूनों (संसोधन कानून, 2010) को और आगे ले जाने की आवश्यकता है।" इस विशेषज्ञ राय की पूरी तरह से अवहेलना की गयी। हरियाणा के मुख्यमंत्री ने मंत्रियों के समूह के तत्कालीन अध्यक्ष प्रणव मुखर्जी को लिखे डी ओ पत्र में कहा– "...हमें मीडिया द्वारा बढ़ा–चढ़ा कर पेश की जा रही घटनाओं से प्रभावित हुए बिना "इज्जत के नाम पर हत्याओं" की भिन्न–भिन्न अभिव्यक्तियों को व्यापक सन्दर्भों में देखने का प्रयास करना चाहिए... राज्य सरकार की यह पुख्ता राय है कि इस समस्या से निपटने के लिये मौजूदा कानून ही पर्याप्त हैं।" हरियाणा की प्रमुख विपक्षी पार्टियों का भी यही रुख है।

खाप पंचायतों द्वारा एक ही गोत्रा में विवाह पर रोक लगाने की माँग करना समस्या का कोई हल नहीं है, क्योंकि प्रेमीयुगल विवाह करने के लिए इस्लाम धर्म भी अपना सकते हैं। एक ही गाँव में विवाह की प्रथा पर रोक लगाने की माँग भी पूरी तरह बेमानी है, क्योंकि यह तो हरियाणा के ही गैर–खाप इलाकों में प्रचलन में है। यह एक सामाजिक समस्या है जिसका इलाज भी सामाजिक स्तर पर ही होना चाहिए। खाप से असहमत प्रेमीयुगल को मार डालने के बजाय उन्हें कहीं और बस जाने के लिए कहा जा सकता है।

आमतौर पर शुद्धता और अशुद्धता की व्याधि तथा ब्राह्मणवादी विचारधारा के कठोर नियमों से जाट समुदाय मुक्त रहा है। उनके इतिहास से सम्बंधित उपलब्ध स्रोत बताते हैं कि वे गैर–दकियानूसी, विद्रोही और उदारवादी विचारों को ग्रहण करने वाले रहे हैं। समाज में सकारात्मक भूमिका निभाने की उनकी सम्भावना को आज पुरानी पड़ चुकी खाप संस्था बाधित कर रही हैं। यह संस्था जिसने मध्ययुग में उपयोगी भूमिका निभायी थी, आज अपनी उपयोगिता खो चुकी है। आज भले ही उसका अस्तित्व बना हुआ है, लेकिन ऐतिहासिक रूप से वह मर चुकी है। आज कानूनी तौर पर गठित पंचायतों को मजबूत करने की जरूरत है, जिसमें समाज के सभी वर्गों के लोगों का समुचित प्रतिनिधित्व होता है।

उन पंचायतों को मजबूत करना बेहद जरूरी है। अगर जाट, खासतौर पर नौजवान अपनी क्षमताओं को पूरी तरह से विकसित करना चाहते हैं, तो उन्हें अपने समुदाय के स्वनामधन्य पहरेदारों की जकडबंदी से मुक्त हो जाना चाहिए।

(अनुवाद– आशु वर्मा)

उत्तराखण्ड आपदा : दामन में लगे दाग छुपाने से क्या होगा

–गौरव

अगस्त शहरों के शोरशराबे से दूर खिमुली ने एक बेटी को जन्म दिया, लेकिन वह खुश नहीं हो सकती, वह पहाडों के खामोश आंचल में भी बैचैन हो उठती है। उसका पति शमशेर जो घर का एकमात्रा कमाउ आदमी था अब शायद ही जिंदा बचा हो। खिमुली की बड़ी बेटी अब उतना तेज नहीं दौड़ती, पहाड़ उसके पाँवों को जकड़ लेते हैं। पहाड़ों ने उसे इतना बड़ा कर दिया है कि अलकनंदा के उफान में भी वह अपने पिता की चीखें महसूस कर डर जाती है। वह इतनी बड़ी हो गयी है कि रह–रह कर बार–बार गाँव के आखिरी छोर तक आती तो अपने पिता को ढूँढने के लिए है, लेकिन अलकनंदा को जकडे विष्णुप्रयाग बाँध को देख सहम कर जाती है। वह आठ साल की हो गयी है। उसने इससे पहले कभी बांध से इतना पानी बहते हुए ही नहीं देखा, लेकिन खिमुली सब जानती है। वह यह भी जानती है कि उसका पति ही अकेला आपदा में नहीं मरा है, बल्कि न जाने कितने लोग असमय काल के गाल में समा गये।

यह अकेले खिमुली और शमशेर की ही कहानी नहीं है, बल्कि उत्तराखंड आपदा में दफन हुए उन हजारों लोगों की कहानी है, जो अभी भी केदारघाटी के मलबे में दफन हैं। सरकार 6000 लोंगों के मारे जाने की बात कह रही है, जबकि असल आँकड़े 15 हजार के पार जा रहे हैं। उत्तराखंड की यह सबसे बड़ी आपदा है। आपदा के नुकसान के आंकलन में जुटी सरकारी एजेंसियों के मुताबिक 15 लाख से ज्यादा लोग उत्तरकाशी, चमोली, रुद्रप्रयाग, पिथौरागढ़ सहित उत्तराखंड के अलग–अलग हिस्सों में प्रभावित हुए हैं, जबकि एक लाख लोग बेघर हो गये हैं। इंसानी चीखों और दम तोडती जिंदगियों के बीच नए सवाल भी पैदा हुए हैं, जो व्यवस्था का सबसे विद्रूप चित्रा कैनवस पर उकेर रहे हैं।

धाम में चारों ओर बिखरी लाशें, लाशों के ऊपर बिलखते परिजन और लाशों के चेहरों से मिट्टी की गाद हटाकर अपनों को तलाशते हाथ उस भयावह तस्वीर की एक झलक भर है जिसे आपदा के रंगों ने केदारनाथ के कैनवास पर गोद दिया है। मोक्ष की चाह हजारों यात्रियों को केदारघाटी खींच लायी, लेकिन प्रकृति ने समय से पहले ही उन्हें मोक्ष के द्वार दिखा दिये। केदारघाटी में आये तूफान और चीखों के मलबे में दब जाने के बाद अब भयावह सन्नाटा है। केदारनाथ जाने वाले पूरे रास्ते में सोनप्रयाग से ही गौरीकुंड, रामबाड़ा और मंदिर परिसर में बिखरी सैंकडों लाशें बीती त्रासदी के साथ ही भविष्य की भयावह तस्वीरें दिखा रही हैं, लेकिन हैरत की बात यह है कि सरकार अभी भी इस भयंकर तबाही से चेतने को राजी नहीं दिखायी देती। कुछ लोग जो भगवान ढूँढ़ने देवभूमि में आये थे, अपने परिजनों के चीथड़े छोड़कर अधमरी हालत में घर लौट गये हैं और कुछ को समेटने के लिए गंगा अब भी उफान पर बह रही है। फिलहाल उत्तराखंड सरकार आपदा राहत में मिले रुपयों का

हिसाब–किताब लगाने में मशगूल हैं।

आपदा के तीन महीने बाद अब जबकि सरकार के घडियाली आँसू भी सूख चुके हैं, आपदा पर मीडिया चिल्ल–पौं मचाकर प्रायोजित पुरस्कार बटोर चुकी है, राजनीतिक पार्टियाँ लोकसभा चुनाव में सब्जबाग दिखाने के लिए अपना रंग बदलने लगी हैं और नामभर की सरकारी इमदाद के चैक बाउंस हो–हो कर उछलने लगें हैं, तो अब जरूरत बनती है कि इस आपदा के कारणों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय और हर उस सवाल की तह में जाने की कोशिश की जाय जो हजारों जिन्दगियों को डुबो ले गया।

इंसानी ही है आपदाकृ

इन दिनों केदारघाटी सामान्यतः तीर्थ यात्रियों और सैलानियों से गुजलार हुआ करती थी। केदारघाटी में पसरा सन्नाटा ठीक वैसा ही है जैसा कि आज से पिछले 50 साल पहले हुआ करता था, फर्क सिर्फ इतना है कि तब घाटी में पसरा सन्नाटा लाशों के अंबार के चलते नहीं बल्कि दुर्गम यात्राा की वजह से होता था। अब जबकि मन भावनाओं और आवेशों से उपर उठ रहा है तो घाटी में फैले सन्नाटे और तबाही के कारण भी तलाशने लगा है। इस वक्त जेहन में यह सबसे बड़ा सवाल कौंधता है कि आखिर घाटी में तबाही क्यों आयी? इसके लिए कौन जिम्मेदार है? क्या इसे दैवीय प्रकोप कहा जाय या फिर विकास के नाम पर हो रहे बाँध निर्माण और राज्य के पर्यावरण व भूगोल के साथ छेड़छाड़ का दुःखद परिणाम? ऐसे हजारों सवाल हैं जो केदारघाटी में उठे मौत के तूफान ने खड़े कर दिये हैं। लेकिन सरकार अभी भी आकंड़ेबाजी में उलझकर अपनी ही पीठ थपथपाने में मशगूल है।

आपदा आने से कुछ महीने पहले केदारघाटी में जाने का मौका मिला था। रास्ते में श्रीनगर शहर से ही अलकनंदा नदी में कई जगहों पर बाँध निर्माण कार्य जोर–शोर से जारी था। कुछ नये बाँध बनाये जा रहे थे और कुछ बन कर तैयार हो चुके थे। इसके समानांतर ही घाटी में निजी कम्पनियों और पूँजीवादी सरकार के खिलाफ ग्रामीणों का विरोध प्रदर्शन भी जारी था। घाटी के बाशिंदे इस बात से खौफजदा थे कि एक दिन यही बाँध घाटी में तबाही का सैलाब लेकर आएंगे जिसमें उनका सबकुछ एक झटके में तबाह हो जाएगा और कमोबेश हुआ भी ऐसा ही है। 15 जून से शुरू हुई दो दिन की बारिश ने ही केदारनाथ और बद्रीनाथ समेत 150 किमी नीचे बसे श्रीनगर शहर में भी भारी तबाही मचा दी और इसका आंशिक असर ऋषिकेश में भी नजर आया। पर्यावरण मानकों और पर्यावरणविदों की चेतावनियों को दरकिनार कर विकास के नाम पर इस नवसृजित राज्य में बनायी जा रही दसियों पन बिजली परियोजनाओं (हाइड्रो प्रोजेक्ट) ने इस राज्य को इतने गहरे जख्म दे दिये हैं जो शायद ही कभी भर पाएँ। अकेले श्रीनगर में बन रहे अलकनंदा हाइड्रो पावर प्रोजेक्ट में ही नियमों की धज्जियाँ उड़ाने और पर्यावरण की अनदेखी करने के लिए जीवेके कम्पनी अब तक 2000 करोड़ रुपये केवल मंत्रियों, विधायकों और छुटभैया नेताओं को काम में रोडा न डालने के एवज में दे चुकी है। खुद कंपनी के सीइओ प्रसन्ना रेड्डी ने इस बात को स्वीकारा है। कंपनी ने 64 मीटर ऊँचाई पर स्वीकृत हुए इस बाँध की ऊँचाई बिना पर्यावरण मंत्राालय की अनापत्ति प्रमाणपत्रा (एनओसी) के ही अपनी मर्जी से 90 मीटर कर दी। जीवेके जैसी ही दर्जनों कम्पनियाँ अपने मनमुताबिक पर्यावरण को न केवल क्षति पहुँचा रही हैं, बल्कि एक नयी सूनामी को भी पैदा करने में जुटी हुई हैं, जिसका हालिया उदाहरण अलकनंदा नदी के आक्रोश में देखने को मिला जिसमें सैंकडों लोगों की जिंदगीभर की जमापूँजी तबाह हो गयी। सरकार ने इस खूबसूरत पहाड़ी और पर्यटन राज्य को कंकरीट के दैत्याकर बाँधों में तब्दील कर दिया है। इन बाँधों को बनाने के लिए, सरकार कुछ भी करने को तैयार है। हर सरकार चाहे वह गिर–गिर कर कैसे भी चल रही हो चाहती है कि उसके कार्यकाल में बस बाँध बन जाए फिर चाहे इसके लिए जनांदोलनों को कुचलना पड़े, वैज्ञानिक रिपोर्टों को नजरअंदाज करना पड़े या फिर खुद को पर्यावरणविद बताने वाले ठगों को ही खरीदना पड़े, एक झूठे ऊर्जा प्रदेश को खड़ा करने के लिए सब जायज

मीठी वीरदी परमाणु संयंत्र : एक और परमाणु खतरा

Fkz ekbYl oSyh] psukZsfcy vkSj Qqdqlhek esa gq, ijek.kq nq?kZVuk ls lcd ysrs gq, vkt nqfu;k ds èkuh ns'k vius ijek.kq fctyh ?kjksa dks ,d&,d dj cUn dj jgs gSaA ysfdu Hkkjr esa blch mYVh xaxk cgk;h tk jgh gSA Hkkjh tu&fojksèk dh vuns[kh djrs gq, ljdkj us dqMudqye la;=k dks pkyw dj fn;k vkSj vc xqtjkr ds ehBh ohjnh ijek.kq la;=k dh LFkkiuk ds fy, ,uihlhvkbZ,y ¼U;wDyh;j ikoj dkWiksZjs'ku vkWQ bf.M;k fyfeVsM½ rFkk vesfjdh ijek.kq fj,DVj fuekZrk dEiuh ßoSLVhaxgkml bysfDVªdÞ ds chp lgefr gks x;h gSA

,uihlhvkbZ,y rFkk xqtjkr ljdkj ds chp lgefr i=k 2009 }kjk xqtjkr ds ehBh ohjnh xk¡o esa 6000 esxkokV ds ,d ijek.kq fctyh la;=k dh LFkkiuk dh tk jgh gSA rhu pj.kksa esa iwjk gksus okys bl ijek.kq mtkZ la;=k dks ,uihlhvkbZ,y 2019 vkSj 2024 ds chp cukdj rS;kj dj nsxkA bl ijek.kq mtkZ la;=k esa ftl 1000 ijek.kq fj,DVj VsDuksykWth dk iz;ksx fd;k tk jgk gS] og nqfu;kHkj esa dgha Hkh iz;ksx esa ugha yk;h x;h gS vkSj [kqn ;wukbVsM LVsV~l U;wfDyvj jsxqysVjh deh'ku us blds rduhdh ij lansg djrs gq, bls vlqjf{kr crk;k gSA bl ijek.kq mtkZ la;=k ds fy, ik¡p xk¡oksa&ehBh ohjnh] tlikjk] eaMok] [kknjiqj vkSj lksfl;k ds fdlku viuh 777 gsDVsvj mitkÅ tehu ls csn[ky dj fn;s tk;saxs vkSj dqy feykdj 30 fdyks ehVj ?ksjs ds 152 xk¡o bl la;=k dh LFkkiuk ds pyrs izHkkfor gksaxsA xqtjkr ljdkj us ogk¡ dh tehu dks i;kZoj.k izHkko vkdyu fjiksVZ 2009 }kjk catj fn[kk fn;k FkkA ;g vkdyu fjiksVZ ,d futh ijke'kZnkrk dEiuh izxfr ySc ,aM dalYVsaV izkbosV fyfeVsM us rS;kj dh FkhA ,slh fdlh Hkh ifj;kstuk ds fy, gekjs ns'k esa i;kZoj.k izHkko dh vkdyu fjiksVZ bathfu;j baMh;k fyfeVsM ;k us'kuy ,ØhMs'ku cksMZ Qksj ,tqds'ku ,aM Vªsfuax }kjk rS;kj dh tkrh gSA ;g fjiksVZ ,d fcuk vkfèkdkfjd ekU;rk izkIr futh dEiuh ls djk yh x;h] ftlus mitkÅ tehu dks catj fn[kk fn;kA

lPpkbZ ;g gS fd bl {ks=k esa mitkÅ tehu gksus ds dkj.k ;gk¡ ew¡xQyh] xsgw¡] cktjk] dikl] I;kt] cSaxu] VekVj ds lkFk&lkFk phdw] vke vkSj ukfj;y dk cxhpk Hkh gSA flfl;k ds vke iwjs Hkkjr esa izfl) gSaA ;gk¡ ds vkeksa dk fu;kZr Hkh fd;k tkrk gSA Ñf"k foHkkx dh ,d fjiksVZ ds vuqlkj ;gk¡ dk okrkoj.k rFkk Hkwfe dktw dh ckxokuh ds fy, Hkh cgqr vuqdwy gSA

mYys[kuh; gS fd Hkkjr esa fctyh dh gekjh dqy [kir dk flQZ <kbZ izfr'kr gh ijek.kq mtkZ ls vkrk gS ftls vxys rhl lkyksa esa Ng ls lkr izfr'kr c<+kus dh ;kstuk gSA vHkh Hkh oSdfYid ÅtkZ tSls lkSj ÅtkZ] iou ÅtkZ] ty fo|qr vkfn gesa nl izfr'kr ls T;knk fctyh nsrs gSaA fiNys dqN lkyksa esa dks;yk vkSj thok'e bZ±èku ls fctyh cukus dh rduhd Hkh mUur gqbZ gSA bl ij vkus okyk [kpZ dkQh de gqvk gSA blds foijhr ijek.kq ÅtkZ u flQZ eg¡xh gS cfYd euq"; vkSj izÑfr ds fy, csgn [krjukd gSA rc vkf[kj D;ksa gekjs ns'k esa ijek.kq la;a=kksa dks LFkkfir djus dh tYnh eph gS\

vesfjdk] :l vkSj ;wjksi esa ijek.kq m|ksx fiNys rhl lkyksa ls eanh dk f'kdkj gSaA iwjh nqfu;k esa fcuk ljdkjh enn ds ijek.kq mtkZ mRiknu vlEHko gSA ,sls esa tkiku esa 11 ekpZ 2011 dks vk;s Hkwdai] lqukeh rFkk mlds pyrs Qqdqf'kek

ehBh ohjnh esa fojksèk izn'kZu

ß;gk¡ ugha] dgha ugha] nqfu;k ds fdlh ns'k esa ughaP& ;gh ukjk yxrs gq, xqtjkr esa Hkkouxj ftys ds ehBh ohjnh xk¡o esa yxk;s tkus okys ukfHkdh; la;a=k ls izHkkfor xk¡oksa ds ykxksa us ,d jSyh fudkyh vkSj vkelHkk djus ds ckn ftykfèkdkjh ds ekè;e ls izèkkuea=kh dks ,d Kkiu fn;kA mudk dguk Fkk fd ßge tku ns nsaxs] ysfdu tehu ugha nsaxsAÞ

ukfHkdh; la;a=k dk fojksèk djus okys ykxksa dk dguk Fkk fd Qqdqf'kek =kklnh ds ckn Hkh fons'kh daifu;ksa dh LokFkZiwfrZ ds fy, ukfHkdh; ftEesnkjh dkuwu dks gYdk cukuk] Hkkjr dh tkurk dh tku vkSj mudh lqj{kk dks iw¡thifr;ksa ds equkQs vkSj ykyp ds Åij dqckZu dj nsuk gSA

mudk dguk Fkk fd dh gesa ogfnu ;kn gS tc Hkksiky xSl =kklnh ds ckn ml dEiuh ds ekfyd ,aMjlu ds Åij bl ns'k dh vnkyr esa xSj ftEesnkjh dk eqdnek pyk;s tkus ls cpkus ds fy, ;s ;gk¡ ds 'kkldksa us mls fuyZTtrkiwoZd fons'k Hkkx fn;k FkkA dsnk;ph ukHkch; mtkZ la;=k esa gcpZ ijek.kq no?kZVuk us iwjh nqfu;k esa ijek.kq m|ksx ds fofdj.k ds pyrs rh?kZdkfyd LokLF;] i;kZoj.k fouk'k dh lEHkkouk us iwjh nqfu;k esa [krjs dh ?kaVh ctk nh gSA

ukHkch; inkFkZ lcls [krjukd inkFkZ gSA ,d ckj rS;kj gksrs gh ukHkch; inkFkZ bUlkuksa] tkuojksa] isM+ksa] gok] ikuh vkSj feV~Vh dks gtkjksa lky rd fo"kkDr cukrs jgrs gSaA ;gh dkj.k gS fd nqfu;k ds mPp rDuksyksth okys fodflr iw¡thoknh ns'k] tSls&teZuh] fLoV~tjySaM] vkWLVªsfy;k vius ijek.kq mtkZ la;=ksa dks cUn djus ds fy, dne c<+k jgs gSaA rFkk :l vkSj vesfjdk esa tgk¡ Fkzh ekbZYl vkbZySaM vkSj psjuksfcy tSlh egknq?kZVuk ds dkn dksbZ u;k ijek.kq fj,DVj ugha cuk;k x;k gSA ,sls le; esa Hkkjr vxj vius ij.kkeq ÅtkZ {kerk dk fdLrkj dj jgk gS] rks blesa dksbZ lansg ugha fd gekjs ns'k ds jguqekvksa ds [kwu&ilhus ls tek ljdkjh iw¡th dks vius fons'kh jguqekvksa vkSj futh iw¡thifr;ksa ds gkFkksa esa yqVkus ds fy, izfrc) gSaA mUgksaus ns'k ds ukxfjdksa dh tku vkSj i;kZoj.k fouk'k tSls tu ljksdkjksa ls iwjh rjg iYyk >kM+ fy;k gSA

vkt gekjs ns'k esa vkSj iwjh nqfu;k esa ijek.kq mtkZ ds fdLrkj ds fo#) rh[ks tu&fojksèk mB jgs gSa pkgs og dqMudqye dk vkUnksyu gks ;k tSrkiqj ;k fQj vc ehBh cfjrh dkA ysfdu gekjs jguqekvksa dks bu vkUnksyuksa esa fons'kh rkdrksa ds gkFk utj vkrs gSaA ljdkj dks rc fons'kh gkFk utj ugha vkrk] tc vejhdk Hkkjrh; laln esa ikfjr ijek.kq mÙkjnkf;Ro dkuwu dks uekus ds fy, ncko nsrk gS vkSj vejhdh dEiuh dks gknls dh gkyr esa ftEesnkjh ls iwjh rjg eqDr j[kus ds fy, ljdkj Hkkjrh; dkuwu esa pksj njokts ryk'krh gSA

flrEcj ds var esa izèkkueU=kh eueksgu flag dh vejhdk ;k=kk ls Bhd igys egkfèkoDrk okguorh us ,d oDrO; esa dgk Fkk fd vxj Hkkjr esa ijek.kq la;a=k dk lapkyu djus okyh laLFkk LosNr;k ijek.kq la;a=k dh vkiwfrZ djus okyh fons'kh dEiuh dks djkjukesa esa ;g NwV ns ldrh gS] fd ijek.kq no?kZVuk dh gkyr esa mls mldh ftEesnkjh ls eqDr j[kk tk,xkA ;g Hkkjrh; dkuwu dh èkTth mM+krs gq, vius gh ns'k ds ukxfjdksa dh tku ls [ksyuk ugha rks vkSj D;k gSA ;kuh tSls Hkksiky xSl =kklnh esa gqvk Fkk ogh vxj Hkfo"; xqtjkr esa gks vki dYiuk djsa fd D;k gksxk] D;ksafd rc tgjhyh xSl ugha] ijek.kq fofdj.k QSysxhA vxj xqtjkr ds fodkl dk ;gh ekWMy ns'k ij Fkksiuk gS rks ;g jkLrk csgn [krjukd gSA

संघ, सरदार और मूर्ति

Hkktik usrkvksa us ykSg iq#"k cuus dh yyd dM+h iqjkuh gSA igys vkMok.kh ds lkFk ;g fo'ks"k.k tksM+k x;k vkSj vc izèkkuea=kh cuus ds fy, ykykf;r ujsUnz eksnh us ljnkj iVsy dks la?kh lkfcr djus vkSj [kqn dks ykSg iq#"k crkus dk dM+k mBk;k gSA ns'kHkj ls yksgk bdB~Bk djds rks fons'kh dEifu;ksa dks mudh fojkV ewfrZ cukus dk Bsdk fn;k gSA ljnkj iVsy cuke usg: dh èkeZfujis{krk dk èkqoh;k¡ NksM+rs gq, iVsy ds O;fDrRo vkSj fopkjksa esa drj C;ksar djrs gq, mls la?k ds vuq:i <kyuk njvly mUgsa dkSuk cuk nsuk gSA [kqn ljnkj iVsy ds eq¡g ls lqus fd mudh èkeZfujis{krk D;k bruh x;h&xqtjh Fkh] tks eksnh ds ekfQd cSBs&

★ Qjojh 1948 esa egjkSyh dh lHkk esa ljnkj iVsy us dgk Fkk fd lkEiznkf;d naxksa ls os 'keZlkj gSaA fgUnqvksa dks pkfg, fd os eqlyekuksa dks bl ns'k esa vlqjf{kr u gksus nsaA

★ xk¡èkh dh gR;k ls iUnz fnu igys eqEcbZ esa mUgksaus dgk Fkk fd ;gk¡ dqN yksx eqfLye fojksèkh ukjs yxk jgs gSaA ,sls og'kh bjkns okys Øksfèk;ksa ls ikxy T;knk vPNs gSa ftudk bykt rks fd;k tk ldrk gSA

★ 1947 esa gSnjkckn dh ,d lHkk esa mUgksaus fgUnw&eqfLye ,drk dh iqjtksj odkyr dh FkhA mudk dguk Fkk fd Hkkjr tSls èkeZfujis{k ns'k esa fgUnw vkSj eqlyeku ds laoSèkkfud vfèkdkjksa esa dksbZ QdZ ugha gSA

★ t;iqj esa mUgksaus dgk Fkk fd la?k dh yksfB;ksa ls eqB~BhHkj eqlyekuksa ds flj rksM+ nsus ls ns'k dh izxfr ugha gksxhA ;fn ukStoku la?k ds vuq;k;h gks tk;saxs rks og ns'k dh dqlsok gksxhA

★ enzkl dh lHkk esa dgk Fkk fd la?k bl ns'k esa tcfj;k fgUnw jkT; vFkok fgUnw laLÑfr dks Fkksiuk pkgrk gSA mls dksbZ ljdkj cnkZ'r ugha djsxhA mUgksaus vkj,l,l dks ;g f>M+dh Hkh nh Fkh fd og vius dk;ZØe dks cnysaA xksiuh;rk dks frykatfr nsA lkEiznkf;d la?k"kZ ls gVsA lafoèkku dk lEeku djs vkSj jk"Vªèot ds izfr fu"Bk iznf'kZr djsA dguk dqN vkSj] djuk dqN vkSj dh 'kSyh mls NksM+uh gksxhA

;gh Fkh ljnkj iVsy dh èkeZfujis{krkA bu fopkjksa dks yksgs dh e`r ewfrZ esa cnyuk ljnkj iVsy ds O;fDrRo dks dkSuk djds mls viuh lkEiznkf;d Qklhoknh jktuhfr dh lsok esa yxkus dh lkft'k ugha] rks Hkyk D;k gS\

¼lanHkZ % 2 uoEcj 2013 dks tulÙkk esa izdkf'kr dud frokjh dk ys[k &^la?k ls fuLlax ljnkj*½

है।

IKराज्य में मौजूदा समय में 50 छोटी और 13 बड़ी परियोजनाएँ संचालित की जा रही हैं, जिसमें टिहरी बाँध भी शामिल है। आगे भी 28 बड़ी परियोजनाएँ प्रस्तावित हैं। अब आंकलन इसी बात से लगाया जा सकता है कि किस तरह से उत्तराखंड की सरकार इस छोटे से राज्य के पहाडों को धमाकों से हिलाकर लगभग हर 100 किमी के दायरे में बाँध बना देना चाहती है। हवाई दौरा करने निकलेंगे तो हर पाँच किमी की हवाई दूरी तय कर नीचे देखने पर नदी नहीं एक कृत्रिम झील नजर आयेगी जो बाँध बनाकर पानी रोकने से बनी है।

दूसरी ओर बाँध कम्पनियों की मनमानी महज पर्यावरण को तहस–नहस करने तक ही नहीं सिमटी हुई बल्कि कम्पनी के गुंडे ग्रामीणों की जमीन हथियाने से लेकर कम्पनी के विरोध में उठने वाली आवाजों को कुचलने तक के लिए हरदम तैयार रहते हैं। इसका हालिया उदाहरण श्रीनगर गढ़वाल में बन रही अलकनंदा हाइड्रो पावर प्रोजेक्ट में पिछले दिनों ही देखने को मिला जब कम्पनी के गुंडों ने बाँध विरोधियों को घर–घर जाकर पीटा। इस कुकृत्य को छुपाने और कम्पनी के पक्ष में अपार जनसर्मथन दिखाते हुए कम्पनी ने दिल्ली में एक प्रायोजित प्रदर्शन भी करवाया। इस प्रदर्शन में शामिल होने के लिए गाड़ियों में भर–भर कर 'औकातानुसार' 1000–500 रुपये देकर लोग जुटाये गये।

बहरहाल यह तो केवल बाँधो का एक छोटा सा पहलू है, जिसे गम्भीरता से अध्ययन करने की जरूरत है, मौजूदा सवाल केदारनाथ में मची तबाही को लेकर है।

मई के महीने की बात है, घाटी में बसे दर्जनों गाँवों के लोग केदारनाथ धाम में इकठ्ठा होकर निजी कम्पनियों के खिलाफ मोर्चा खोले हुए थे। इन ग्रामीणों का कहना था कि घाटी में बेतरतीब ढंग से हेली कम्पनियों को उड़ान के लिए दी गयी आजादी से घाटी के अस्तित्व पर खतरा मंडरा रहा है, लेकिन पर्यावरण मंत्रालय के विरोध के बावजूद भी सरकार और सरकार को हाँक रही निजी उड्डयन कम्पनियों ने अपनी जेबों को ज्यादा तवज्जो दी। घाटी में वर्ष 2006 में जहाँ केवल एक निजी कम्पनी उड़ान भर रही थी वहीं वर्ष 2013 में यह आँकड़ा बढ़कर 10 पर पहुँच गया। केदारघाटी में मची तबाही से पहले दस निजी कम्पनियों के हेलीकॉप्टर दिनभर में औसतन 130 उड़ाने नियमित रूप से भर रहे थे। राज्य सरकार और उड्डयन सचिव राकेश शर्मा को घाटी में हुई हजारों मौतों का जिम्मेदार बताते हुए ग्रामीणों का कहना है कि घाटी में यदि निजी कंपनियों के हेलीकॉप्टरों को उड़ान भरने की अनुमति नहीं दी जाती तो शायद गाँधी सरोवर के पानी को शदियों से रोके हुए पत्थर हेलीकॉप्टर से पैदा होने वाले कम्पन से नहीं हिलते और केदारधाम में शायद तब तबाही का तूफान भी नहीं आता। इस बारे में वाडिया भूविज्ञान शोध संस्थान के वैज्ञानिकों का कहना है कि यह तो शोध का विषय है लेकिन नये–नये बन रहे हिमालय पर निसंदेह इतनी उड़ानों का असर तो पड़ेगा ही। साथ ही वैज्ञानिकों का मानना है कि ग्लेशियरों तक तेजी से बढ़ रही इंसानी धमक और बाँध भी पर्यावरण पर प्रतिकूल असर डाल रहे हैं जिसका खामियाजा पर्यावरण संतुलन पर व्यापक रूप से पड़ रहा है। वैज्ञानिक इस बात को लेकर भी आशंकित हैं कि जिस तरह से लगातार बन रहे हिमालय के साथ विकास के खोखले दावों को लेकर खिलवाड़ जारी है उससे भविष्य में इससे भी कई गुना बड़ा नुकसान सूबे को झेलना पड़ सकता है।

प्रधानमंत्री के नेतृत्व में जलवायु परिवर्तन पर गठित परिषद ने हिमालय क्षेत्रा को लेकर इस बात का अंदेशा पहले ही जता दिया था, लेकिन इसे भी पूँजीपतियों के दबाव में नजरअंदाज किया गया। केन्द्रीय मंत्रियों और पर्यावरणविदों से सुसज्जित इस परिषद की शायद ही किसी सिफारिस पर केंद्र या राज्य सरकार ने गम्भीरता से अमल किया हो। इस परिषद और इसके शोध कार्यो का भी हजारों समितियों और परिषदों की भांति ही वही हश्र हुआ जिसकी याद भारत में हमेशा तबाही के बाद ही आती है। पर्यावरण और इससे छेड़छाड़ से हो रहे नुकसान को लेकर राज्य या केन्द्र सरकार कितनी चिंतित है इसका जवाब तो केदारघाटी में आयी आपदा से ही देखने को मिल गया। बहरहाल केदारघाटी में मचे कोहराम ने देहरादून से दिल्ली तक खलबली तो मचायी है, लेकिन सरकारी प्रयासों ने आम आदमी की जान की

कीमत भी इस आपदा में बता दी है। घाटी में मचा कोहराम धीरे–धीरे शांत हो रहा है, लेकिन उन हजारों लाशों की कीमत को शायद ही भुलाया जा सके, जिसकी नींव पर निजी कम्पनियाँ खुलेआम पर्यावरण का दोहन करने में जुटी हुई हैं। सवाल सैंकडों हैं लेकिन जवाब महज एक कि विकास के खोखले दावों की बुनियाद पर पर्यावरण को तहस–नहस करने में जुटे पूँजीपतियों और सरकार को आम आदमी की जान की न तो परवाह है और न ही आगे और आने वाली तबाही की चिंता। इन सवालों का समाधान भी आम आदमी को ही ढूँढना होगा और विकल्प भी स्वयं तलाशने होंगे।

क्यों नहीं हुए उपायकृ

उत्तराखंड की केदारघाटी में तबाही के पीछे भले ही राज्य मौसम केंद्र और अन्य विभागों के बीच समन्वय को लेकर खींचातानी रही, लेकिन सवाल यह भी है कि आपदा की दृष्टि से संवेदनशील उत्तराखंड में मौसम का सटीक पूर्वानुमान हो भी कैसे? सालों गुजर चुके हैं लेकिन प्रस्तावों के बावजूद यहाँ सरकार डाप्लर रडार नहीं लगा पायी अलबत्ता अपनी शानो शौकत पर अरबों रुपये जरूर लुटा चुकी है। डाप्लर सिस्टम से बादल फटने जैसी स्थितियों की पूर्व सूचना मिल जाती है। इसके अलावा उत्तराखंड में एडवांस वर्क स्टेशन भी तैयार नहीं हो सका, जिसके माध्यम से कई क्षेत्रों के हालात पर स्क्रीन के जरिए मानिटरिंग सम्भव हो जाती। लाइट डिटेक्टर भी नहीं है, जिसके अभाव में बिजली संभावित क्षेत्रों में अलर्ट भी सम्भव नहीं हो सका।

यहाँ मौसम सूचना केन्द्र जरूर हैं, लेकिन रडार, लाइट डिटेक्टर जैसे उपकरण मुहैया नहीं। आपदा कभी कहकर नहीं आती, लेकिन सिर्फ यही सोचकर सामने खड़े खतरे से नजर नहीं चुरायी जा सकती। राज्य में डाप्लर रडार का प्रस्ताव तकरीबन पाँच साल पुराना है। उत्तराखंड राज्य मौसम केंद्र के निदेशक आनंद शर्मा बताते हैं कि यहाँ 20 स्वचालित मौसम केन्द्र हैं। इनके माध्यम से तापमान, वायु जैसे कई पैरामीटर की मानिटरिंग होती है। रेन गेज स्टेशनों से बारिश का आँकड़ा मिलता है, लेकिन ऐडवांस्ड वर्क स्टेशन होने से एक साथ कई स्क्रीन मॉनिटरिंग सम्भव हो पाएगी, लेकिन अभी यह चालू नहीं हो सका है।

उत्तराखंड तबाही के पीछे सबसे बड़े कारण वैज्ञानिक तथ्यों को नजरअंदाज करना, नदियों से छेड़खानी, अवैज्ञानिक तरीकों या कहें कि बेतरतीब ढंग से निर्माण के लिए पहाड़ों को डायनामाइट से उड़ाने, जगह–जगह बाँध निर्माण कर प्रकृति से छेड़खानी और नदी के किनारों से लेकर संवेदनशील पहाड़ों तक में बढ़ रहा बेमियाजी अतिक्रमण रहे हैं। कदम–कदम पर बने बाँधों ने मौसम का स्वरूप बदल दिया है। जो बादल कहीं ज्यादा उ+पर उड़कर फटते थे अब बाँधों से बनी झीलों के चलते छोटी–छोटी पहाड़ियों से टकराकर बहुत नीचे ही फट जा रहे हैं, जिसके चलते आबादी वाले हिस्सों में भारी तबाही जारी है। गंगा अब भी अपने उफान पर और कई बस्तियों को उजाड़ने के लिए बह रही है, अभी भी समय रहते जनता अपने हितों के लिए खुद आगे नहीं आती तो सरकार इस छोटे से पहाड़ी हिस्से को मुनाफे के लिए तबाह कर देगी और आम आदमी के पास सिर्फ चीखें ही शेष रह जाएंगी।

उत्तराखण्ड में भयावह तबाही
अंधाधुंध और बदहवास पूँजीवादी विकास का नतीजा

कृति के साथ आपराधिक छेड़–छाड़ और विकास के नाम पर हो रहे पर्यावरण विनाश के कारण उत्तराखण्ड में जो भयावह तबाही मची है वह प्राकृतिक आपदा नहीं है। बल्कि यह अंधाधुंध और बदहवास पूँजीवादी विकास का नतीजा है।

अब से 137 साल पहले महान विचारक फ्रेडरिक एंगेल्स ने 'वानर से नर बनने की प्रक्रिया में श्रम की भूमिका' नामक अपने लेख में प्रकृति और मानव जाति के बीच सामंजस्यपूर्ण सम्बन्धों को बाधित किये जाने के दुष्परिणामों के बारे में जो राय व्यक्त की थी वह आज हू–ब–हू हमारे सामने आ रहे हैं। प्रस्तुत है उस लेख का एक

अंश––

''...प्रकृति पर अपनी मानवीय विजयों के कारण हमें आत्मप्रशंसा में विभोर नहीं हो जाना चाहिए, क्योंकि वह हर ऐसी विजय का हमसे प्रतिशोध लेती है। यह सही है कि प्रत्येक विजय से पहले–पहल वे ही परिणाम प्राप्त होते हैं, जिनका हमने भरोसा किया था, पर दूसरी और तीसरी बार उसके बिलकुल ही भिन्न और अप्रत्याशित परिणाम होते हैं, जिनसे अक्सर पहले परिणाम का असर जाता रहता है। मेसोपोटामिया, यूनान, एशिया माइनर तथा अन्य स्थानों में जिन लोगों ने कृषियोग्य भूमि प्राप्त करने के लिये वनों को बिलकुल ही नष्ट कर डाला, उन्होंने कभी यह कल्पना तक नहीं की थी कि वनों के साथ आर्द्रता के संग्रह–केन्द्रों और आगारों का उन्मूलन करके वे इन देशों की मौजूदा तबाही की बुनियाद डाल रहे हैं। आल्प्स के इटलीवासियों ने जब पर्वतों की दक्षिणी ढलानों पर चीड़ के वनों को (ये उत्तरी ढलानों पर खूब सुरक्षित रखे गये थे) पूरी तरह से तबाह कर डाला तब उन्हें इस बात का अहसास नहीं था कि ऐसा करके वे अपने प्रदेश के पहाड़ी पशु–पालन पर कुठाराघात कर रहे हैं। इससे भी कम आभास उन्हें इस बात का था कि अपने कार्य द्वारा वे अपने पर्वतीय □ोतों को वर्ष के अधिक भाग के लिए जलहीन बना रहे हैं और साथ ही इन □ोतों के लिये यह सम्भव बना रहे हैं कि वे वर्षाऋतु में मैदान में और भी भयावह बाढ़ें लाया करें... हमें हर पग पर यह याद कराया जाता है कि प्रकृति पर हमारा शासन किसी विदेशी जाति पर एक विजेता के शासन जैसा कदापि नहीं है, वह प्रकृति से बाहर के किसी व्यक्ति जैसा शासन नहीं है, बल्कि रक्त, मांस और मस्तिष्क से युक्त हम प्रकृति के ही प्राणी हैं, हमारा अस्तित्व उसके ही मध्य है और उसके ऊपर हमारा सारा शासन केवल इस बात में निहित है कि अन्य सभी प्राणियों से हम इस मानी में श्रेष्ठ हैं कि हम प्रकृति के नियमों को जान सकते हैं और ठीक–ठीक लागू कर सकते हैं।

''...जैसा समाज के सम्बंध में वैसे ही प्रकृति के सम्बंध में भी वर्तमान उत्पादन–प्रणाली मुख्यतया केवल प्रथम, ठोस परिणाम भर से मतलब रखती है और तब विस्मय प्रकट किया जाता है कि इस उद्देश्य की पूर्ति के किये गये क्रियाकलाप के दूरवर्ती प्रभाव बिलकुल दूसरे ही प्रकार के, बल्कि मुख्यतया बिलकुल उल्टे ही प्रकार के होते हैं; कि पूर्ति और माँग का तालमेल बिलकुल विपरीत वस्तु में परिणत हो जाता है...''

एंगेल्स ने प्रकृति के साथ छेड़छाड़ की जिस अवस्था को मानवता के लिए विनाशकारी बताया था, उसकी तुलना यदि उत्तराखण्ड में पूँजीपतियों और बिल्डरों द्वारा मचायी जा रही तबाही से करें तो इसमें जमीन–आसमान का फर्क है। दर्जनों की संख्या में बनाये जा रहे बाँधों, सड़कों और पर्यटन विकास के नाम पर प्रकृति के साथ आपराधिक छेड़छाड़ और तबाही को देखते हुए केदारघाटी में और अन्य इलाकों में आयी तबाही पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए। हद तो यह है कि इतना बड़ी तबाही झेलने के बाद भी विकास के नाम पर विनाशकारी नीतियाँ अभी जारी है।

चीनी मिलों पर बकाया : किसानों की दुर्दशा

ाद्य और उपभोक्ता मामलों के मन्त्री के वी थॉमस ने लोकसभा में एक सवाल के लिखित जबाब में बताया कि सितम्बर में समाप्त हो रहे कारोबारी वर्ष 2012–2013 में गन्ना किसानों के 5821 करोड़ रुपये से भी ज्यादा चीनी मिलों पर बकाया हैं। उन्होंने कहा कि यह बताना सम्भव नहीं है कि किसानों को कब तक भुगतान किया जायेगा?

विडम्बना देखिए गन्ना मूल्य निर्धारण भी मिल मालिक और सरकार मिलकर करते हैं। खेतों से मिलों तक गन्ना ढुलाई भाड़ा भी गन्ने के मूल्य से काटा जाता है। सड़क निर्माण के नाम पर उनके भुगतान से कटौती की जाती है। इसके बावजूद भी किसानों को भुगतान के लिए आन्दोलन का सहारा लेना पड़ता है और मिल मालिक फिर भी सालों–साल

भुगतान नहीं करते। हाल ही में बागपत जिले की मोदी गन्ना मिल में एक राजनेता के हिस्सेदारी की खबर सुर्खियों में थी। मिल के गेट पर भुगतान की माँग को लेकर किसान लगभग 70–75 दिनों तक धरना और प्रर्दशन करते रहे। आन्दोलन के तीव्र तेवर को भाँपते हुए शासन ने मिल मैनेजर को निर्देश दिया कि किसानों के साथ बातचीत करके कुछ भुगतान के चेक देकर आन्दोलन समाप्त करा दो। लेकिन आन्दोलन समाप्त होने के बाद भी बैंक खाते में पैसा नहीं पहुँचा। चेक बाउंस हो गये। आन्दोलन फिर शुरू हो गया लेकिन किसानों के संघर्ष की धार कुंद करने के लिए शासन ने चीनी को नीलाम करके भुगतान करने का वादा किया या कहा कि मिल मालिकों के खिलाफ एफ आई आर दर्ज की जायेगी। लेकिन प्रशासन आज तक कोई स्थायी समाधान न दे सका।

गौरतलब है कि मिल प्रबंधन और प्रशासन की मिलीभगत से न मिल की आरसी जारी हुई, न मोदी को गिरफ्तार किया गया और न ही कोई राजनीतिक पार्टी का कोई नेता किसानों के पक्ष में आया। आज भी आन्दोलन जारी है। राजनीतिक पार्टियों के कुछ नेता कभी–कभी आकर भाषणबाजी करते हैं कि जब तक किसानों की पाई–पाई का भुगतान नहीं होता हम चैन से नहीं बैठेंगे। लेकिन उन्हें बेचैन नहीं देखा गया। स्पष्ट है पक्ष–विपक्ष की पार्टियाँ जनता का साथ छोड़कर देशी–विदेशी सरमायदारों के पक्ष में चली गयी हैं।

सरकार बिजली बिल बकाया होने पर किसानों के कनेक्सन काट देती है। बैंकों की बकाया वसूली के लिए उनकी जमीने नीलाम कर देती है लेकिन किसानों का बकाया वसूली के लिए मिल मालिकों के खिलाफ कोई कार्यवाही क्यों नहीं करती?

काबिले गौर है कि किसान पूरे साल भोजन, बच्चों की शिक्षा, चिकित्सा और अन्य खर्चों के इस उम्मीद पर लिए बैंकों और साहूकारों से कर्ज लेता रहता है कि गन्ना भुगतान आने पर इसे लौटा दूँगा लेकिन सारा गन्ना मिलों में पहुँचने के बाद भी उसको एक मुश्त भुगतान नहीं मिल पाता। इसी के चलते किसान लगातार कर्ज के बोझ से दब जाता है।

कई संस्थाओं के आँकड़ों से पता चलाता है कि देश के 80 फीसदी किसान कर्ज में डूबे हुए हैं और 40 फीसदी को वैकल्पिक रोजगार मिले तो वे खेती छोड़ने को तैयार हैं। राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो के अनुसार हर 37 मिनट में एक किसान आत्महत्या करता है। 1995 से 2011 तक 2,90,740 किसान कर्ज और गरीबी से तंग आकर आत्महत्याएँ कर चुके हैं। पिछले दिनों पंजाब के किसानों ने गाँव के बाहर 'गाँव बिकाउ+ है' का बोर्ड लगाकर सरकार से खरीददार भेजने की माँग की थी। यहाँ किसानों ने एक मेला लगाकर राष्ट्रपति से गुहार लगायी थी कि हम अपनी किडनी बेचना चाहते हैं।

हाल ही में झारखंड के दूर के गाँव में एक किसान हल्दी की खेती में बर्वाद हो गया। उसने नुकसान की भरपाई के लिए कम्पनी और सरकार का दरवाजा खटकाया। अन्त में कहीं सुनवाई न होने के चलते उसने आत्महत्या कर ली। गोंडा, चतरा और पलामू जिलों में नियमित सूखा पड़ता है। यहाँ आन्दोलन करके किसानों ने कहा कि पानी नहीं देती सरकार तो इच्छा मृत्यु ही दे दे।

छोटा प्रदेश होने के चलते जिस हरियाणा को खुशहाली का तमगा मिला है। वहाँ किसान हर संभव उपाय आजमाने के बाद भी बैंकों से लिया गया कर्ज नहीं चुका पाये। चारों ओर से मायूस होकर किसानों ने कुरूक्षेत्रा में एक जनसभा कर प्रधानमंत्राी से अपने शरीर के अंग बेचने की अनुमति माँगी है। शायद ये किसान अंग बेचकर कर्ज चुकाने के बाद कुछ और साल जी सकें और अपने परिवार का भरण पोषण कर पायें। गुजरात में किसानों से जमीनें छीन कर देशी–विदेशी कम्पनियों को दी जा रही हैं। 40 गाँव के किसान संगठित होकर अपनी जमीनों को बचाने का आंदोलन चला रहे हैं।

देश का अन्नदाता अब किस बात पर गर्व करे, जब पूरे देश में अपनी जमीनें बचाने, फसलों का उचित दाम और भुगतान के साथ–साथ अपना अस्तित्व बचाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। दैत्याकार विदेशी कम्पनियों और देशी पूँजीपतियों के साथ मिलीभगत करके सरकार किसानों के भयावह शोषण और अमानवीय दमन के नये–नये कानून और हथकंडे अपना रही है। ये लोग किसानों को नरकीय जीवन जीने, आत्महत्या करने के साथ ही शरीर के अंग बेचने को विवश कर रहे हैं। मेहनतकश जनता की देशव्यापी एकता ही अब इन अमानवीय अत्याचारों को रोका सकती है।

रिलायंस पर सरकार की मेहरबानियाँ

रकार ने अप्रैल 2014 तक प्राकृतिक गैस के दाम बढ़ाने के रंगराजन समिति के सुझावों को मंजूरी दे दी है। अपने फैसले को सही ठहराते हुए सरकार ने तर्क दिया है कि प्राकृतिक गैस का दाम बढ़ाने से इस क्षेत्रा में निवेश बढ़ेगा, उत्पादन में वृद्धि होगी, आयात पर निर्भरता कम होगी, वित्तीय स्थिरता बढ़ जायेगी और देश की उ+र्जा

सुरक्षा भी बढ़ेगी। लेकिन अफसोस कि दाम बढ़ाने के बावजूद भी सरकार के सारे दावे झूठ साबित हुए हैं।

प्राकृतिक गैस के दाम को 1.7 डॉलर प्रति एमएमबीटीयू (मिलियन मिट्रिक ब्रिटिश थर्मल यूनिट) से 5.25 डॉलर प्रति यूनिट कर 300 प्रतिशत इजाफे के बावजूद भी देश में गैस उत्पादन और निवेश दोनों में ही कमी आयी है। 2010–2011 की तुलना में 2011–2012 में ही गैस उत्पादन में 8.92 प्रतिशत की कमी आयी है। इस दौरान नये भण्डारों की खोज व अन्य शोध कार्यों के लिए भी निवेशकों में कोई खास उत्साह भी नजर नहीं आया। ब्रिटिश कम्पनी बीपी ने इस क्षेत्रा में जो 700 करोड़ डॉलर का निवेश किया वह भी कृष्णा–गोदावरी गैस उत्पादन क्षेत्रा (केजी बेसिन) में पहले से ही उत्पादन कर रही रिलाइन्स कम्पनी की 30 प्रतिशत हिस्सेदारी खरीदने में किया। इसी जगह पर सार्वजनिक क्षेत्रा की तीन बड़ी कम्पनियाँ ओएनजीसी, गेल और ओआईएल भी गैस उत्पादन करती हैं। जबकि निवेश निजी क्षेत्रा की कम्पनी में हुआ है। इतना बढ़ा निवेश करने के पीछे बीपी का इरादा भारत देश का उद्धार करना कतई नहीं है।

प्राकृतिक गैस संसाधनों को खोजने और विकसित करने के लिए नयी नीति नेल्प (न्यू एक्स्प्लोरेशन लाइसेंस पॉलिसी) बना कर सरकार ने इस क्षेत्रा को निजी कम्पनियों की लूट के हवाले खुला छोड़ देने की जरूर रही है। अपनी इसी मंशा को अंजाम देते हुए पहले तो सरकार ने गैस संसाधनों को खोजने और विकसित करने के लिए जरूरी तकनीक और धन के अभाव का रोना रोया और फिर देश के सबसे बड़े प्राकृतिक गैस भण्डार वाले इलाके केजी बेसिन को रिलायंस इंडस्ट्रीज के हवाले कर दिया। नेल्प नीति में कहा गया था कि प्राकृतिक गैस संसाधनों पर किसी भी कम्पनी का एकाधिकार नहीं होने दिया जायेगा, लेकिन देखते ही देखते केजी बेसिन में रिलायंस का एकाधिकार बढ़ता ही गया।

1999 में खोजे गये प्राकृतिक गैस के इस विशाल भण्डार क्षेत्रा में 2005 तक प्राकृतिक गैस के 18 से भी ज्यादा इलाकों का लगया जा चुका था। ऐसे में सरकार, सार्वजनिक क्षेत्रा की कम्पनी ओएनजीसी से गैस का उत्पादन कराकर उससे होने वाले लाभ को जनहित में इस्तेमाल कर सकती थी। लेकिन सरकार ने जनता की इस सम्पत्ति को एकतरफा रिलायंस इंडस्ट्रीज के हाथों में सौंप दिया। केजी बेसिन के जितने इताके पर आज इस कम्पनी का कारोबार फैला हुआ है उसके महज पाँच फीसदी पर ही उसे बोली लगाकर अधिकार प्राप्त हुआ था।

केजी बेसिन पर अपना अधिकार कायम करने के बाद से रिलांइस ने गैस के दाम को लेकर मनमानी शुरू कर दी। 2004 में उसने बिजली निर्माण करने वाली सार्वजनिक क्षेत्रा की कम्पनी एनटीपीसी (नेशनल थर्मल पावर कॉरपोरेशन) को 2.34 डॉलर प्रति यूनिट की दर पर 17 साल तक प्राकृतिक गैस बेचने का समझौता किया। इस समझौते की असलियत इस बात से ही जाहिर हो जाती है कि रिलायंस ने गैस की जो कीमत प्रस्तावित की थी वह उस वक्त दुनिया के किसी भी अन्य देश की तुलना में सबसे अधिक थी। जब इस समझौते का विरोध होने लगा तो सरकार और रिलायंस ने बड़ी चालाकी से कहा कि 17 साल की अवधि में लागत मूल्य में बढ़ोत्तरी को ध्यान में रखकर यह समझौता किया गया। सरकार का कहना था कि इससे अन्ततः एनटीपीसी को ही फायदा होगा। 2005 में रिलायंस कम्पनी ने एक बार फिर सरकार के सामने गैस के दाम बढ़ाने का प्रस्ताव रखा। उत्पादन लागत में बढ़ोत्तरी की दुहाई देते हुए उसने एनटीपीसी को समझौते में तय की गयी कीमत पर भी प्राकृतिक गैस देने से इन्कार कर दिया।

केजी बेसिन में उत्पादित गैस के दाम बढ़ाने की रिलायंस इंडस्ट्री के प्रस्ताव को मंजूरी देते हुए सन 2007 में प्रणव मुखर्जी की अध्यक्षता वाले उच्चाधिकार प्राप्त मंत्रियों के समूह ने गैस का दाम दुगुना कर 4.2 डॉलर प्रति यूनिट कर दिया। सरकार ने जिस समय रिलायंस को दुगुने और फिर चौगुने दाम पर गैस बेचने का अधिकार दिया था, उसी दौरान सार्वजनिक क्षेत्रा की कम्पनी ओएनजीसी 1.83 डॉलर प्रति यूनिट के हिसाब से गैस बेच रही थी। भाजपा गठबंधन के शासन काल में शुरू हुआ रिलायंस कम्पनी का वसंत कांग्रेस गठबंधन के शासन काल में भी बदस्तूर जारी है। भाजपा गठबंधन के शासन काल में शुरू हुआ रिलायंस कम्पनी का वसंत कांग्रेस गठबंधन के शासन काल में खूब गुल खिला रहा है।

रिलायंस इंडस्ट्रीज के मालिक मुकेश अम्बानी ने एक बार फिर सरकार के सामने लाडली औलाद की तरह बढ़ती लागत का रोना रोया और प्राकृतिक गैस के दाम 17 डॉलर प्रति यूनिट करने के लिए सरकार पर डबाव डालना शुरू किया। जब मंत्रािमण्डल में ही इस प्रस्ताव पर छुट–मुट विरोध हुआ तो रिलांइस कम्पनी ने सरकार को करारा जवाब देते हुए अपना उत्पादन गिरा कर महज 16 एमएमएससीएमडी (प्राकृतिक गैस मापने की इकाई) कर दिया। इससे पहले कम्पनी इसी क्षेत्रा में 80 एमएमएससीएमडी गैस उत्पादन कर चुकी थी, जबकि सरकार ने वहाँ मात्रा 40 एमएमएससीएमडी गैस उत्पादन का ही अनुमान लगाया था। योजना आयोग के उपाध्यक्ष ने तो अपना पूरा प्यार जताते हुए प्रस्ताव को फौरन मंजूरी दे दी थी लेकिन तात्कालिक प्राकृतिक गैस और पेट्रोलियम मंत्राी एस जयपाल रेड्डी ने थोड़ा ना–नुकुर की तो उसका खामियाजा उन्हें अपना मंत्राायलय गँवा कर भुगतना पड़ा।

रिलायंस को लूट की छूट देने में सरकार ने उसकी हर इच्छा पूरी की। निजी कम्पनी को लाभ पहुँचाने में सरकार खुद कम्पनी के वकील की भूमिका में उतर आयी, जबकि सरकार का अपना ही कॉरपोरेशन एनटीपीसी रिलायंस के खिलाफ करार से दुगने दाम पर गैस बेचने का अदालत में मुकदमा लड़ रहा था।

सरकार ने गैस क्षेत्रा को निजी पूँजीपतियों के हवाले करते समय दावा किया था कि इससे सार्वजनिक क्षेत्रा और आम जनता को दूरगामी लाभ होगा। एक अनुमान के मुताबिक गैस के दामों में एक डॉलर की बढ़ोत्तरी यूरिया उत्पादन पर सालाना 3000–4000 करोड़ डॉलर का अतिरिक्त बोझ डालेगी। इसके चलते गैस से बिजली बनाने वाले उद्यमों में 10000 करोड़ का अतिरिक्त खर्च बढ़ेगा। जिन भी उद्यामों पर यह अतिरिक्त भार पढ़ेगा वे ज्यादातर सार्वजिक क्षेत्रा के तहत हैं। यानी गैस के दाम बढ़ने से अगर एक तरफ कुछ सार्वजनिक क्षेत्रा की तेल कम्पनियों को थोड़ा फायदा पहुँचेगा भी तो दूसरी ओर अन्य सार्वजनिक क्षेत्राों में उसे इससे होने वाले भयंकर नुकसान को भी झेलना पड़ेगा जो सीधे जनता की जेब से ही वसूला जायेगा। कुछ मिलाकर इससे निजी क्षेत्रा की रिलायंस कम्पनी ही चाँदी की फसल बटोरेगी।

रिलांइस के कहने पर गैसे के दाम में बढ़ोत्तरी करते हुए सरकार का कहना था कि 'विशेषज्ञ समिति' ने गहन अध्ययन और जाँच–पड़ताल के जरिये प्राकृतिक गैस के दाम बढ़ा कर 8.4 डॉलर प्रति यूनिट करने का सुझाव दिया है। इस विशेषज्ञ समिति के अध्यक्ष सी रंगराजन ने अपनी विशेषज्ञता का प्रदर्शन करते हुए जापान के गैस दामों को आधार बनाकर भारत में गैस का दाम तय कर दिया। जबकि जापान और भारत में गैस उत्पादन की स्थितियों में भारी विषमताएँ हैं, जापान समुद्र के अंदर से गैस उत्पादन करता है और भारत में यह काम नदी घाटियों में होता है। जापान में गैस का दाम दुनिया भर में सबसे ज्यादा है। विशेषज्ञ समिति ने जापान को ही आधार क्यों बनाया यह बताने में समिति असफल रही। यानी विशेषज्ञ समिति की विशेषज्ञता इसी में रही कि कैसे निजी पूँजीपतियों को लाभ पहुँचाया जाय और इसका सारा बोझ सार्वजनिक क्षेत्रा व फिर जनता के कंधों पर डाला जाय।

कॉरपोरेट दबाव की इंतहाँ है कि सरकार ने पहले ही प्राकृतिक गैस का जो दाम निर्धारित किया वह दुनिया भर में सबसे ज्यादा है। दूसरी ओर रिलायंस कम्पनी को यह अधिकार भी दे दिया है कि वह घरेलू कम्पनियों से भी गैस के दाम डॉलर में वसूल करेगी। यानी डॉलर के मुकाबले रुपये की तबाही के दौर में भी कम्पनी को डॉलर वसूलकर मालामाल बनाने में सरकार ने पूरा सहयोग दिया है।

प्राकृतिक गैस के दाम बढ़ाने के पक्ष में जितनी बेतुकी बयान बाजियाँ हो रही हैं उसकी और कोई मिसाल मिलना मुश्किल है। केजी बेसिन में रिलायंस पर 700 अरब डॉलर का निवेश करने के बाद बीपी कम्पनी की भारतीय शाखा का कहना है कि 8.2 डॉलर प्रति यूनिट दाम बहुत ही कम है, जिस कारण निवेशक इस क्षेत्रा में निवेश करने से कतरा रहे हैं। लेकिन इस कम्पनी से भला कोई यह पूछे कि फिर किस उम्मीद पर उसने खुद 4.2 डॉलर प्रति यूनिट के दाम पर इतना भारी निवेश किया। रिलायंस के मालिक अम्बानी ने भी अब तकनीक के अभाव का रोना शुरू कर दिया है। उनसे भी यह पूछा जाना चाहिए कि आखिर बिना पर्याप्त तकनीक के वह किस उम्मीद पर गैस उत्पादन का लाइसेंस लेते रहे। सरकार से पूछा जाने वाले सवाल यह है कि आखिर क्यों कम तकनीक वाली रिलायंस कम्पनी का लाइसेंस रद्द नहीं करती।

प्राकृतिक गैस को निजी हाथों में सौंपने और फिर एक–एक कर इन निजी मुनाफाखोरों के पक्ष में कानून बनाने या उनकी राह में रोड़ा बनने वाले हर कानून में फेर बदल करने में भाजपा–कांग्रेस दोनों में से कोई पीछे नहीं है। छोटे से छोटे मुद्दे पर कांग्रेस को कोसने और प्रधानमंत्री का इस्तीफे की माँग करने वाली भाजपा इस मुद्दे पर चुप्पी साधे हुए है। देश को पूँजीपतियों के हवाले करने और खुद उनका संरक्षक बनने में पक्ष–विपक्ष में कोई मतभेद नहीं। अब सरकार ने लोकतंत्रा की परिभाषा से जनता की जगह पूँजीपतियों को पूरी तरह फिट कर लिया है।

दुर्गाशक्ति नागपाल का निलंबन : सही पहलू की तलाश

हाल ही में उत्तर प्रदेश सरकार ने प्रशिक्षु आईएएस दुर्गाशक्ति नागपाल को निलंबित कर दिया। यह लोगों के बीच गहरे विवाद का विषय बन गया है। इस मामले में लोगों की राय बँटी हुई है। इसके पीछे दो कारण सामने आये हैं। पहला खनन माफिया के खिलाफ की गयी कार्रवाई और दूसरा कादलपुर गाँव में मस्जिद की दीवार गिराने का आरोप। अगर हम सीधे तौर पर पहले मामले को देखें तो हमें यही समझ में आता है कि उत्तर प्रदेश सरकार का फैसला खनन माफिया के पक्ष में है और इन्हें बचाने के लिए सरकार ने दुर्गाशक्ति नागपाल को निलंबित कर दिया क्योंकि दुर्गा ने खनन माफिया के खिलाफ संवैधानिक दायरे में कार्रवाई की थी। जबकि दूसरे मामले पर ध्यान दें तो उत्तर प्रदेश सरकार का कहना है कि मस्जिद की दीवार गिराने से साम्प्रदायिक दंगें हो सकते थे, दुर्गा ने मस्जिद की दीवार गिराकर दंगे भड़काने का काम किया है। जिसके चलते उन्हें निलंबित किया गया।

इन दोनों मामलों का तथ्यों के साथ विशलेषण करें तो पता चलता है कि खनन या बालू माफियाओं का अरबों रुपये का काला कारोबार ऐसे ही बेधड़क नहीं चल रहा है। सफेदपोश, नेता, नौकरशाह और पुलिस सभी इस कारोबार में लिप्त हैं। इस काले कारोबार से होने वाली अवैध कमाई ठेकेदारों, खनन विभाग से जुड़े सरकारी अफसरों, चौकियों पर तैनात पुलिस अफसरों, बड़े पुलिस अधिकारियों और इस धंधे को संरक्षण देने वाले नेताओं तक पहुँचती है। जबकि काली कमाई का एक बड़ा हिस्सा अघोषित तौर पर इन धंधों में लिप्त मंत्रियों तक जाता है। उत्तर प्रदेश सरकार के कैबिनेट मंत्री आजम खान ने व्यंग्य किया कि 'प्राक्रतिक संसाधनों पर सबका हक है'। 'राम नाम की लूट है लूट सके तो लूट'। इसका आशय क्या है? यह समझना मुश्किल नहीं।

एक खबर के अनुसार एक ट्रक में 25 घनमीटर बालू आता है जिस पर 32 रुपये प्रति घंटा के हिसाब से 800 रुपये रॉयल्टी कटती है। कुल रायल्टी का 30 प्रतिशत यानि 225 रुपये वैट लगता है। ट्रक में ढुलाई और लदाई का खर्च 1000 रुपये आता है। एक ट्रक बालू की कीमत सिर्फ 2025 रुपये होती है। लेकिन सच यह है कि प्रत्येक ट्रक पर 75 घनमीटर बालू लादा जाता है। 2025 रुपये के ट्रक का बालू बाजार में 30 से 35 हजार रुपये में बिकता है। खनन माफिया एक ट्रक से करीब 30 हजार रुपये की काली कमाई करते हैं।

कानूनी तौर पर एक एकड़ में 12 हजार घन मीटर खुदाई की जा सकती है। लेकिन सरकारी रिपोर्ट के मुताबिक हमीरपुर के बैड़ा दरिया घाट, भौड़ी जलालपुर, चित्राकूट के ओरा, बाँदा के भुरेड़ा सहित हजारों घाटों में एक एकड़ में 1.5 लाख घनमीटर से भी ज्यादा मौरम बालू निकाली गयी। सरकारी आँकड़ों के मुताबिक उत्तर प्रदेश में हर साल 954 करोड़ रुपये का खनन कारोबार होता है। जबकि करीब 2797 करोड़ रुपये के अवैध कारोबार का कोई हिसाब नहीं।

इस तथाकथित लोकतान्त्रिाक देश में प्राकृतिक संसाधनों की बेलगाम लूट में उत्तरप्रदेश प्रशासन और नेता किसी से पीछे नहीं हैं। क्योंकि यदि इस लूट में निर्धारित हिस्सा मिलता रहे तो कानून के रखवालों (आईएएस) को कोई आपत्ति नहीं होती है। लूट का कारोबार बढ़ने के साथ–साथ इन माफियाओं की काली कमाई बढ़ती जाती है। जाहिर है कि प्रशासन को भी बड़ा हिस्सा चाहिए। चोरी से किये गये अरबों रुपयों की कमाई की बंदरबाँट में नेता, अफसर और पुलिस सभी शामिल होते हैं। सम्भावना यह भी है कि दुर्गा का इन माफियाओं से सौदा नहीं पट पाया हो।

एक खबर के अनुसार 2 जुलाई को कादलपुर गाँव के एक धार्मिक स्थल की दीवार को दुर्गा ने गिरवा दिया था। सरकर ने माहौल बिगड़ने की आशंका से दुर्गा को निलम्बित कर दिया। जबकि इस गाँव के लोगों में 70 प्रतिशत मुस्लिम आबादी है, धार्मिक सद्भावना बिगड़ने के दावे को उन्होंने सिरे से खारिज किया। गाँव के लोगों का कहना है कि धार्मिक

स्थल का निर्माण गाँव के सभी धर्मों के लोगों की सहमति से ही हो रहा था, इसलिए दंगा भड़कने की सम्भावना का सवाल ही नहीं उठता है। कुछ लोगों का मानना है कि उत्तरप्रदेश सरकार दंगों की आड़ में अपराधियों को बचाने में लगी हुई है। विवाद का विषय यही है।

दोनों खबरों में सच कौन सी है। हम लोगों में से कोई भी नहीं जानता। लेकिन हम इस बात के लिए मजबूर हैं कि मीडिया द्वारा उड़ायी गयी इन दोनों खबरों में से इस या उस बात पर विश्वास करके अपनी राय बनायें और शासक वर्ग के एक खेमें में खड़े हो जाएँ।

दरअसल दुर्गानागपाल जैसे सभी आईएएस अधिकारियों की जिंदगी सुख–सुविधाओं और वैभव–विलास से भरपूर है। व्यवस्था से मिली शानो–शौकत और अय्यासी भरी जिंदगी और समाज में देवता जैसी स्थिति किसी आईएएस अधिकारी को जनता की जिंदगी से काट देने के लिए पर्याप्त है। यही हाल नेता का भी है लेकिन नेता दिखावे के लिए ही सही पाँच साल में हाथ जोड़कर जनता के सामने वोट माँगने के लिए उपस्थित होते हैं। लेकिन ईमानदार आईएएस अधिकारी भी जनता को जाहिल और उन्मादी भीड़ समझता है।

वह मजदूर किसानों के आन्दोलनों पर गोली चलाने से हिचकता नहीं है। हमारा इतिहास इस बात का गवाह है। ये जनता को अपनी जूती की नौक पर रखते हैं। जनता अपनी रोज–मर्रे की जिन्दगी से जुड़ी समस्याओं को लेकर महीनों सरकारी दफ्तर के चक्कर लगाते हैं। सरकारी बाबू बदनाम होते हैं और 'सब खेल खेलें गोसाई अपुना रहैं दास की नाई' की तर्ज पर ये अधिकारी जनसेवक बने रहते हैं। यही अधिकारी उदारीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण की नीतियाँ बनाकर जनता का खून चूसते हैं। नेताओं के भाषण और उनकी कार्रवाइयों के मार्गदर्शक यही हैं। यही लोग देश की शासन व्यवस्था चला रहे हैं। नेता, पूँजीपति और अधिकारियों का गठजोड़ देश को लूट रहा है।

लेकिन जब इनके बीच का समीकरण बिगड़ जाता है तो ये लोग अपनी लड़ाई जनता के अखाड़े में लड़ते हैं। कोई धर्मनिरपेक्ष होने की डींग भरता है तो कोई ईमानदार बनने की। सीधे–सादे लोग नेताओं और अफसरों के आपसी विवाद निपटारे के मोहरे बन जाते हैं। दरअसल इन दोनों में किसी को भी मेहनतकश जनता की जिंदगी और संघर्ष से कोई लेना–देना नहीं है। इनमें से कोई भी इस सड़ी व्यवस्था, जनता के ऊपर होने वाले अन्याय और शोषण के खिलाफ जन–आन्दोलनों में लोगों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ता दिखाई नहीं देता है। ये लोग किस तरह हमारे खिलाफ साजिश रच रहे हैं इस बात को समझाना होगा।

छपते–छपते– *इस लेख के विश्लेषण को सही ठहराते हुए दुर्गा नागपाल का निलंबन रद्द कर दिया गया और उनकी पोस्टिंग कानपूर देहात में कर दी गयी। विधायिका और कार्यपालिका के दोस्ताना अंतर्विरोधों को न समझने वाले भोले लोग, जो इस निलंबन पर आठ–आठ आँसू बहा रहे थे, वे इसके बारे में क्या कहेंगे?*

जिन्हें नाज है हिन्द पर वे कहाँ हैं?

श्व शांति सूचकांक द्वारा वर्ष 2013 में किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार भारत दुनिया के सबसे हिंसक देशों में शुमार है। ब्राजील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीकी (ब्रिक्स) देशों की सूची में पड़ोसी देशों से अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने में भारत का बेहद खराब स्थान है और व्यापार के लिए उम्दा माहौल बनाने में यह अंतिम स्थान पर है। छोटे स्तर के घोटाले करने में भारत सबसे आगे है। कार्यकुशल सरकार के मामले में भारत का चौथा स्थान है।

किसी भी देश या समाज के जागरूक इंसान की कोशिश रहती है कि देश में दंगेफसाद या लड़ाई–झगड़े न हों। लेकिन इस सर्वेक्षण के अनुसार शांति बनाये रखने की 162 देशों की सूची में भारत का 141वाँ स्थान है। वर्ष 2012 में आन्तरिक हिंसा के कारण 799 लोगों को अपनी जिंदगी से हाथ धोना पड़ा। हमारा देश शांति बनाये रखने में फिसड्डी साबित हुआ है।

इस सर्वेक्षण से यह बात भी सामने आयी कि भारत हिंसा से पीड़ित देशों जैसे इराक, अफगानिस्तान, पाकिस्तान और दक्षिण सूडान के रास्ते पर कदम–ताल कर रहा है। भारत में भयानक तरीके से हिंसा और साम्प्रदायिक हिंसा के मामलों में इजाफा हुआ है। औसतन एक दिन में दो या दो से अधिक जिन्दगियाँ दंगों की भेंट चढ़ जाती हैं। आज देश में दंगे ऐसे दिख रहे हैं जैसे गन्दगी के ढूह पर उगे झाड़–झंखाड़। देश की शांति और एकता को जातिवाद,

क्षेत्रावाद और साम्प्रदायिकता जैसे चूहे कुतर रहे हैं। यह बेहद चिंता–जनक है। इतनी हिंसा के बावजूद देश के रहनुमाओं के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती है।

पिछले साल बस्तर और छत्तीसगढ़ जैसे आदिवासी बहुल इलाकों में भयानक हिंसक घटनाओं में लोगों की जान चली गयी। देश में चुनाव आते ही राजनीतिक पार्टियाँ साम्प्रदायिकता का जहर फैलाना शुरू कर देती हैं। भूख, महँगाई और बेरोजगारी से त्रास्त जनता को जाति–धर्म के झगड़ों में उलझाकर वोट बैंक के सौदागर अपनी कुर्सी पक्की करने के लिए दंगे–फसाद करवाते हैं और लाशों पर अपनी चुनावी रोटियाँ सेंकते हैं। गृह–मंत्रालय के मुताबिक सिर्फ जनवरी से अक्टूबर 2012 में 100 से ज्यादा साम्प्रदायिक दंगें हुए। जिनमें 34 लोगों की मौत हुई और 450 से ज्यादा लोग बुरी तरह से घायल हुए।

असम के कोकराझार और आसपास के जिलों में जुलाई–अगस्त में हिंसक घटनाओं में 97 लोगों की जान चली गयी और 4 लाख 85 हजार लोग विस्थापित हुए। विश्व शांति सूचकांक ने किसानों की आत्महत्याओं को अपने आँकड़ों में सम्मिलित नहीं किया है। अन्यथा हमारे सामने देश की बहुत ही भयावह तस्वीर आयेगी।

1990 में आर्थिक नीतियों के जरिये किसानों के हितों पर हमला किया गया। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और देशी–विदेशी धन्ना सेठों के हितों में नयी नीतियाँ लागू की गयी। सरकार की किसान विरोधी नीतियों के कारण पिछले 20 सालों में प्रति दिन औसतन 35 किसानों ने आत्महत्याएँ की। जीवन गुजारने का विकल्प न होने पर ही कोई इंसान आत्महत्या करता है। क्या यह हमारे शासकों द्वारा गलत नीतियों के हथियारों से की गयी हत्याएँ नहीं है?

इतना ही नहीं पिछले साल प्रतिदिन औसतन 370 लोगों ने आत्महत्याएँ की। यह बात हर जिन्दा इंसान को शर्मसार कर देने के लिए काफी है कि उसके देशवासियों ने इतनी भारी संख्या में इस देश की व्यवस्था से पीड़ित होकर अपनी जिन्दगी खत्म कर ली।

देश की यह भयावह तस्वीर अफ्रीका के गरीब देशों की स्थिति से भी घिनौनी है।

अमीरों के लिए धन दौलत और गरीबों के लिए भजन कीर्तन

न्तरराष्ट्रीय संस्था ऑक्सफेम की एक रिपोर्ट के अनुसार दुनिया के सौ सबसे अधिक अमीरों की सम्पत्ति को यदि गरीबी दूर करने में लगाया जाए तो इस धरती से चार बार गरीबी दूर की जा सकती है। दुनिया में बढ़ती असमानता पर विचार करने के लिए विश्व आर्थिक मंच (डब्लूईएफ) की सालाना बैठक बुलायी गयी थी। यह संस्था दुनिया की सबसे बड़ी कम्पनियों, संस्थाओं और सरकारों का साझा मंच है। इस बैठक में दुनिया के पूँजीपतियों के साथ भारत के मुकेश अंबानी, सुनील मित्तल, अजीम प्रेमजी जैसे 100 पूँजीपतियों सहित भारत के वणिज्यमंत्री आनंद शर्मा और योजना आयोग के उपाध्यक्ष मोंटेक सिंह आहलुवालिया ने भी भाग लिया। मंच ने ऑक्सफेम रिपोर्ट के मुद्दे पर चर्चा की और इस बात पर सहमति जतायी कि दुनिया में अमीरों और गरीबों के बीच असमानता तेजी से बढ़ रही है। लेकिन इस असमानता को दूर करने में सहयोग करने के मुद्दे पर मंच के लगभग सभी सदस्यों ने अपनी असहमति जतायी। भारत की ओर से बोलते हुए विप्रो अध्यक्ष अजीम प्रेम जी ने कहा "हमें अपनी सम्पत्ति का पुनर्वितरण मंजूर नहीं है। गरीबों के बारे में सोचकर हम अपने मंच का समय बर्बाद कर रहे हैं।" स्पष्ट है कि उद्योग जगत गरीबी दूर करने के लिए एक पाई भी खर्च नहीं करना चाहता है।

प्रेमजी का समर्थन करते हुए मोंटेक सिंह आहलुवालिया ने कहा कि ''आप लोग चिन्ता न करें, गरीबी दूर करने का काम सरकार का होता है। हम अपने देश की गरीबी दूर करने का संकल्प लेते हैं।'' वायदे के मुताबिक शीध्र ही उन्होंने योजना बनायी और उस पर सरकारी मोहर लगाते हुए कहा कि आज से शहरों में 28 रुपये 65 पैसे और गाँव में 22 रुपये 42 पैसे खर्च करने वाले परिवार गरीब नहीं हैं। आँकड़ों की इस बाजीगरी ने जैसे चमत्कार कर दिखाया। लगभग तीस–बत्तीस करोड़ गरीब रातों–रात अमीर हो गये। कॉरपोरेट जगत खुद को खुश होने से रोक नहीं पाया। भारत सरकार को विश्व महाशक्तियों के बधाई संदेश आने लगे। जिसमें उन्होंने लिखा कि धन्य हैं आप लोग और धन्य है वह देश

जिसे मोंटेक जैसा योजनाओं का चतुर खिलाड़ी मिला। मोंटेक की बांछे खिल गयी और खुशी के मारे उसने कहा कि अगर देश की जनता इसी तरह चुपचाप हमारी योजनाओं को बर्दाश्त करती रही तो जल्दी ही हम भारत से गरीबी मिटा देंगे। यह दीगर बात है कि केवल आँकड़ों में।

लेकिन अफसोस प्रगतिशील बुद्धिजीवियों को देश की यह कागजी उन्नति रास नहीं आयी। उन्होंने कहा कि महँगाई आसमान छू रही है, ऐसे में कोई गरीब कैसे 28 और 22 रुपये में तीनों पहर भरपेट खाना खा सकता है? 5 रुपये में अब तो एक चाय भी नहीं मिलती। यह कहकर उन्होंने सरकार को कोसना शुरू कर दिया।

महँगाई का नाम सुनते ही रिजर्व बैंक के गर्वनर ने सरकार के विरोधियों को नसीहत देते हुए कहा कि शर्म करो, पहले गाँव में जाकर देखो वहाँ किसान और मजदूर अब प्रोटीन युक्त खाना खाने लगे हैं। उनके खाने में दूध, दही, पनीर, दाल, सब्जी, फल, अण्डा, मीट, ड्राई फूड और फास्ट फूड की मात्राा बढ़ती जा रही है। क्या आप लोग नहीं चाहते गरीब लोग अच्छा खाना खायें?

अभिनेता से नेता बने बम्बई के एक छुटभैये नेता ने पेट भरने के सवाल पर कहा कि देश की तरक्की से चिढ़ने वालों मुबई में 12 रुपये में भर पेट खाना मिलता है। इस बहती गंगा में हाथ धोने से सत्ता पार्टियों के नेता भी पीछे नहीं रहे उन्होंने दावा किया कि दिल्ली में पाँच रुपये में भोजन की थाली मिलती है जिससे बड़ी खुराक वाले आदमी का भी पेट भर जाता है। इसे खाकर पूरे दिन दिल्ली में घूमा जा सकता है।

ऐसे माहौल में नौजवान कश्मीरी नेता खुद को रोक नहीं पाया और बोला कि जो लोग हमारे बुजुर्गों की तकरीर में जुर्रत करने की हिमाकत कर रहे हैं वे कश्मीर आयें और देखें कि यहाँ दो रुपये में अमन–चैन के साथ इतना भोजन मिलता है जिसे खाने के बाद आदमी डकार भी न ले।

पक्ष–विपक्ष के इस वाद–विवाद ने गरीबों को उलझन में डाल दिया कि वे कहाँ जाएँ? मुंबई, दिल्ली या कश्मीर। तभी विदेशों से पढ़कर आये देश की गद्दी के उत्तराधिकारी ने कहा कि गरीबों के खाने की समस्या का पैसे या भौतिक चीजों की कमी से कोई लेना–देना नहीं होता क्योंकि भौतिक संसार तो नश्वर है। हमें उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। गरीबी सिर्फ एक मानसिक अवस्था है। उन्होंने बताया कि गरीबों को अन्तरमन से यह सोचना चाहिए कि वे गरीब नहीं हैं और उन्हें ईश्वर का भजन करना चाहिए। इससे उनका पेट भर जायेगा और उनकी गरीबी दूर हो जायेगी। इससे अलग कुछ करने की जरूरत नहीं है। यह एक ऐसा नुस्खा है जिससे गरीबी भी खत्म हो जायेगी और दुनिया के 100 अमीरों की सम्पत्ति भी गरीबों में बाँटने की जरूरत नहीं पड़ेगी।

खाद्य सुरक्षा बिल – एक ढकोसला

माम अड़चनों के बाबजूद भारतीय संसद में पारंपरिक तरीके से नियम कानून बनाने की एक और ऐतिहासिक घटना घटी। 26 अगस्त 2013 को लोकसभा में बहुमत के साथ खाद्य सुरक्षा विधेयक को पास कर दिया गया। दावा किया गया है कि यह विधेयक देश की 82 करोड़ जनता को सस्ता अनाज मुहैया करायेगा। भूख से लड़ने के मामले में यह दुनिया का

सोनेट- दंगा

pyh gS fl;klr dh dSlh gok]
ftèkj nsf[k, tgj gh tgj gS]
;s yxrk gS gks tk,xk yk&nck]
fl;klr us cjik;k tks dgj gS]
u;k jkst fQRuk mBk;k x;k]
Qlknksa dh vkaèkh pykbZ xb±]
ygw vkneh;r dk dks;k x;k]
fl;klr dh Qlysa mxkbZ xb±]
u fgUnw ejs u eqlyeka ejs]
Qdr bUlka ekjs x, gSa lHkh]
tks fganw eqlyeku ftank jgs]
ugha cans gksxh yMkbZ dHkh]
fl;klr dks rqe ;kjks le>ksxs dc]
fd gks tk,xk thuk nq'okj rcA
&jke izdk'k vuar

समाचार-विचार

भिवंडी के बुनकरों की दास्तान

–समीम शेख

¼fHkoaMh ds cqudjksa dh n'kk dks c;ku djrk lehe 'ks[k dk ;g vkRekuqHkko gesa izkIr gqvk gqvk gSA blch Hkk"kk vux<+ gh lgh ysfdu fHkoaMh ds cqudjksa dh n'kk dks cgqr gh dkjhdh esa izLrqr djrh gSA&l-½

tc ftys dh vkcknh dh ckr vkrh gS rks ns'k esa egkjk"Vª esa lcls cM+h tula[;k ds ekeys esa Bk.ks ftys dk uke vkrk gS] dy&dkj[kkus lc ls vfèkd blh ftys esa gSaA blh Bk.ks 'kgj ls 15 fdyks ehVj ds Qklys ij fHkoaMh gS] dY;k.k 'kgj Hkh blls brus gh Qklys ij gS] ;g Hkh Bk.ks ftys esa vkrk gSA ns'k ds gj fgLls ls yksx ;gk¡ vkdj esgur etnwjh djrs gSaA eSa Hkh fHkoaMh esa jgrk gw¡] ockyr ds lkFk gh ikWoj ywe èkaèks ls lEcaèk j[krk gw¡A 25 lky ls bl èkaèks ls vPNh rjg tqM+k gw¡] esjk [kqn dk dkj[kkuk gS] ftlesa dkjhxj diM+k cqukbZ djrs gSaA ns'k esa Ñf"k ds ckn lcls vfèkd jkstxkj nsus okyk ;gh VsDlVkbYl dk èkaèkk gSA

fHkoaMh ls dPpk diM+k cu dj ns'k ds nwljs 'kgjksa tSls lwjr] vgenkckn] fnYyh] iatkc dydÙkk] gSnjkckn dkuiqj vkfn txgksa ij tkrk gS ogk¡ mldh èkqykbZ&jaxkbZ gksrh gS] fQj og ekdZsV esa fcdrk gSA dkWVu dh feyksa cand gksus ds ckn ;g dke fHkoaMh esa cM+s iSekus ij 'kq: gqvkA vkt fHkoaMh esa 25 yk[k ls vfèkd ikWoj ywel gksaxs] dkWVu ds bnZ fxnZ Hkh nwljh txgksa esa diM+s curs gSaA ysfdu fHkoaMh ns'k dk lcls cM+k diM+k mRiknu dsanz gSA

fHkoaMh dk etnwj ftls ;gk¡ dkjhxj dgrs gSa] gj gIrs dHkh fnu dh ikyh esa M~;wVh djrk gS rks vxys gIrs jkr dh ikyh esaA 12&12 ?kaVs dh M~;wVh gksrh gS] dHkh&dHkh rks dkjhxjksa dks 12 ?kaVs ls Hkh vfèkd dke djuk iM+rk gSA tc dksbZ dkjhxj M~;wVh ij ugha vkrk rks dkj[kkus dk ekfyd vU; dkjhxjksa dks dgrk gS fd 4&6 ?kaVk vkSj ywe pyk yks] ftlds pyrs vDlj ;s dkjhxj chekj iM+ tkrs gSaA eysfj;k dh chekjh rks vke rkSj ls QSyh gqbZ gS] vxj eysfj;k ds bykt esa FkksM+k nsj gks tk; rks fQj lef>, fd 2&4 gtkj #i;s bykt esa x;sA fQj Xywdkst dk ikuh p<+kuk rks vke ckr gSA bu dkjhxjksa ds chp esa Vhch dh chekjh Hkh cgqr vfèkd gS] fHkoaMh esa ,d ljdkjh vLirky gS¼bafnjk xk¡;èkh gkWfLiVy½ tgk¡ dkjhxjksa ds fy, dksbZ fo'ks"k lqfoèkk ugha gS] chekjh esa tks nok vkSj tk¡p iM+rky gksrh gh mldk iSlk dkjhxj dks gh [kpZ djuk iM+rk gS] tks dkjhxj ifjokj ls gSa] os >ksiM+iV~Vh;ksa esa jgrs gSaA ogk¡ Hkh xanxh vkSj iznwf"kr ikuh ls vDlj muds cPps vkSj os [kqn Hkh chekj gks tkrs gSa] cgqr vfèkd ijs'kkfu;k¡ gSa bu dkjhxjksa ds lkeus] ysfdu fQj Hkh ftanxh rks xqtkjuh gh gSA

ljdkj gj ekeys esa ns[k&Hkky djus esa ukdke gSA fdrus gh dkj[kkus rks ,sls gSa tgk¡ ihus dk ikuh Hkh ugha gksrkA xehZ ds fnuksa esa gj ?kaVs nks ?kaVs ckn dkjhxj dks fdlh gksVy esa ikuh ihus ds fy, tkuk iM+rk gS vkSj tc og ogk¡ tk,xk rks pk; fi;sxk] iku&chM+h ysxk rks 10&15 #i;s mlds ,sls gh pys tk,¡xsA fHkoaMh esa fdlh Hkh dkj[kkus esa vke rkSj ls laMkl dk dksbZ barstke ugha gS] vc laMkl yxx;h rks mldks E;wfufliSfyVh }kjk cuk;s x;s laMkl esa tkuk gksxk] ogk¡ de ls de 1 #i;k nsuk iM+rk gSA bl rjg ns[kk tk, rks fHkoaMh E;wfufliSfyVh gks ;k jkT; ljdkj] gj Lrj ij dkjhxjksa ds lkFk uk&balkQh gksrh gSA 66 lkyksa ls vkt rd ns'k bl yk;d ugha gks lok dh esgurd'k turk ,d balku dh rjg ftanxh th ldsA okns vkSj fookl dh ckrsa rks ges'kk usrk yksx djrs jgs] ysfdu ftu yksxksa dh esgur ij ns'k dh vFkZO;oLFkk fVdh gS] og vkt Hkh ekjs tk jgs gSaA mudk csrgk'kk 'kks"k.k gks jgk gSA vkf[kj dc mUgsa U;k; feysxk\ dc vke etnwj dh ftanxh esa [kq'kgkyh vk;sxh\

fHkoaMh ikWoj ywe ?kj [kkrs ds fglkc ls gS] cM+s&cM+s m|ksxifr;ksa ds ,M~okUl ywEl Hkh yxs gSa] os Hkh VSDl dk Qk;nk mBkrs gSa] QSDVjh ,sDV ;k nwljs dkuwu blfy, ugha ykxw gSa D;ksafd igys vfèkdrj yksx 12&24 ywEl okys Fks] vc os èkhjs&èkhjs [kRe gksrs tk jgs gSa] [kqn dkj[kkus okys bruk etcwj gks tkrs gSa fd mudks viuk dkj[kkuk cspuk iM+rk gSA fHkoaMh esa vfèkdrj ¼yxHkx 80 izfr'kr½ dkj[kkus okys tkWc odZ djrs gSaA xqtjkr vkSj jktLFkku ds O;kikfj;ksa ls èkkxk] dPpk eky ysdj] vius dkj[kkus esa pyok dj mUgas etnwjh ds fglkc ls cuk dj ns nsrs gSaA cgqr ls yksx nwljksa dk dkj[kkuk Bsds ij ;k dkaVªsDV ij ys dj pykrs gSa] mudh gkyr cgqr [kjkc jgrh gS] FkksM+k Hkh eanh vk;h dh os cspkjs ckZn gks tkrs gSaA HkkM+k rks mUgas nsuk gh jgrk gSA

bl rjg fHkoaMh esa ywe pykus okyksa dh dbZ Js.kh gSaA ;kuZ ekdZsV ij ftldk dCtk gS ogh lc ls cM+k O;kikjh gS] ;k tks diM+k [kjhn dj ys tkrk gS og cM+k O;kikjh gS] dkWVu ds diM+s fnYyh esa Hkkjh ek=k esa tkrs gSa] ftudh fnYyh ds vkl&ikl èkqykbZ&jaxkbZ gksrh gS] oSls rks lwjr cgqr cM+h ekdZsV gS bl ekeys esaA

nwljh rjQ fctyh fcy c<+k fn;k x;k gS] bl eghus dk fcy fiNys eghus ls Mcy gSA etnwjh yxkrkj ?kV jgh gSA fHkoaMh esa 80 izfr'kr dkj[kkukas esa tkWc odZ gksrk gSA ;g ,d rjg dh etnwjh gh gSA tks ekfyd gSa mudh fLFkfr Hkh etnwj tSlh gh gS] dkj[kkuk rks mudk gS] ysfdu os izfr ehVj dh nj ls diM+s dh etnwjh ikrs gSaA vxj ,d ehVj diM+k ikWoj ywe ij curk gS rks mldh etnwjh 4&5 #i;s gksrh gS] ftlesa ls gj gkyr esa ,d frgkbZ dkjhxj dh etnwjh gksrh gS] dkch iSls esa fctyh fcy] fQDl etnwj tSls tkWcj&eqdne] tks ywe dks curk gS] ywe fcxM+us ij mls lgh djrk gS] dkaMh e'khu pykus okyk] dkj[kkus esa >kM+w yxkus okyk] ysFk e'khu okyk] fey LVksj] dk;j &eSu] <ksVk cukus okyk] QUuh vkSj feL=kh tks ydM+s dk dke djrk gS] MªkWi fiu okyk] dne Hkjus okyk] nwljs vkSj Hkh cgqr lh phtksa ij [kpZ vkrs gSaA ?kj iêh] ikuh iêh eqfulhikfyVh dk VSDl vkfn nsus ds ckn dkj[kkus okys ds ikl uke ek=k dk iSlk cprk gS] mlh ls mldks vius ifjokj dk Hkj.k iks"k.k djuk iM+rk gSA NksVs dkj[kkus okys rks èkhjs&èkhjs igys gh lekIr gks x;s] vc 20 ls 40 ywe okys Hkh lekfIr dh rjQ c<+ jgs gSaA uqdlku mBkrs&mBkrs yksx dc rd bl èkaèks esa fVds jgsaxs\ ,d fnu rks mudks Hkh etnwj vkSj dkjhxj cudj nwljksa ds dkj[kkus esa ywe pykuk iM+sxkA

ljdkj flQZ vkWVksesfVd ywEl ds fy, enn dh ckr djrh gS] tks cgqr eg¡xs gksrs gSa] mlds fy, tks t:jh 'krZ gS og vke cqudj tqVk ugha ikrk] blfy, mudks dksbZ Hkh enn ljdkj dh rjQ ls ugha feyrh] vkt ljdkj vkSj mldh enn mUgha yksxksa ds lkFk gS tks cM+h iw¡th okys gSa] tks cSad ls nykyh nsdj dtZ gkfly dj ldrs gSaA m|ksx esa tks dki&nkrk ls tqM+s Fks os rks VwVrs x;s vkSj vkt etnwjh dj jgs gSaA

diM+k cukus okys dkj[kkus gSa] dkj[kkus ds ekfyd us iw¡th yxk dj mRiknu ds lkèku [kM+s dj fn,] vc ml dkj[kkus esa diM+k curk gS dkjhxj] lsB flQZ ns[kHkky esa jgrk gS] ;s cM+s dkj[kkus ds lsB dh ckr gS] NksVs dkj[kkus esa ekfyd dks Hkh etnwj ;k dkjhxj ds lkFk dke ij yxuk gksxk] rc tkdj os vius ifjokj dk [kpZ fudky ldrk gSA 12 ?kaVk ywe pykrk gS dkjhxj vkSj diM+k rS;kj djrk gSA vxj vkids ikl 40 ywe gSa] rks dkj[kkus ds ekfyd dks etnwj ls vfèkd iSlk feysxkA blesa Hkh rks rjg ds yksx gSa] ,d rks dkj[kkus ds lkFk [kqn ;kuZ [kjhn dj diM+k rS;kj djrs gSa] ysfdu tks NksVs dkj[kkus okys gSa] os vfèkdrj tkWc odZ djrs gSa] dPpk eky nwljs dk] etnwjh ;k dkWfe'ku ij diM+k cuk dj VªsMj dks nsrs gSaA ysfdu lc ls vfèkd [kwu ilhuk etnwj cgkrk gS] mldh esgur ls gh dkj[kkus ds ekfyd dks Qk;nk gksrk gSA eSa [kqn bl m|ksx esa gw¡] dkj[kkus ds ekfyd dh gSfl;r ls] ysfdu esjs ls vfèkd esgur dkjhxj dh jgrh gS] esjk iSlk yxk gS] ysfdu vly esgur dkjhxj dh gS tks 12 ?kaVk gfIrs esa dHkh jkr M~;wVh dHkh fnu MîwVh djrk gSA mldh esgur ls gh dkj[kkus dk ekfyd vkSj VªsMj rksuksa th jgs gSaA vfèkd iSlk rks VªsMlZ dks gh feyrk gS] ?kkVs esa vDlj dkj[kkus okys jgrs gSa] deh'ku nsdj diM+k cuokus okyk tc rd ykHk gS rc rd diM+k cuok;sxk uqdlku ns[kk rks nqdku lesV ysxkA vfèkdrj ;s yksx dkj[kkuk ugha cukrs] flQZ èkaèks ds [ksy esa ekdZsV ls iSlk dekrs gSa] ekdZsV esa Hkh ijr nj ijr èkaèks dh Jsf.k;k¡ gSa] ;kuZ okys] diM+k [kjhnus okys] diM+k èkqyus vkSj mldks fizaV djus okys] eryc VsDlVkbYl esa dikl mxkus okys fdlku ls ysdj nqdkuksa esa diM+k cspus okys rd vkSj fQj xkjesaV dh QSDVjh yxk dj flys gq, diM+s cukus okys rd lc VsDlVkbYl ls tqM+s gq, gSaA ;s t:j gS dh dikl dh Qly iSnk djus okys fdlku gSa] mudk eky Hkh lgdkjh Lrj ij ljdkj }kjk ;k ehyksa }kjk [kjhnk tkrk gS tks ;kuZ cukrh gSA Ñf"k ds ckn lcls vfèkd jkstxkj nsus okyk ns'k dk ;gh VsDlVkbYl gSA vkt fctyh fcy Mcy gks tkus ls fHkoaMh ds yksx ijs'kku gSA gks ldrk gS gM+rky Hkh gks tk, vkSj dkj[kkus can gks tk,¡ ,slh ppkZ gS vkSj ,slk gksuk r; gSA

सबसे बड़ा कार्यक्रम होगा। वैसे खुद योजना आयोग के मुताबिक इस तरह की सार्वजनिक वितरण प्रणाली में मौजूदा भ्रष्टाचार के चलते पचास फीसदी से अधिक रियायती खाद्यान्न की काला बाजारी हो जाती है।

~~अगर देश की वस्तुगत परिस्थितियों को देखें तो जिस 67 फीसदी जनता के लिए यह खाद्य सुरक्षा बिल पास हो रहा~~

है, सिर्फ खाद्यान्न के मामले में ही नहीं, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, रहन–सहन और सम्मानजनक जिंदगी जीने के अवसर, रोजगार आदि के मामले में भी असुरक्षित हैं। देश भर में अनाज, दाल, फल, दूध जैसी खाद्यान वस्तुएँ पैदा करने वाले ही आज खाने के लिए मुहताज हैं और जो लोग इस तरह के उत्पादन से कोई सम्बन्ध नहीं रखते वे महफूज हैं। दुनिया भर के लिए खाद्यान्न पैदा करने वालों को इस परिस्थिति में पहुँचाने के लिए आखिर कौन जिम्मेवार है? मेहनतकश की खून पसीने की कमाई का असली मजा कौन लूट रहा है?

निश्चित तौर पर देश के मेहनतकश वर्ग को हर तरह से असुरक्षा के घेरे में खड़ा करने के लिए शासक वर्ग की जनविरोधी नीतियाँ ही जिम्मेदार हैं।

एक अध्ययन के अनुसार केवल 8250 परिवार देश की 75 फीसदी सम्पदा पर अधिकार जमाये बैठे हैं। इस असमान आर्थिक विकास की वजह कोई दैवीय शक्ति नहीं,बल्कि शासकों द्वारा बहुतायत जनता की अनदेखी कर, पूँजीपतियों के हित में बनायी गयी नीतियाँ हैं जिसकी वजह से देश भर में अन्न और दूसरे तरह के उत्पादन में लगे मजदूर खाद्यान्न के मामले में असुरक्षित हैं। और जिनके लिए आज सरकारें खाद्य सुरक्षा बिल पारित करके वाहवाही लूटने और वोट बैंक बढ़ाने में लगी हैं। विपक्ष भी निराश है कि यूपीए अकेले ही बिल पास करने का श्रेय लेने की फिराक में है। खुद खाद्य सुरक्षा बिल कितना असुरक्षित और अन्यायपूर्ण है इसका विवरण देश–विदेश पत्रिका के अंक–10 और अंक–16 में बहुत स्पष्ट ढंग से बताया गया है।

जो लोग आज खाद्य असुरक्षा के घेरे में हैं, वे गरीब किसान खेतिहर मजदूर, ठेके पर काम करने वाले, निजी व्यवसायियों के यहाँ काम करने वाले, शहरों में ठेले वाले से लेकर रिक्शा चालक तक सभी मेहनतकश लोग हैं। एक पंक्ति में अगर कहें तो सभी शारीरिक श्रम करने वाले लोग, जो की आज हाशिये पर धकेल दिये गये हैं। इन्हें खुद की पैदा की गयी सम्पत्ति में से उतना ही मिलता है कि जैसे–तैसे गुजर–वसर करके नये मजदूर पैदा कर सकें। महँगे खाद्यान्न, स्कूलों की बढ़ती फीस, निजी अस्पतालों के खर्चे का बोझ झेलने में तो ये पहले से ही असमर्थ हैं। वह भी जब जबकि यह सभी सुविधाएँ इन्हीं मेहनतकश के दम पर खड़ी की गयीं हैं। शासक वर्ग की नीतियों के चलते यही मेहनतकश लोग आज इन सभी मूलभूत सुविधाओं से अलग कर दिये गये हैं। हर तरह से उन्हें असुरक्षा के घेरे में लाकर खड़ा कर दिया गया है। इसलिए जब तक आवास, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की वास्तविक सुविधा, सम्मानजनक रोजगार जैसी सहूलियतें नहीं होंगी, तब तक खाद्य सुरक्षा खतरे में बनी रहेगी और देश का मेहनतकश वर्ग सस्ते अनाज बेचने के बाद पैरासिटामोल की गोली खरीदकर काम ढूँढ़ने जाता रहेगा।

खाद्य सुरक्षा बिल पास होते ही, मंदी की मार से बौखलाए पूँजीपतियों की चिंता भी बढ़ गयी है।

यूँ तो शासक वर्ग ने बहुतायत जनता के हित में नीतियाँ बनाने से पल्ला झाड़ ही लिया है, लेकिन बढ़ती भुखमरी और कुपोषण से दुनिया के स्तर पर हो रही थू–थू से बचने के लिए और वोट बैंक को बचाए रखने के लिए शासक वर्ग को कुछ नीतियों पर हस्ताक्षर करने ही पड़े। खाद्य सुरक्षा बिल के कार्यक्रम को लागू करने में 1.3 लाख करोड़ रुपये खर्च होने का अनुमान है। इसी के साथ यह दुनिया भर में भूख से लड़े जाने वाला सबसे बड़ा कार्यक्रम बन गया है। इस बिल के पास होते ही सनकी परजीवी वर्ग(पूँजीपति और शेयर धारक) बौखला उठे। उसे लगा जैसे जनता की गाढ़ी कमाई काएक हिस्सा अब इस विधेयक के लिए खर्च होगा और उसके लिए दी जाने वाली टैक्स में छूट, प्रोत्साहन राशि तथा मंदी से बचाव राशि में कहीं कोई कमी न आ जाये। देश के प्रमुख औद्योगिक संगठन एसोचौम, सीआईआई और केपीएम ~~जैसे संस्थानों ने घोषणाकर दी कि खाद्य सुरक्षा से सरकारी~~ और इससे राजकोषीय घाटा बढ़ जायेगा। वास्तव में यह ~~खजाने पर हजारों करोड़ रुपये का अतिरिक्त बोझ पड़ेगा~~ चिंता दर्शाती है कि खाद्य सुरक्षा बिल के लिए आवंटित बजट कहीं पूँजीपतियों को दी जाने वाली छूट में कटौती न बन जाये। राजकोषीय घाटे की चिंता में व्याकुल इस गिरोह का अनुकरण करने वाले निवेशकों ने शेयर भुनाना शुरू कर दिया। जिससे रातों–रात आयी रुपये में गिरावट से 1.7 लाख करोड़ का नुकसान हुआ। यह नुकसान सालभर में खाद्य सुरक्षा बिल पर होने वाले खर्च 1.3 लाख करोड़ से कहीं ज्यादा है। शेयर बाजार में खेलने वाले और बड़े–बड़े संस्थागत निवेशक सार्वजानिक खर्चे में कटौती के पक्षधर होते हैं। विश्व बैंक से भी दिन–रात यही दिशा निर्देश मिलते है। यह गिरोह इस सनक का शिकार है कि किसी भी तरह का सार्वजनिक खर्चा पूँजी के लिए दु:ख दायी होता है। 1990 में विश्व बैंक की थोपी गयी नीतियों के चलते डॉलर पहले से ही अनियंत्रित था। अगस्त 2013 को खाद्य सुरक्षा बिल जैसे सार्वजनिक खर्चे की

बात सुनते ही वह और ज्यादा अनियंत्रित हो गया और रातों–रात अरबों डॉलर डकार गया।

दुनिया के चर्चित अर्थशास्त्रियों की टीम, भारत की बहुतायत जनता को बुनियादी चीजें उपलब्ध कराने में असफल रही है। विश्व बैंक की नीतियों के सामने घुटने टेक कर भारत सरकार ने पूँजी संचय प्रक्रिया को गति प्रदान की है। जिससे अमीरी–गरीबी की खाई लगातार बढ़ रही है।

बेतहाशा गरीबी, भुखमरी, कुपोषण तथा बेरोजगारी इसके गवाह हैं। अब तो पूँजीपतियों और शेयर धारकों पर कड़ा शिकंजा कश कर ही स्थिति को काबू में किया जासकता है। लेकिन मुनाफे के इन भेड़ियों को अपना आका मानने वाली सरकारों से ऐसी उम्मीद करना मासूमियत है। यह तभी सम्भव है जब देश का मेहनतकश वर्ग और जनपक्षधर बुद्धिजीवी देशी–विदेशी पूँजी और सटोरियों को नेस्तनाबूत करने के लिए एकजुट होकर प्रयास करें। तभी मेहनतकश वर्ग को उनका असली हक मिल सकता है। जिसके वे सहस्त्राब्दियों से अधिकारी हैं।

खाद्य सुरक्षा बिल–अलग नजरिये से

ाद्य सुरक्षा बिल संसद में पास हो गया है। सरकार ने दावा किया कि इससे सार्वजनिक वितरण प्रणाली के जरिये देश की 67 प्रतिशत गरीब आबादी के प्रत्येक व्यक्ति को प्रति माह 5 किलो अनाज सस्ते दामों पर मिलेगा। खाद्य सुरक्षा बिल गरीV के लिए लाभकारी सिद्ध होगा और आधार कार्ड से भ्रष्टाचार का खतरा नहीं रहेगा क्योंकि हमारे देश की ज्यादातर आबादी भुखमरी और गरीबी की शिकार है और ज्यादातर बच्चे कुपोषण के शिकार हैं।

सरकार इन नीतियों के जरिये आधार कार्ड से भ्रष्टाचार खत्म करने का दावा कर रहे हैं। इस बिल के बारे में सरकारी मंसूबे को जानने के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली को किस तरह तहस–नहस किया गया इस पर नजर डालनी चाहिए। इसका दुस्प्रभाव जनता पर साफ दिखायी देता है।

वर्ष 2006 में सरकार ने किसानों से गेहूँ कम खरीदा और सस्ते दामों में गोदामों में पहले से पड़ा अनाज बेच दिया। इससे सरकारी गोदामों में अनाज की कमी हो गयी और उसका बुरा असर वितरण प्रणाली पर पड़ा। गरीबों को सस्ता अनाज देने में कटौती की गयी। इससे सरकार का जनविरोधी चेहरा उजागर होता है। इसका फायदा निजी व्यापारियों को मिला। उन्होंने अनाजों के दाम बढ़ाकर लोगों को जमकर लूटा। कांग्रेस ने इस बिल को चुनावी हथकंड़ा बना लिया है। उन्हें किसानों की गरीबी तभी नजर आयी जब चुनाव शुरू होने वाला है।

2009 में उन्होंने किसानों की ऋण माफी का चुनावी ढकोसला किया था। जिससे इन्होंने वर्ष 2009 के चुनाव में बाजी मार ली। कितनी बड़ी विडम्बना है कि सरकार लोगों को रोजगार, शिक्षा और चिकित्सा की सुविधा देने के बजाये खैरात बाँटने का ढोंग कर रही है और जनता को परमुखापेक्षी बनने की सीख दे रही है। जबकि देश की स्थिति यह है कि विश्व के आधे भूखे लोगों यानि 38 करोड़ भूखी जनता भारत में रहती है।

क्या इस बिल से गरीबों के जीवन की मूलभूत आवश्यकतायों को पूरा किया जा सकेगा। इससे प्रत्येक व्यक्ति को 5 किलो अनाज प्रति माह मिलेगा। एक आदमी एक महीने में 13 से 14 किलो भोजन ग्रहण करता है और क्या उसे खाने में दाल, चीनी, दूध, सब्जी और फल नहीं चाहिए। इससे स्पष्ट है कि सरकार की यह योजना आम आदमी की आवश्यकता से कम ही है। वह गरीबों को जिन्दा रखो और उन्हें गरीब बनाये रखो की नीति का पालन कर रही है। अगर खाद्य पदार्थों की शुद्धता और पौष्टिकता की बात करें तो महाराष्ट्र के मानवाधिकार आयोग ने राशन की दुकानों पर बँटवाने वाले गेहूँ के 265 नमूनों की जाँच करवायी। जिसमें 229 नमूने इंसानों के खाने के लायक नहीं थे। आयोग का कहना है कि जो गेहूँ जानवरों के खाने के लायक नहीं है, उन्हें देश की जनता को खिलाया जा रहा है।

कुछ सालों पहले जब अमरीका से आयातित आनाज गुणवक्ता के मानक पर खरा नहीं उतरा। तो सरकार ने अमरीकी व्यापारियों से सांठ –गांठ करके गेहूँ को श्रीलंका से पीसकर भारत आयात किया। जिससे सच्चाई का पता न

चले। इसमें हम अंदाजा लगा सकते हैं कि सरकार हमारे लिए कितना शुद्ध खाद्य पदार्थ उपलब्ध कराती है। राजनीतिक कुचक्र के द्वारा चुनावी हथियार के रूप में खाद्य सुरक्षा बिल का इस्तेमाल सरकार की नीयत को जग जाहिर करती है।

माँ के दूध का व्यवसाय

बर है कि बड़े शहरों में दूध बैंकों कि स्थापना की गयी है, जहाँ झुग्गी–झोपड़ियों में रहने वाली गरीबों की आबादी सबसे अधिक है। जिस तरह ब्लड बैंक के लिए गरीब लोग अपना खून बेचते हैं उसी तरह गरीब महिलाएँ अपने दुध मुँह बच्चों के मुँह से दूध छीनकर इन दूध बैंकों में बेचती हैं। अमीरों के बच्चों को पिलाने के साथ–साथ इस दूध से आईसक्रीम बनाकर अकूत मुनाफा कमाया जा रहा है।

भारत सरकार और यूनिसेफ मिलकर अगस्त के पहले सप्ताह को स्तनपान सप्ताह के रूप में मनाते हैं। वे बताते हैं कि जन्म के पहले घंटे बाद ही शिशु को माँ का गाढ़ा–पीला दूध अवश्य पिलाना चाहिए। क्योंकि यही दूध प्रतिरोध क्षमता बढाकर बच्चों को भविष्य में होने वाली अनेक बिमारियों से बचाता है।

इसके साथ ही माँ के दूध का भावनात्मक और सामाजिक पहलू भी बेहद सशक्त रहा है। कहानियों में कितने ही अवसरों पर अत्याचारी के विनाश के लिए माँ अपने बेटों को दूध की सौगंध दिलाती है। इतिहास में राजाओं के घर धाय रखने की परम्परा के प्रमाण भी मिलते हैं। धाय उनके बच्चों को अपनी छाती से लगाकर दूध पिलाती थी। इस मामले में पन्ना धाय की कहानी बहुत प्रसिद्ध है।

लेकिन आज पूँजीवादी मुनाफाखोर समाज ने माँ के दूध को खरीदने–बेचने की वस्तु में बदल दिया है। इसलिए माँ के दूध के बजाय इसे स्त्री का दूध बताया जा रहा है।

आधुनिक तकनीकों के चलते ब्लड बैंकों की तरह दूध बैंक बनाये जा रहे हैं। लेकिन सिक्के का दूसरा पहलू यह है कि हमारे देश में एक हजार में छियालीस नवजात शिशु माँ का दूध न मिलने के कारण मर जाते हैं। ये दूध बैंक भी गरीबों को दूध नहीं देते।

आम घरों की महिलाएँ बच्चों को अपना दूध पिलाती हैं। परन्तु उच्च वर्ग की महिलाएँ अपने शारीरिक सौन्दर्य को बरकरार रखने के लिए दूध नहीं पिलाती। वे मानती है कि बच्चों को दूध पिलाने से उनके शरीर और चेहरे की आभा फीकी पड़ जायेगी। उनके पति भी ऐसा मानते हैं। इन्हीं के लिए माँ के दूध का व्यवसाय शुरू हुआ।

सबसे पहले 1889 में स्वीडेन और डेनमार्क में दूध रसोई के नाम से इस काम की शुरुआत की गयी। यहाँ पहले तीन महीने का दूध माँ से इक्कीस डॉलर प्रति लीटर की दर से खरीदा जाता था। अमरीका में आज ऐसे आठ दूध बैंक संचालित हैं। इसी तर्ज पर भारत के कोलकाता, मुंबई, पुणे और सूरत में दूध बैंक बनाये गये और अभी–अभी उदयपुर में एक बैंक शुरू किया गया है।

अजीब बात है कि विकास की सभी योजनाओं को गरीबों की कीमत पर ही अमली जामा पहनाया जाता है। आर्थिक लाभ के लिए मानवीय संवेदनाओं को कुचल दिया गया। जैसे देश के सभी ब्लड बैंक गरीबों और मजबूरों के खून से भरे हुए हैं। कुछ आपवादों को छोड़ दें तो ये ब्लड बैंक धन्ना सेठों, नेताओं और मध्यम वर्ग के लोगों की ही जान बचाने के काम आता है। गरीबों के लिए इनके रास्ते बंद रहते हैं।

इस तरह हमें दूध बैंक की योजना के मानवीय पहलूओं पर भी गौर करनी चाहिए। क्या किसी लावारिस बच्चे या जिस माँ के स्तनों में दूध नहीं आता उन्हें कभी इन बैंकों से दूध मिल पाता है? माँ जब बच्चे को छाती से चिपकाकर दूध पिलाती है, वह सिर्फ उसकी भूख ही नहीं मिटाती बल्कि संवेदनात्मक अनुभुतिओं का अहसास और आदान–प्रदान करती है। यही ममता का सुख है। यह अहसास मरते दम तक बना रहता है और हमें प्रेरणा देता है। बैंक के दूध को बोतल या चम्मच से पिलाकर कभी भी यह अहसास पैदा नहीं किया जा सकता।

विचारणीय प्रश्न है क्या इन दूध बैंकों में अमीर घरानों की माँओं का दूध है। नहीं, बल्कि उन करोड़ों गरीब माँओं का जिनके अंदर इतना दूध ही नहीं बनता जिसे वे बेच सकें लेकिन बेबस माँएँ पैसे के लिए अपने बच्चों को भूखा रखकर दूध बैंक को अपना दूध बेचती है। कुपोषण के चलते ऐसे बच्चे असमय ही काल के गाल में समा जाते हैं या अपंग हो जाते हैं।

पूँजीवादी विकास की इन योजनाओं के अंदर अमानवीय मुनाफे की घृणित नीतियाँ छिपी हुई हैं। इसलिए दूध बैंकों के पैरोकार गरीबों के बच्चों की कीमत पर अमीरों के बच्चों को

माँ का दूध पिलाने का षड़यंत्रा रच रहे हैं। देश की सम्पदा लूटने के बाद भी इन मुनाफाखोरों की हवस शांत नहीं हुई। अब माँओं का दूध लूटकर अपने हित व मुनाफे के लिए उसका इस्तेमाल कर रहे हैं। जिस तरह समुद्र मंथन के समय देवताओं ने छल–प्रपंच से अमृत छक लिया और बाकी को इससे वंचित कर दिया। आज उससे भी भयावह जाल में फंसाकर कथित सभ्य समाज के अमीरों ने गरीबों से माँ का दूध भी छीनने की योजना बना ली है।

इस अमानवीय, घृणित, और निंदनीय व्यवसाय पर यदि शीघ्र रोक न लगाई गयी तो आने वाले भविष्य में माँ की ममता और गरिमा नष्ट हो जाएगी।

देश में हर साल 18 लाख लोग होते हैं पुलिस अत्याचार का शिकार

युक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत में हर दिन 43 लोग पुलिस हिरासत में मर जाते हैं।

दस साल के अंतराल, 2001 से 2010, के दौरान हुई घटनाओं का अध्ययन करते हुए इस रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि भारत में हर साल 18 लाख लोग पुलिस अत्याचार का शिकार होते हैं। यह अध्ययन मानवाधिकार संगठनों और भारत के सार्वभौमिक नियतकालीन समीक्षा (यूनिवर्सल पीरियोडिक रिव्यू) के गठबंधन से अस्तित्व में आये मानवाधिकार कार्यदल द्वारा किया गया।

भारत में पिछले दिनों पुलिस हिरासत में हुई कुछ अमानवीय घटनाओं ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लोगों का ध्यान अपनी तरफ खींचा। दंतेवाड़ा इलाके के एक सरकारी स्कूल में पढ़ाने वाली आदिवासी शिक्षिका सोनी सोरी को पुलिस ने माओवादियों से सहानुभूति रखने के इल्जाम में गिरफ्तार कर लिया। सोरी पर इल्जाम लगाया गया कि उन्होंने माओवादियों की तरफ से एस्सार ग्रुप पर 15 लाख रुपये देने का दबाव डाला था।

यह इल्जाम अभी तक साबित नहीं किया जा सका है। परन्तु उन पर पुलिस हिरासत में बेहिसाब जुल्म ढाये गये। उनके लिखे पत्रा के अनुसार, "8 और 9 अक्टूबर, 2011 को पुलिस वाले मुझे दंतेवाड़ा पुलिस स्टेशन की जेल की कोठरी से निकालकर पुलिस महानिदेशक अंकित गर्ग के कमरे में ले गये, जहाँ तीन आदमियों ने मुझे निर्वस्त्रा कर दिया। मुझे बिजली के झटके दिये गये और मेरे गुप्तांगों में पत्थर ठूँस दिये गये।" इन अमानवीय अत्याचारों से वह बेहोश हो गयी। उच्चतम न्यायालय के आदेश पर की गयी एक स्वतंत्रा चिकित्सा जाँच में, एनआरएस मेडिकल कॉलेज, कलकत्ता के डॉक्टरों ने इस बात की पुष्टि की कि उनकी योनि और गुदा में पत्थर पाये गये।

परन्तु मेडिकल रिपोर्ट में इस अमानवीय अत्याचार की पुष्टि होने के बावजूद, कुछ महीने बाद, अंकित गर्ग को वीरता के लिये पुलिस पदक से नवाजा गया जो सरकारी पक्ष का हाल बयान करने के लिये पर्याप्त है। दरअसल देश भर में कहीं भी उठने वाली विरोध की आवाजों को कुचलने के लिये यंत्राणा देने का इस्तेमाल किया जाता है। रिपोर्ट के अनुसार, विशेष तौर पर अधिकृत इलाकों में, जैसे उत्तर–पूर्व और कश्मीर में, अक्सर इस तरह के अमानवीय अत्याचार किये जाते हैं।

ऐसा करते हुए भारत सरकार, 1987 में 20 देशों के अनुमोदन से अस्तित्व में आये यंत्राणा समझौता की भावना से खिलवाड़ करती है जिसे उस वक्त 20 देशों के समर्थन से मंजूर किया गया था। दरअसल भारत सरकार ने यंत्राणा के खिलाफ संयुक्त राष्ट्र के समझौते को देश में लागू करवाने के मकसद से अपने यहाँ कोई कानून नहीं बनाया है।

कुछ साल पहले यंत्राणा निरोधक कानून (प्रिवेंशन ऑफ टॉर्चर बिल) को लोकसभा में पेश किया गया था। यह विधेयक लोकसभा में पास भी हो गया था, पर इसमें इतनी खामियाँ थी कि मानवाधिकार कार्यकर्ताओं के भारी विरोध के बाद इसे वापस ले लिया गया। नये विधेयक का मसौदा तैयार तो किया गया पर उसे फिर दुबारा संसद में पेश नहीं किया गया है और वह ससंद के किसी अंधियारे कोने में पड़ा धूल फाँक रहा है।

सीरिया पर हमला टालने का बहाना

न दिनों अमरीका अपने अंदरूनी कर्ज संकट से निकलने के लिए हाथ पाँव मार रहा था और अपने लाखों संघीय कर्मचारियों को छुट्टी पर भेज दिया था। उसी के समानान्तर

वह सीरिया पर हमले का मंसूबा बाँध रहा था। हमले के लिए वही पुराना बहाना गढ़ा गया था– व्यापक नरसंहार के हथियार। लेकिन जब संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद से लेकर अपने नाटो सहयोगियों और अपने ही देश में संसद से सड़क तक विरोध को देखते हुए जब हमले का मंसूबा पूरा होते नहीं दिखा तो रासायनिक हथियारों की निगरानी का बहाना कर के पीछे हट गया।

इस लेख के लिखे जान तक (18 अक्टूबर) तक सीरिया में रासायनिक हथियारों के जखीरे की जाँच करने वाली नोबेल पुरस्कार से नवाजी गयी संस्था ओपीसीडब्ल्यू (रासायनिक हथियार निशेध संगठन) ने सीरिया के तथाकथित रासायनिक हथियारों की जाँच का आधा से अधिक काम पूरा कर दिया। जाहिर है कि अमरीकी हमले का कोई आधार नहीं है।

सीरिया, फ्राँस का उपनिवेश था। दूसरे महायुद्ध के बाद उससे मुक्त होने के साथ ही उस पर अमरीकी साम्राज्यवाद का काला साया मँडराने लगा। उसने अमरीका द्वारा इजराइल को मान्यता देने और अरब जगत पर नवऔपनिवेशिक वर्चस्व कायम करने का मुखर विरोध किया। उसने अपने देश से अमरीकी तेल कम्पनी का पाइप जाने की इजाजत नहीं दी। अमरीका ने सीआईए की मदद से तख्तापलट करवाया और सीरिया के पहले प्रधानमंत्री शुक्री–अल–कवैतली को सत्ताच्युत किया। इस तख्ता पलट को अंजाम देने वाले सेना के जनरल हुस्ती अल जैन की साल भर के भीतर ही हत्या करवायी गयी। उसके 5 साल बाद बाथ पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी की मिली–जुली सरकार बनी और शुक्री–अल–कवैतली प्रधानमंत्री चुने गये। यह सरकार मिस्र के राष्ट्रपति नासिर से प्रेरणा ग्रहण करती थी तथा गुट निरपेक्ष और अरब राष्ट्रवाद की समर्थक थी। इसने साम्राज्यवादी वर्चस्व का कदम–कदम पर विरोध किया। जिसके चलते अमरीका ने सीरिया पर हमला करने, वहाँ के प्रमुख नेताओं की हत्या करवाने, विद्रोही ताकतों को हथियारबंद करके गृहयुद्ध भड़काने और तख्तापलट करवाने के लिए लगातार षड़यंत्रा किये। यह और बात है कि तत्कालीन विश्व परिस्थितियों में उसके मंसूबे पूरे नहीं हुए।

सीरिया की स्वतंत्रा विदेश नीति और घरेलू आर्थिक नीति साम्राज्यवादी विश्व की चौधराहट करने वाली अमरीका को फूटी आँखों नहीं सुहाता। वह इजराइल के खिलाफ फिलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष का समर्थन करता है। लीबिया पर साम्राज्यवादी हमले का, विरोधी शक्तियों का समर्थन करता है। इरान के साथ बेहतर सम्बन्ध बनाये रखता है, लेबनान में प्रतिरोधरत हिज्बुल्ला के साथ सहयोग करता है। जाहिर है कि ये सभी कारवाइयाँ अमरीका के वैश्विक मंसूबे के खिलाफ हैं। विद्रोहियों को हथियार और धन देकर सीरिया में अशान्ति फैलाने और

रासायनिक हथियारों का बहाना बना कर उस पर हमला करने के पीछे असली कारण सीरिया को साम्राज्यवादी प्रमुख स्वीकारने के लिए बाध्य करना ही है। अमरीका ने सीरिया पर कब्जा करने के लिए बहाना बनाया था कि असद सरकार ने अपने ही देश के विद्रोही गुटों पर रासायनिक हथियारों का प्रयोग किया, जिसमें 300 नागरिक मारे गये। विद्रोह के इलाके जबात–अल–नुसरा के नियंत्राण में है जिसका सम्बन्ध अलकायदा से है। यह कहना मुश्किल है कि सीरिया में रासायनिक हमले का इस्तेमाल हुआ भी है या नहीं और हुआ तो किसकी तरफ से। लेकिन अमरीका तो उसी भेड़िये की तरह है जो मेमने के पानी गंदा करने का आरोप लगातर उसे खा जाता है।

Ψअन्ततः रूस, चीन, ब्रिटेन, फ्राँस, जी–20, यूरोपीय यूनियन और यहाँ तक कि अमरीकी जनता ने भी सीरिया पर हमले का विरोध किया। तब अमरीका को रूसी हस्तक्षेप से रासायनिक हथियार निषेध संगठन के जरिये रासायनिक हथियारों को नष्ट किये जाने की शर्त पर हमला टालना पड़ा। इस शर्त को सीरिया ने तुरन्त स्वीकार कर लिया।

अमरीका ने युद्ध टाला जरूर है लेकिन जब तक सीरिया उसके आगे घुटने नहीं टेकता वह शान्ति से नहीं बैठेगा। साम्राज्यवादी दौर में विश्व शान्ति सम्भव नहीं है। युद्ध और खूनखराबे का अन्त तो साम्राज्यवाद के अंत के साथ ही सम्भव हो पायेगा।

सीरिया यु(के खिलाफ

वेनेजुएला के राष्ट्रपति निकोलस मदुरो का बयान

हम वेनेजुएला के लोग सीरियाई जनता के ऊपर साम्राज्यवादी सैनिक हमले की योजना के खिलाफ दुनिया भर की जनता के साथ अपनी आवाज मिलाते हैं।

''यह उस अरब जनता पर कब्जा करने और उन्हें तबाह करने का युद्ध है जो उस इलाके की स्थिरता का एक ऐतिहासिक गढ़ और परकोटा है।

''इस अरब देश पर हमला करने और कब्जा जमाने के लिए अमरीका और नाटो के दूसरे देशों ने ही सीरिया के भीतर आतंकवादी गिरोहों को हथियारबंद किया है।

''ईराक, लीबिया और फिलिस्तीन की अरब जनता के खिलाफ तबाही के कुकृत्यों की कीमत किसने चुकायी?

दुनिया के विवेक का जागना और इस युद्ध को रोकना जरूरी है।

''दुनिया कि जनता पर अपना कब्जा जमाने के लिये साम्राज्यवादी युद्धों की अब हद हो चुकी है। अपने संकट से उबरने के लिए पूँजीवाद हमेशा से युद्ध थोपता आ रहा है।''

(यह बयान उस समय दिया गया था जब अमरीका सीरिया में बमबारी करने पर आमादा था। उसने रासायनिक हथियारों का बहाना बनाया था जिसके बारे में कई अन्तरराष्ट्रीय पर्यवेक्षकों का मानना था कि ये आरोप बेबुनियाद हैं। जब संयुक्त राष्ट्र संघ की संस्थाएँ और यहाँ तक कि उसके नाटो समर्थक देश भी हमले के खिलाफ हो गये तो झक मारकर उसने हमले का अपना इरादा बदल दिया। पीछे खिसकने का बहाना उसने यह बनाया कि सीरिया अपने रासायनिक हथियारों के जखीरे को अन्तरराष्ट्रीय पर्यवेक्षकों की निगरानी में दे दे।

मदुरो का यह बयान विश्व जनगण की युद्ध विरोधी सामुहिक भावना का इजहार करता है।

मदुरो ने साबित कर दिया कि वह ह्यूगो शावेज, फिदेल कास्त्रो, जोस मार्ती और बोलिवार का सच्चा वारिस हैं।)

ठग विद्या पढ़ाने वालों को नोबेल पुरस्कार

र्थव्यवस्था का नोबेल पुरस्कार वित्तीय पूँजी के बाप, यूजीन एफ फेमा (शिकागो विश्वविद्यालय), उसके फूफा, राबर्ट जे शिलर (येल विश्वविद्यालय) और मौसा, लार्स पीटर हसन (शिकागो विश्वविद्यालय) को दिया जाना खुलेआम धोखाधड़ी है। इनके शोध शेयर बाजार में इण्डेक्स फण्ड की कीमतों का पूर्वानुमान से सम्बन्धित हैं। इनका कहना है कि शेयर बाजार की कीमतों का छोटी अवधि में अनुमान लगाना भले ही कठिन हो, लेकिन लम्बी अवधि में इसका अनुमान लगाया जा सकता है। याद कीजिये कि अब से कुछ साल पहले, 1997 में अमरीका के दो सटोरिये अर्थशास्त्रियों, निरोन एस स्कोल्स और रॉबर्ट सी मर्टन को 'डेरीवेटिव्स के मूल्य निर्धारण की विधि' पर शोध के लिए नोबेल पुरस्कार दिया गया था। उन्होंने अपने सिद्धान्त को अमली जामा पहनाने के लिए 'लाँग टर्म कैपिटल मेनेजमेंट' नामक एक हेज फण्ड कम्पनी बनायी थी। शेयर बाजार में पैसा लगाने के लिए इस कम्पनी में निवेश करने वालों के अरबों डॉलर सट्टेबाजी में डुबा दिये थे, क्योंकि 1998 में, नोबेल पुरस्कार मिलने के साल भर के भीतर ही यह कम्पनी दिवालिया हो गयी थी। अब एक बार फिर शेयर बाजार के जुआरिओं को जीतवाने की सम्भावना तलाशने, यानी शेयर बाजार की कीमतों के चढ़ने–उतरने का पूर्वानुमान करने वाले फर्जी अर्थशास्त्रियों को पुरस्कृत किया गया है।

आज जब पूरी दुनिया में आर्थिक संकट के बादल छँटने का नाम नहीं ले रहे हैं, तब इसके समाधान पर सोचने विचारने वाले अर्थशास्त्रियों को प्रोत्साहित करने की तो बात ही क्या, उल्टे इस संकट के लिए जो कारक जिम्मेदार रहे हैं, उन्हें ही बढ़ावा देने वालों को पुरस्कृत किया जा रहा है। यह वर्तमान नवउदारवादी पूँजीवादी (साम्राज्यवादी) व्यवस्था के कर्ताधर्ताओं के दिवालियेपन का नमूना है। जो परोपजीवी वित्तीय पूँजी, यानी सटोरिया पूँजी पर निर्भर है।

आज पूरी दुनिया में वित्तीय पूँजी यानी सटोरिया पूँजी के मालिकों का बोलबाला है। शेयर बाजार की यह पूँजी पूरी तरह से परजीवी है, जो कोई भौतिक उत्पादन या मूल्य योगदान किये बिना ही अकूत मुनाफा बटोरती है और बार–बार आर्थिक तबाही का कारण बनती है।

जॉन मिर्याड कीन्स ने कहा था कि वास्तविक उत्पादन की मुख्य धारा के ऊपर सटोरिया पूँजी के कुछ बुलबुले तो ज्यादा नुकसान नहीं करते, लेकिन अगर सट्टेबाजी ही मुख्य धारा बन जाये और उत्पादन उस पर तैरने वाला बुलबुला, तो समझिये बात बिगड़ गयी है।

आज पूरी दुनिया की अर्थव्यवस्थाओं की यही हालत है और अर्थशास्त्रीगण इसी को सही ठहराने के लिए शोधरत हैं। ये सभी ठग दुनिया भर के सट्टेबाजों की सेवा में लगे हुए हैं। बदले में वे इनको महिमाण्डित और पुरस्कृत कर रहे हैं।

ब्रैडली मैनिंग का पत्र

राष्ट्रपति ओबामा के नाम

ने 2010 में जो निर्णय लिया था, वह अपने देश के प्रति और जिस दुनिया में हम जी रहे हैं उसके प्रति गहरे लगाव का परिणाम था। 11 सितम्बर की त्रासद घटना के समय से ही हमारा देश युद्धरत है। हम ऐसे दुश्मन से युद्ध करते आ [illegible] हैं जो किसी परम्परागत युद्धक्षेत्रा में हमारा मुकाबला नहीं करना चाहता और इसी के चलते हमें अपने ऊपर और अपनी जीवन शैली के ऊपर थोपे गये जोखिम का सामना करने का अपना तौर–तरीका बदलना पड़ा।

शुरू–शुरू में मैं इस तौर–तरीके से सहमत था और मैंने अपने देश की हिफाजत में मदद करने के लिए अपनी सेवा अर्पित करने का रास्ता चुना। लेकिन यह उससे पहले की बात है जब मैं ईराक में था और रोज–ब–रोज गोपनीय सैनिक रिपोर्टों को पढ़ता था। तब हम जो कर रहे थे उसकी नैतिकता पर मैंने सवाल उठाना शुरू किया। यही वह समय था जब मुझे यह अहसास हुआ कि दुश्मन द्वारा थोपे गये जोखिम का मुकाबला करने के अपने प्रयासों में हम अपनी मानवता को भूल चुके हैं। हमने सचेतन रूप से ईराक और अफगानिस्तान, दोनों ही जगह मानव जीवन की गरिमा को कम करने का रास्ता चुना। हमने उन लोगों का सामना करते हुए जिन्हें हमने दुश्मन मान लिया था, कभी–कभी निर्दोष लोगों को मार डाला। जब भी हमने निर्दोष नागरिकों की हत्या की, हमने अपने बर्ताव की जिम्मेदारी लेने की जगह किसी भी सार्वजनिक जिम्मेदारी से बचने के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा और वर्गीकृत सूचना के नकाब में खुद को छुपाने का रास्ता अपनाया।

दुश्मन को कत्ल करने के जोश में हमने यातना और उत्पीड़न की परिभाषा पर अंदरखाने बहस की। हमने लोगों को ग्वाटेमाला में कई वर्षों तक बिना उचित प्रक्रिया अपनाए बंदी बनाकर रखा। इराकी सरकार द्वारा किये जाने वाले उत्पीड़न और मृत्युदंड से हमने आँख मूँद ली, जो समझ से परे है और आतंक के खिलाफ अपने युद्ध के नाम पर हमने ऐसी बेशुमार कार्रवाइयों को चुपचाप पचा लिया।

अक्सर जब सत्ताधारियों द्वारा अपनी नैतिक रूप से गलत कारगुजारियों को सही ठहराना होता है, तब देशभक्ति की चीख पुकार मचायी जाती है। जब तार्किकता पर आधारित किसी विरोध को देशभक्ति की इन चीखों में डुबो देना होता है, तो अमूमन अमरीकी सैनिक ही हैं जिन्हें किसी दुर्भावनापूर्ण मुहीम को पूरा करने का आदेश दिया जाता है।

हमारे राष्ट्र के सामने भी लोकतंत्रा के सद्गुण के लिए ऐसे ही अंधकारपूर्ण समय आये हैं, जिनमें से कुछ एक हैं– अश्रुधारा त्रासदी (जिसमें अमरीकी सरकार ने दक्षिणपूर्व राज्यों के लाखों अमरीकी मूल निवासियों को अपनी जमीन से जबरन उजाड़ कर उनकी जमीनें कपास उगाने वाले वाले फार्मरों को दी थी और उन्हें मिसिसिपी नदी के किनारे एक बाड़े में बसा दिया था), ड्रेड स्कॉट निर्णय (अमरीकी गृहयुद्ध–1861–65 के दौरान अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अमरीकी गुलाम ड्रेड स्कॉट के मामले में दिया गया कुख्यात फैसला जिसमें कहा गया था कि किसी भी अफ्रीकी–अमरीकी को यह अधिकार नहीं है कि वह न्यायालय में आकर न्याय के लिये गुहार लगाये), मैकार्थिज्म (मैकार्थी की नीतियों के अनुसार ऐसे हजारों लोगों को, जिन पर कम्युनिस्ट या उनके समर्थक होने का संदेह था, बिना किसी प्रमाण के गैरकानूनी रूप से शारीरिक–मानसिक उत्पीड़न का शिकार बनाया गया), जापानी–अमरीकी नजरबंदी शिविर (दूसरे महायुद्ध के अंतिम दिनों में पर्ल हार्बर पर हमले के बाद एक लाख से भी अधिक जापानी मूल के अमरीकी नागरिकों को नजरबंदी शिविर में रखा गया था)। मुझे पूरा विश्वास है कि 9 सितम्बर के बाद से कई कार्रवाइयों को किसी न किसी दिन इसी रोशनी में देखा जाएगा।

जैसा कि स्वर्गीय हॉवर्ड जिन ने एक बार कहा था– "कोई भी झंडा इतना बड़ा नहीं होता, जो निर्दोष जनता की हत्या के शर्म को ढकने के लिए पर्याप्त हो।"

मैं समझता हूँ कि मेरी कार्रवाई से कानून का उल्लंघन हुआ है और अगर मेरी कार्रवाई से किसी को ठेस पहुँची या अमरीका का नुकसान हुआ, तो इसके लिए मुझे खेद है। मै केवल जनता की सहायता करना चाहता था। जब मैंने वर्गीकृत सूचना को प्रकट करने का निर्णय लिया तो मैंने अपने देश के प्रति प्यार और दूसरों के प्रति कर्तव्य की भावना से ही किया।

अगर आप ने हमारी क्षमा याचना को स्वीकार नहीं किया, तो मैं यह मान कर अपनी सजा भुगत लूँगा कि एक मुक्त समाज में जीने के लिए कभी–कभी आपको उसकी भारी कीमत चुकानी पड़ती है। मै खुशी–खुशी वह कीमत चुकाऊँगा, अगर इसका मतलब यही है कि हमें एक ऐसा देश चाहिए जिसने आजादी को सही मायने में आत्मसात किया हो और इस प्रस्तावना के प्रति समर्पित है कि हर औरत और मर्द एक

सामान हैं।

अमरीकी जासूसी का स्नोडेन ने किया पर्दाफाश

हाल ही में अमरीका द्वारा पिछले 6 वर्षों से निरंतर की जा रही पूरे विश्व की जासूसी का पर्दाफाश हुआ है। ‘ग्लोबल हीट मैप संस्था’ के अनुसार ‘राष्ट्रीय सुरक्षा एजेंसी’ (एनएसए) ने केवल मार्च 2013 में कंप्यूटर नेटवर्क (माइक्रोसॉफ्ट, गूगल, फेसबुक, याहू आदि कार्यक्रमों) के माध्यम से पूरे विश्व की 97 अरब जानकारी गुप्त रूप से हासिल की। जिसमें ईरान और भारत की जानकारी क्रमशः प्रथम और पाँचवे स्थान पर है।

इन खुलासों में डेनियल अल्स्बर्ग ने पेंटागन दस्तावेजों को सार्वजनिक किया और उसके बाद ब्रैड्ली मैनिंग ने विकिलीक्स को अमरीका के राजनयिक दस्तावेजों की जानकारी हासिल करवायी। इस कड़ी में एड्वर्ड स्नोडन द्वारा किये गये खुलासे सर्वाधिक चर्चित हैं। केन्द्रीय खुफिया संस्था (सीआईए) के पूर्व कम्प्यूटर इंजीनियर, 29 वर्षीय एड्वर्ड स्नोडन, पिछले कुछ समय से अमरीका की राष्ट्रीय सुरक्षा संस्था (एनएसए) की एक ठेकेदार संस्था ‘बूज एलेन हॅमिल्टन’ मे कार्यस्थ थे। जून 2013 में हाँगकाँग स्थित एक होटल में स्नोडन ने लन्दन के एक समाचार पत्रा गार्जियन को एनएसए से सम्बंधित अत्यधिक गोपनीय दस्तावेज उपलब्ध कराये। गार्जियन ने इन सूचनाओं को एक श्रृंखला के रूप में सार्वजनिक किया। जिसमें अमरीका और यूरोप के जासूसी कार्यक्रम इंटरसेप्ट, प्रिज्म और टेम्पोरा से जुड़ी जानकारियाँ शामिल थी। इससे साफ पता चलता है कि अमरीकी संस्था एनएसए ने कुछ वर्षों में गूगल, एपल, फेसबुक, याहू जैसी शीर्ष इंटरनेट कम्पनियों पर अपना नियंत्राण कायम किया है और इन कम्पनियों का इस्तेमाल करके प्रिज्म जैसे कार्यक्रमों के द्वारा दुनिया भर के उपभोक्ताओं की गुप्त जानकारीयाँ हासिल की।

अपने साक्षात्कर के दौरान स्नोडन ने बताया कि उसकी नौकरी ने उसे अमरीकी गुप्तचरों और ‘सीआईए’ के विदेशी मुख्यालयों जैसी अत्यधिक गोपनीय जानकारियों से अवगत कराया। लेकिन जब उसे यह एहसास हुआ कि वह एक ऐसी संस्था का हिस्सा है जो मानव–हित की जगह मानवता के विनाश को बढ़ावा दे रही है, तो उसने अमरीकी संस्थाओं के खुफिया दस्तावेजों को सार्वजनिक करने का फैसला लिया और इसी के अंतर्गत वह हाँगकाँग आया। स्नोडन ने बताया कि अमरीका एनएसए और सीआईए जैसी संस्थाओं के जरिये इंटरनेट और दूरसंचार विभाग के माध्यम से पूरे विश्व की गुप्त जानकारी हासिल कर रहा है। इन गुप्त जानकारियों में विभिन्न देशों के नेताओं और राजनयिकों के निजी जिंदगी के आपराधिक रिकॉर्ड भी शामिल हैं ताकि वह मौका पड़ने पर उनकी बाहें मरोड़ सके और उनसे मनचाहे समझौते पर हस्ताक्षर करवा सके। इसके अलावा किसी देश के रक्षा सम्बन्धी दस्तावेज हासिल कर उसके खिलाफ कार्रवाई की रणनीति बनाना भी इसका एक हिस्सा है। इन हथकंडों से वह दुनिया पर प्रभुत्व स्थापित करने का सपना देख रहा है।

इसके साथ ही स्नोडन ने अमरीका द्वारा इराक, अफ्गानिस्तान, लीबिया और सीरिया में सैन्य हस्तक्षेप के पीछे छिपी उसकी मंसा का भी भंडाफोड़ किया और यह बताया कि अमरीका कितनी चालाकी से यह सब विश्व शांति स्थापना की आड़ में करता है। सन् 2003 में इराक के खिलाफ युद्ध प्रशिक्षण के दौरान मिले अनुभवों से उसने बताया कि अमरीकी सैनिकों को अरब के लोगों की मदद करने की जगह उन्हें मारने के लिये प्रशिक्षण दिया जाता है। यह अमरीका के साम्राज्यवादी मंसूबो को दर्शाता है जो वह इन देशों में लोकतंत्रा बहाली के नाम पर कर रहा है। इन खुलासों से स्पष्ट है कि जासूसी करने वाली बुश की नीतियों की ओबामा ने हूबहू नकल की है। सीआईए के जरिये अमरीका दुनिया के ईमानदार नेताओं की जासूसी करने और उन्हें रिश्वत देने या उनकी हत्या करवाने का काम करता है। ऐसा संदेह है कि वेनेजुएला के सच्चे नेता ह्यूगो शावेज को इलाज के दौरान कैंसर की दवा देने का काम इसी संस्था द्वारा किया गया था जिसके कारण उनकी मृत्यु हो गयी। दूसरी और एनएसए दुनिया की सबसे गोपनीय संस्थाओ में शीर्ष पर कायम है। एक अनुमान के अनुसार इसका एक केन्द्र एक दिन में ई मेल या दूरसंचार विभाग से दुनिया की एक अरब गुप्त जानकारी हासिल करता है। इसके 20 ऐसे केन्द्र लगातार काम करते हैं।

एक अन्य घटना में अमरीका के अपराध का खुलासा करने के आरोप में मैनिंग को 35 साल की कैद की सजा दी गयी। वाह रे अमरीकी न्याय व्यवस्था!!! जबकि ईराक में युद्ध भड़काने और लाखों लोगों का कत्लेआम करने वाले अमरीकी अपराधी खुलेआम घूम रहे हैं। स्नोडन के कदम ने रातों–रात दुनिया की नजर में उन्हें नायक बना दिया। स्नोडन के खुलासे से बौखलाया अमरीका उन्हें गद्दार घोषित करके जेल की दीवारों के पीछे कैद करना चाहता है। लेकिन स्नोडन ने इस बात से इंकार किया कि वह गद्दार है और कहा कि ‘वे

1945 मे घोषित नुरेमबर्ग सिद्धांत को मानते है। इस सिद्धांत के अनुसार सभी व्यक्तियों का अंतरराष्ट्रीय कर्तव्य है कि वह विश्वशांति के लिये अपनी आज्ञाकारिता की राष्ट्रीय जिम्मेदारी से ऊपर उठे और विश्व शांति के खिलाफ काम करने वाली अपनी सरकार के विरोध में आवाज उठायें। इस हिसाब से कोई व्यक्ति विश्वशांति और मानवता की रक्षा के लिए अपने देश में अपराध रोकने के लिये बने घरेलू कानून का उल्लंघन कर सकता है।'

हद तो तब हो गयी जब अमरीका और इंग्लेंड ने अपने कुकर्मों को छुपाने के लिए गार्जियन समाचार पत्रा पर दबाव डाला कि वह इन खुलासों की कंप्यूटर फाईलों को नष्ट कर दे। एक नाटकीय घटना में गार्जियन ने उसे नष्ट भी कर दिया लेकिन समाचारपत्रा ने कहा कि सम्भव है स्नोडन ने अपने मित्राों के जरिये इसकी प्रतियाँ ब्राजील या अमरीका मे छिपा रखी हों। यह अमरीका और इंग्लेंड मे अभिव्यक्ति की स्वतंत्राता की असलियत को दिखाता है। अमरीका की इन्हीं साजिशों से बचने के लिए स्नोडन को भूमिगत होना पड़ा। जब उन्होंने रूस में शरण लेनी चाही तो शुरू में रूस के राष्ट्रपति पुतिन का कहना था कि ''अगर स्नोडन अमरीका को नुकसान न पहुँचाये तो उसे रूस में शरण दी जाएगी।'' इससे साफ जाहिर है कि रूस कितना अमरीका विरोधी है स्नोडेन के लिए यह एक कड़ी शर्त थी, जिसे उन्होंने ठुकरा दिया। लेकिन रूस की जनता उनसे लगाव रखती है और वे उनकी तुलना परमाणु बम के कारण अमरीका की दादागिरी को खत्म करने के लिए अपने प्राण न्योछावर करने वाले ऐथेल और रोजेनबेर्ग दम्पति और द्वितीय विश्व युद्ध में देश के लिए मर मिटे जासूसों से करते हैं। लेकिन अमरीका और यूरोप न तो मानवता और न ही किसी देश की सम्प्रभुता की कदर करते हैं क्योंकि जब बोलिविया के राष्ट्रपति इवो मोरालेस मास्को से अपने देश जा रहे थे, तो यूरोप मे उनके हवाई जहाज को उतारकर तलाशी ली गयी कि कहीं उसमें छिपकर स्नोडन न भाग रहे हों। उनके हाथ कुछ भी नहीं लगा लेकिन इससे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अमरीका की बहुत फजीहत हुई। तब इससे खार खाये अमरीका ने ऐसा करने वाले लातिन अमरीकी देशों को गम्भीर परिणाम भुगतने की चेतावनी दी। इसके विरोध में सभी लातिन अमरीकी देश एकजुट हो गये हैं और उन्होंने अमरीका को सख्त चेतावनी दी है कि वह अपनी धूर्तताओं से बाज आये।

इससे साफ जाहिर है कि दुनिया हमेशा साम्राज्यवादियों के हिसाब से नहीं चलती। अफगानिस्तान, ईराक और लेबनान में अमरीका और उसके नाटो सहयोगियों को भारी पराजय का मुँह देखना पड़ा है। आश्चर्य है कि अमरीका और उसके सहयोगी देशों द्वारा अपने सारे हथकण्डे अपनाकर भी अफगानिस्तान पर अपना आधिपत्य कायम नहीं किया जा सका। दो साल पहले अमरीका में वाल स्ट्रीट आन्दोलन ने प्रशासन को हिला दिया था। आज पूरे विश्व में अमरीका द्वारा थोपी गयीं उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों का विरोध हो रहा है। चाहे अमरीका अपने साम्राज्यवादी मंसूबों को पूरा करने के लिए कितने ही हथकंडे अपना ले पर वह इंसानियत का दमन कर कभी अपने मंसूबो में कामयाब नहीं होगा। स्नोडेन, मेनिंग, विकिलीक्स के जासूसी कारनामें और अमरीकी अन्याय के खिलाफ दुनियाभर में जनांदोलन की लहरें इसी दिशा में संकेत कर रही हैं।

कोलम्बस का पुनर्पाठ इतिहास का जनपक्ष और शासकों की बौखलाहट

धेरी गुफाओं में रहने वाला शैतान रोशनी से बहुत डरता है। वह पूरी मानवता को अँधेरे में कैद करके रखना चाहता है। रोशनी की छोटी से छोटी किरण भी उसे अपने अस्तित्व के लिए खतरा लगती है।

अमरीका ने बॉब पीटरसन द्वारा सम्पादित पुस्तक 'कोलम्बस पर पुनर्विचार' को हाल ही में प्रतिबंधित कर दिया है। यह पुस्तक अमरीकी जन इतिहासकार हावर्ड जिन द्वारा शुरू किये गये मैक्सिकन अमरीकी अध्ययन कार्यक्रम में शामिल थी। इस अध्ययन कार्यक्रम पर भी वहाँ रोक लगा दी गयी है।

'कोलम्बस पर पुनर्विचार' पुस्तक अमरीका के खोजकर्ता माने जाने वाले 'क्रिस्टोफर कोलम्बस' से जुड़ी असली सच्चाइयों को उजागर करती है और विभिन्न मुद्दों पर अमरीकी जनता के संघर्षों से जुड़ी कहानियों से परिचय कराती है।

सभी शासक अपने अनुकूल इतिहास लिखवाने की कोशिश करते हैं। अमरीका में इतिहास की पाठ्य पुस्तकों में कोलम्बस को एक महान नायक के रूप में स्थापित करने के लिए मनगढ़ंत और तथ्यहीन बातें भरी गयी हैं। साथ ही, अमरीका के मूल निवासियों और अमरीकी जनता के प्रेरणादायी

संघर्षों पर षड्‌यंत्राकारी ढंग से परदा डाल दिया गया है। पिछले तीस सालों से इतिहास पढ़ा रहे अध्यापक बिल बिजल्लो कहते हैं कि ''पिछले तीस सालों में मुझे एक भी विद्यार्थी ऐसा नहीं मिला जो अमरीका के मूल निवासियों के बारे में जानता हो जबकि वे यहाँ लाखों की संख्या में थे।'' आज 'टायन्स नस्ल के वे लोग कहाँ हैं, कोलम्बस ने उनके साथ क्या व्यवहार किया, यह किसी पाठ्‌य पुस्तक में नहीं है। विद्यार्थी यह भी नहीं जानते कि कोलम्बस यहाँ क्यों आया और उसके आने के बाद यहाँ के लाखों मूलनिवासी कैसे गायब हुए।

कोलम्बस के अमरीका आने की 500वीं सालगिरह पर पूरे अमरीका में शानदार उत्सवों का आयोजन किया गया था। इसके बारे में शिकागो ट्रिब्यून ने लिखा था कि "यह इतिहास में दर्ज उत्सवों में सबसे ज्यादा विस्मयकारी उत्सव था।" लेकिन मूल निवासियों, सामाजिक न्याय के पक्षधरों, विवेकशील शिक्षकों ने इसका पुरजोर विरोध किया था। याद कीजिए कुछ वर्ष पहले भारत में भी वास्को डि गामा को लेकर ठीक यही कहानी दुहरायी गयी थी।

'कोलम्बस पर पुनर्विचार' से जुड़े बारबरा मिनेर और मॉर्निंग स्टार इंस्टीट्‌यूट के सूजन शोन हर्जो ने अपने साक्षात्कार में कहा कि "धरती माँ के इस लाल चौथाई हिस्से में अमरीका के मूल निवासी होने के नाते हमें ऐसा कोई कारण नहीं लगता कि हम अमरीका पर कोलम्बस के उस हमले का उत्सव मनाये जिसमें हमारे इतने ज्यादा लोगों को मार दिया गया और जो आज भी हमारे विनाश का कारण बन रहा है।" कोलम्बस ने अमरीका की मात्रा खोज नहीं की, बल्कि उसे गुलाम बनाया था। उसने 'टायन्स' मूल निवासियों का अपहरण किया और उन्हें गुलाम बनाया। कोलम्बस ने लिखा कि "हमें पवित्रा परमेश्वर के नाम पर उन सभी गुलामों का भेजना जारी रखने दिया जाये जो बेचे जा सकते हैं" और अगर वे कोलम्बस द्वारा माँगे गये सोने की आपूर्ति नहीं कर पाये तो उनके हाथ काटने या उन्हें खूंखार कुत्तों के सामने फेंकने का आदेश देकर उन्हें दण्डित किया गया। कोलम्बस के साथ रहने वाले और उसके कारनामों के चश्मदीद गवाह ने लिखा कि "इसने इन्डियन लोगों की भारी तबाही की है, यहाँ एक कुत्ता 10 लोगों के बराबर है।" "कोलम्बस पर पुनर्विचार" पुस्तक इसी तरह के तथ्यों को दर्ज करके तैयार की गयी है। अमरीकी पाठ्‌य पुस्तकों में कोलम्बस से जुड़ी इस तरह की किसी भी घटना का जिक्र नहीं किया जाता। इसके विपरीत, उनमें सिखाया जाता है कि बड़े देशों द्वारा छोटे देशों को गुलाम बनाना और गोरे लोगों का दूसरे रंग के लोगों पर शासन करना उचित है।

'कोलम्बस पर पुनर्विचार' में दासता और नस्लभेद के खिलाफ संघर्ष, मजदूरों का मालिकों के खिलाफ संघर्ष, शान्ति आन्दोलन, महिलाओं की आजादी का संघर्ष जैसे अमरीकी जनता के संघर्षों से जुड़ी कहानियाँ भी हैं। इसमें एक कहानी मैक्सिको के मूल निवासी मैक्सिकन अमरीकियों से सम्बंधित भी है। मैक्सिको के खिलाफ अमरीका के युद्ध में अमरीका ने संगीनों की नोक पर मैक्सिको से आत्मसमर्पण कराया था और इस देश के लगभग आधे हिस्से को हथिया लिया था। इस सच्चाई पर भी पाठ्‌य पुस्तकें साजिशाना ढंग से चुप हैं। अगर कहीं इसका जिक्र भी आता है तो इसे सिर्फ गृहयुद्ध के रूप में दिखाया जाता है।

इस देश के निर्माण में मैक्सिकन अमरीकियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। उन्होंने यहाँ की नस्लभेदी व्यवस्था में मात्रा जिंदा रहने के खर्च पर एरिजोना की खानों से ताँबा निकाला। 1880 में टेक्सास शहर का निर्माण करने वाले और मैक्सिकन रेल–मार्ग बिछाने वाले वे ही थे। दक्षिणी प्रशांत रेल–मार्ग बिछाने के दौरान अकेले कैलिफोर्निया में 4500 मैक्सिकन मजदूर काम में लगाये गये थे।

उन्होंने रेल मार्ग बिछाये और मजदूरों के अधिकारों के लिए संघर्ष भी किया। 1903 में उन्होंने ऑक्सनार्ड और कैलीफोर्निया में जापानी खेत मजदूरों के साथ एकजुट होकर संघर्ष किया और जापानी–मैक्सिकन मजदूर संघ बनाया। रोनाल्ड तकाकी के अनुसार– "कैलीफोर्निया के इतिहास में पहली बार दो अल्पसंख्यक समूहों ने वर्गीय आधार पर एकता महसूस करके एक साथ मिलकर यूनियन का गठन किया।" इन मजदूरों ने लिखा था कि "यदि मशीनें रुक जाती हैं तो घाटी की समृद्धि भी रुक जाती है। इसी तरह मजदूरों को उचित मजदूरी नहीं दी जाती तो काम बन्द कर देना चाहिए और इस देश की जनता को उनके साथ मिलाकर कष्ट उठाना चाहिए।"

सच दूब की तरह होता है। उस पर झूठ के कितने भी बड़े पत्थर डालो, आखिर वह उसके नीचे से बाहर निकल ही आता है। अमरीकी सरकारों ने जिन सच्चाइयों को पाठ्‌य पुस्तकों से गायब करने की कोशिश की, वे दूसरे रास्तों से सामने आ गयीं। हावर्ड जिन, बोव पीटरसन, बिल बिजलो और उनके दूसरे सहयोगी अमरीकी जनता के शानदार संघर्षों की कहानियों और संत के लबादे से ढँके–छिपे शैतानों की असलियत को जनता के सामने ला दिया। वे स्कूलों, कॉलेजों में जाकर विद्यार्थियों को जन इतिहास से परिचित कराते हैं, फिल्में दिखाते हैं और अध्ययन कार्यक्रम चलाते हैं। वे लम्बे

समय से शैतान की आँख में चुभ रहे थे, इसीलिए उन्हें प्रतिबन्धित कर दिया गया।

जमींदार से ज्यादा जालिम उसका कारिन्दा होता है। इसी तर्ज पर हमारे देश के शासकों ने अमरीकी करतूतों से आगे बढ़कर इतिहास समेत मानविकी के सारे विषयों को ही दोयम दर्जे का बना दिया है। मजबूरी में ही कोई विद्यार्थी इन विषयों में दाखिला लेता है। पिछले वर्ष ही दिल्ली विश्वविद्यालय ने धर्मान्ध लोगों के दबाव में इतिहास की सहायक पाठ्य पुस्तक के रूप में '300 रामायण' पुस्तक को हटा दिया। मध्यप्रदेश की सरकार ने कई–कई बहाने गढ़कर एकलव्य की जन इतिहास की छोटी–छोटी पुस्तकों को प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम से हटा दिया और उनकी परियोजना को भी रोक दिया। प्रेमचंद और कबीर जैसे लेखकों की रचनाओं को पाठ्यक्रम से हटाकर उनकी जगह अमिताभ बच्चन और सचिन तेन्दुलकर की जीवनियों को शामिल किया गया। ऐसे उदाहरण हैं, लेकिन सवाल यह है कि शासकों की इन कार्वाईयों को हम कब तक चुपचाप सहते रहेंगे?

तुर्की में पूँजी और प्रतिरोध

—रजा नईम

र्की में तकसीम चौक पर कब्जा आन्दोलन नवउदारवादी झुकाव और आम आदमी की आकांक्षाओं के बीच के ढाँचागत अंतर्विरोध को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। 1950 और 1960 के दशक में, तुर्की के विवादपूर्ण, लेकिन महानतम आधुनिक कवि, नाजिम हिकमत ने पहले ही इसे भांप लिया था।

और उस पेंसिल से जो कार्टून बनाती है
धार्मिक ज्ञान के स्वामियों के,
विनाश करो कुरान के पन्नों को।
तुम्हें जानना चाहिये कि कैसे बनाओगे तुम खुद अपना स्वर्ग
इस काली मिट्टी पर।
हमारे बच्चों के लिये सलाह, 1928

वे लाखों मर्द और औरतें जिन्होंने गजी पार्क को सैनिक छावनी और शॉपिंग माल में बदलने की सरकारी योजना के खिलाफ प्रदर्शन करते हुए जून के पहले हफ्ते में इस्तांबुल के तकसीम चौक पर कब्जा कर लिया था, सम्भव है वे खुद अपने स्वर्ग के निर्माण के बारे में वास्तव में कुछ नहीं जानते हों। फिर भी, वे आधुनिक तुर्की के महानतम कवि नाजिम हिकमत की 'खास पवित्रा न लगने वाली' चाहतों को गुंजायमान कर रहे हैं, जिनका पचास साल पहले इसी महीने (जून), तुर्की के आम आदमी के रोजाना के संघर्षो और प्रतिरोधों से दूर बर्फीले मास्को में, निर्वासन के दौरान देहांत हो गया था, जिन्हें उसने अपने तूफानी जीवन के दौरान अपनी कविताओं के माध्यम से गौरवान्वित किया था।

आज उस आदमी के जीवन और विरासत को याद करने का काफी महत्त्व है, जो ओरहन पामुक के पश्चिमी अकादमियों में मशहूर होने से काफी पहले, बीसवीं सदी के दौरान ही अकेले अपने दम पर तुर्की और तुर्की की संस्कृति का प्रतीक बन गया था। दुनिया के दूसरे हिस्सों में मौजूद अपने कई समकालीनों पाब्लो नेरूदा, फैज अहमद फैज, गार्सिया लोर्का, निजार कब्बानी के विपरीत हिकमत ने अकेले अपने दम पर तुर्की भाषा को ऑटोमन साम्राज्य के युग की दमघोंटू परम्परा से मुक्ति दिलायी और वह उसे मार्क्सवाद–लेनिनवाद की क्रांतिकारी प्रतिबद्धता के साथ मिलाकर रोजमर्रा की बोलचाल की भाषा के दायरे में ले आये।

वह बीसवीं सदी के प्रारम्भ में एक बुर्जुआ परिवार में पैदा हुए थे, जिसके क्षीण होते ऑटोमन साम्राज्य से सम्बंध थे। जैसा कि उन्होंने अपनी एक कविता "इन द रेन ऑफ सुल्तान हमीद" में खुद ही घोषणा की है, "मेरे पिता, जो खुद एक प्रशासनिक अधिकारी के पुत्रा थे, एक वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी थे। मैंने अपना वर्ग बदल लिया और मैं कम्युनिस्ट हो गया।" संयोगवश तुर्की

izsl dk vfLrRo egt vius ekfydksa dh rkSyr c<+kus ds fy;s ugha gksrk——mlds fy;s ;g t:jh gS fd og ,d izxfr'khy jktuhfrd vkSj vkfFkZd O;oLFkk dh LFkkiuk esa enn djs tks ¼turk dks½ vkHkko vkSj xjhch ls eqDr dj ldsA

& Dkes ,uØpk

का स्वतंत्राता संग्राम (1919–23) उनकी नौजवानी को गढ़ने वाली घटनाओं में शामिल नहीं था जो कमालवाद के विध्वंस के रूप में अपनी परिणति तक पहुँचा था और जिसे बाद में एक महत्त्वपूर्ण लेख में उन्होंने श्रद्धांजलि दी थी, बल्कि नये–नये संगठित हुए सोवियत संघ को प्रत्यक्ष रूप से देखने के उनके निर्णय ने उनकी नौजवानी को गढ़ा।

उसके बाद मार्क्सवाद–लेनिनवाद के प्रति उनकी प्रतिबद्धता और तुर्की के कुलीन शासक वर्ग के विरोध ने उन्हें अपने ही देश में एक अवांछित व्यक्ति बना दिया, जिसकी वजह से उन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। परन्तु इसने उन्हें विदेशों में अंतरराष्ट्रीय स्तर की मशहूर हस्ती बना दिया। इसके बाद 1951 में वे भागकर स्थायी रूप से सोवियत संघ चले गये।

हिकमत की विषय–वस्तु का फलक बहुत ही व्यापक है तुर्की के ऑटोमन साम्राज्य के खिलाफ पंद्रहवीं सदी के ग्रामीणों के विद्रोह से लेकर तुर्की के स्वतंत्राता सग्राम के बारे में महाकाव्य तक, फासीवाद की भर्त्सना से लेकर द्वितीय विश्वयुद्ध में परमाणु बमों के इस्तेमाल के प्रभाव तक और जेल में एकांत कारावास पर शोकगीत से लेकर प्रेम के उत्सव तक। हिकमत हमेशा ही ग्रामीणों, मजदूरों, आम आदमी और शोषितों के साथ खड़े रहे और उनके साथ एकजुटता बनाये रहे। तानाशाही, युद्ध और धार्मिक रूढ़िवाद के प्रति विरोध से शुरू करते हुए, अपने महबूब देश में गणतंत्रा के सुदृढीकरण से होते हुए, वर्तमान समय तक की यात्राा के विषय में, हिकमत एक भविष्यदृष्टा थे।

पहले विश्वयुद्ध के विध्वंस के बाद तुर्की पराजित ऑटोमन साम्राज्य के उत्तराधिकारी के तौर पर उभरा और मुस्तफा कमाल अतातुर्क की तानाशाही में उसने सोवियत रूस और प्रबोधनकालीन यूरोप के कार्यकर्मों को समाविष्ट करते हुए, जानबूझकर सचेत रूप से ऑटोमन साम्राज्य के अतीत से परहेज किया। परन्तु ऐसा करते हुए, उसने एक मिथकीय राष्ट्रीय सहमति को गढ़ा जिसमें कुर्दों और अर्मेनियाई लोगों जैसी असहमत आख्यानों को जबरदस्ती और क्रूरता के साथ पचा लिया गया और वामपक्ष की तरफ से कमालवाद की विचारधारा का विरोध करने के किसी भी प्रयास को क्रूरतापूर्वक कुचल दिया गया।

इसी बीच कई सैन्य समझौतों पर दस्तखत करते हुए, पाकिस्तान और ईरान की तरह तुर्की भी सोवियत संघ और अरब राष्ट्रवाद दोनों के खिलाफ होकर अमरीका के आगे नाचने वाला एक सुन्नी राष्ट्र बन गया। 1950 और 1960 के दशक के दौरान हुए अनेकों सैन्य तख्तापलट के बाद सेना के लिये कमालवादी सत्तावाद और धर्मनिरपेक्षतावाद के ऊपर सेना की निरंकुशता स्थापित हो पायी, जिसका मुख्य उद्देश्य वामपंथ की तरफ से आने वाले उस खतरे को कुचलना था, जो मजदूर यूनियनों और कम्युनिस्ट आन्दोलन के एक धड़े द्वारा शुरू किये गये सशस्त्रा संघर्ष से मिल रहा था।

इन निर्णायक दशकों के दौरान स्वतंत्राता के उस मिथ्या बोध को समझने के लिये हिकमत का काव्य लेखन बेहद महत्त्वपूर्ण हो जाता है जिसे व्यवस्था को बनाये रखने के नाम पर शासक वर्गों ने लोगों के ऊपर थोप दिया था। उन्होंने इस भावना को अपनी 1951 की एक कविता “मनहूस आजादी” में काव्यात्मक ढंग से रचा है, जिसे उन्होंने एक आम रिहाई के दौरान जेल से छूटने के तुरंत बाद और सोवियत संघ भागने से पहले लिखा था–

तुम बेच देते हो दृ
अपनी आँखों की सतर्कता, अपने हाथों की चमक।
तुम गूंथते हो लोइयाँ जिंदगी की रोटी के लिये,
पर कभी एक टुकड़े का स्वाद भी नहीं चखते
तुम एक गुलाम हो अपनी महान आजादी में खटनेवाले।
अमीरों को और अमीर बनाने के लिये नरक भोगने की आजादी के साथ
जब तुम जन्म लेते हो तभी करने लगते हो काम और चिंता,
झूठ की पवनचक्कियाँ गाड़ दी जाती हैं तुम्हारे दिमाग में।
अपनी महान आजादी में अपने हाथों से थाम लेते हो तुम अपना माथा।
अपने अन्तःकरण की आजादी के साथ

तुम आजाद हो!

तुम्हारा सिर अलग कर दिया गया है धड़ से।
तुम्हारे हाथ झूलते है तुम्हारे दोनों बगल।
सड़कों पर भटकते हो तुम अपनी महान आजादी के साथ।
अपने बेरोजगार होने की महान आजादी के साथ
तुम आजाद हो!

तुम बेहद प्यार करते हो अपने देश को,
पर एक दिन, उदाहरण के लिए, एक ही दस्तखत में
उसे अमरीका के हवाले कर दिया जाता है
और साथ में तुम्हारी महान आजादी भी।
उसका हवाईअड्डा बनने की अपनी आजादी के साथ
तुम आजाद हो।

वालस्ट्रीट तुम्हारी गर्दन जकड़ता है
ले लेता है तुम्हें अपने कब्जे में।
एक दिन वे भेज सकते हैं तुम्हें कोरिया,
जहाँ अपनी महान आजादी के साथ तुम भर सकते हो एक कब्र।
एक गुमनाम सिपाही बनने की आजादी के साथ
तुम आजाद हो।

तुम कहते हो तुम्हें एक इंसान की तरह जीना चाहिए,
एक औजार, एक संख्या, एक साधन की तरह नहीं।
तुम्हारी महान आजादी में वे हथकडियाँ पहना देते हैं तुम्हें।
गिरफ्तार होने, जेल जाने, यहाँ तक कि
फाँसी पर झूलने की अपनी आजादी के साथ
तुम आजाद हो।

तुम्हारे जीवन में कोई लोहे का फाटक नहीं,
बाँस का टट्टर या टाट का पर्दा तक नहीं।
आजादी को चुनने की जरूरत ही क्या है भला –
तुम आजाद हो।

सितारों भारी रात के तले बड़ी मनहूस है यह आजादी।

1950 के दशक में हिकमत ने जिसे एक रोग के लक्षण की तरह देखा था वह आने वाले दशकों में तुर्की के विशिष्ट शासक वर्गों और लोगों के बीच एक स्थायी ढाँचागत अंतर्विरोध बन गया। निश्चय ही तुर्की उतना ही आजाद रह गया जितनी अमरीकी हवाईअड्डे इजाजत देते और वह अमरीकी पूँजी के लिये खुशनुमा क्रीड़ास्थल बना गया।

रिसेप ताईप एरडोगन की जस्टिस एण्ड डेवेलपमेंट पार्टी (ऐकेपी), जिसने एक दशक से ज्यादा से तुर्की की राजनीति पर अपना प्रभुत्व बनाये रखा है, उसकी जड़ें 1980 के सैन्य तख्तापलट में निहित थीं जो 1979 की ईरान की क्रांति के तुरंत बाद अमरीकी खुफिया एजेंसी (सीआईए) के समर्थन से किया गया था। जैसा कि पाकिस्तान में हुआ, इस तख्तापलट ने तुर्की के समाज के साथ क्रूरतम व्यवहार किया और समाज तथा संस्कृति के सऊदीकरण को तेज कर दिया, जिसमें वामपंथियों,

भाषा की लहरें

&f=kykspu

Hkk"kkvksa ds vxe leqnzksa dk vokgu
eSaus fd;kA eq>s ekuo&thou dh ek;k
lrk eq[Yèk djrh gS] vgks jk=k vkokgu
lqu lqudj èkk;k&èkwik] eu esa Hkj yk;k
è;ku ,d ls ,d vuks[ksA lcdqN ik;k
'kCnksa esa] ns[kk lcdqNèofu&:i gks x;kA
es?kksa us vkok'k ?ksjdj th Hkj xk;kA
eqnzk] ps"Vk] Hkko] os x] rRoky [kks x;k]
thou dh 'kS ,;k ij vkdj ej.k lks x;kA
lcdqN] lcdqN] lcdqN] lcdqN] lcdqN Hkk"kkA
Hkk"kk dh vatqyh ls ekuo ân; Vks x;k
dfo ekuo dk] txk u;k uwru vfHkyk"kkA

Hkk"kk dh ygjksa esa thou dh gypy gS]
èofu esa fØ;k Hkjh gS vkSj fØ;k esa cy gSA

मजदूरों, बुद्धिजीवियों, विद्यार्थियों और कुर्दों के संघर्ष के खिलाफ दमनकारी गतिविधियाँ तेज होती गयीं। मेरे एक दोस्त ने 2012 की गर्मियों की इस्तांबुल यात्राा के दौरान मुझे बताया था कि एक मालिक को उसने कहते हुए सुना था कि अब तक (तख्तापलट से पहले) मजदूर हँसते थे, अब हम हँसेंगे।"

एरडोगन का तुर्की

तानाशाही के अंत के बाद, तुर्गुत ओजाल के प्रशासन ने 1989 में अर्थव्यवस्था का दरवाजा नवउदारवादी नीतियों के लिये खोल दिया और कुर्दों का दमन जारी रखा। 1990 के दशक के भ्रष्टाचार और अवसरवादिता ने 2000 के आर्थिक पतन को जन्म दिया जिसने 2002 में एरडोगन को आसानी से सत्ता में ला दिया।

विडम्बना यह है कि एरडोगन जिस पर एक बार हिकमत की कविता सार्वजनिक तौर से पढ़ने की वजह से सरकारी कार्यालय में काम करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया था और जेल भेजा गया था, वह 1960 में अदनान मेंदेरेस के बाद पहला ऐसा लोकतांत्रिक ढंग से चुना हुआ नेता है, जिसने लगातार तीन बार चुनाव जीता है। ऐसा उसने तथाकथित "तुर्की मॉडल" को ओर ज्यादा मजबूत करते हुए किया, वाशिंगटन का एक वफादार क्षत्राप बनकर, हर चीज का निजीकरण और इस्लामीकरण करके, जिसके चलते तुर्की असल में नाटो का इस्लामपरस्त देश भर बन कर रह गया।

एरडोगन के तुर्की को समझने के प्रयास में मैं इस्तांबुल स्थित बोगासिजी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर कागलर कीदर, से मिलने गया जिन्होंने मुझसे एक घंटे से भी अधिक समय तक ऐकेपी के उभार और विकास पर बात की। उनके अनुसार, ऐकेपी को 2000 के आर्थिक संकट का लाभ मिला और चूँकि तुर्की के शासक वर्गों में आपस में कोई खास मतभेद नहीं था और इसलिये उन्हें शासन करने के लिये गठबंधन की जरूरत नहीं थी।

आर्थिक उपलब्धि के मामले में ऐकेपी भाग्यशाली रही, उसे लगभग 10 साल के अच्छे आर्थिक विकास का फायदा मिला। हालाँकि ऐकेपी वाशिंगटन आमसहमति के बाद से उसका एक अच्छा अनुयायी है, फिर भी उसने कृषि क्षेत्रा में अनेकों नये संस्थानों का निर्माण किया, जिससे इस्तांबुल के पूँजीपतियों के खिलाफ छोटे शहरों के पूँजीपतियों को आर्थिक सहायता हासिल हुई। उसकी सामाजिक नीति में किसानों को मिलने वाली पुरानी सब्सिडियों को खत्म करना शामिल था पर साथ ही यह भी सुनिश्चित करना था कि वे सरकार की जनवादी पहुँच के दायरे में बने रहें। अर्थव्यवस्था के पुनर्गठन का काम करते हुए ऐकेपी ने गरीबी हटाने की नीतियों का पालन किया, जैसे– बच्चों को स्कूल भेजना, अस्पतालों को स्वायत्त बनाना और उसने व्यापक स्वास्थ्य सुधार की संस्थाओं का निर्माण करके स्वास्थ्य पर होने वाले सरकारी खर्च को बढ़ाया; उदाहरण के लिये, बिना निजी बीमा करवाये ही लोग दवाइयाँ हासिल कर सकते थे। इस तरह लोगों के साथ दोहरा खेल खेलते हुए, ऐकेपी ने सामाजिक–आर्थिक जीवन कोशिकाओं में घुसपैठ कर ली और हर चीज का पूरा नियंत्राण अपने हाथों में ले लिया।

कीदर के अनुसार, इसके परिणाम स्वरूप ऐसा पूँजीवादी विकास हुआ जो व्यापक है और जो सामाजिक जीवन पर हावी हो गया था। इस तरह, जब आय का वितरण ज्यादा खराब नहीं था, तब तुर्की के नवउदारवाद ने बहुत सी सामाजिक योजनाएँ बनाते हुए ज्यादा से ज्यादा राजनीतिक नियंत्राण हासिल कर लिया और इस्तांबुल आधारित प्राचीन पूँजीपति वर्ग के विकल्प के तौर पर एक नये पूँजीपति वर्ग के विकास के काम को आगे बढ़ाया। इसके अलावा विश्वविद्यालयों की कम गुणवत्ता के बावजूद, तुलनात्मक रूप से एक सफल अर्थव्यवस्था के चलते विश्वविद्यालयों और हाईस्कूलों में उपस्थिति 10 गुणा तक बढ़ गयी।

कीदर ने इस पर भी ध्यान दिलाया कि ऐकेपी सिर्फ ग्रामीणों के समर्थन पर निर्भर नहीं है और वह चुनावों में अच्छा प्रदर्शन करने के लिये स्पष्टतः आधे से ज्यादा मतदाताओं को संतुष्ट रखती है। मेरे द्वारा एकेपी को बोनापार्टवादी बताये जाने से असहमति जताते हुए, उन्होंने कहा कि उस [illegible] सकता क्योंकि वह बाजार–आधारित जनसंख्या पर भरोसा

करता है। उसकी राय में ऐकेपी के विरोधी उन लोगों में से आते हैं जिन्हें उतना हासिल नहीं हो रहा जितना होना चाहिये, विपक्ष का तिहाई हिस्सा धर्मनिरपेक्ष है और महसूस करता है कि ऐकेपी उनकी जीवन शैली के लिये खतरा है। मैंने पूछा कि इन नीतियों के विरोध के बारे में क्या राय है? कीदर के अनुसार कुछ विरोध तो था पर वह प्रभावी नहीं था क्योंकि वह सिर्फ वैचारिक स्तर पर हो रहा था। उदाहरण के लिये स्वास्थ्य क्षेत्रा में डॉक्टर और स्वास्थ्यकर्मी इस आधार पर अपना विरोध प्रकट कर रहे थे कि स्वास्थ्य एक अधिकार है और उसे राष्ट्र के द्वारा निशुल्क प्रदान किया जाना चाहिये। परन्तु ऐकेपी ने इस क्षेत्रा में जो नतीजा हासिल किया है, वह पहले की सरकारों की तुलना में काफी बेहतर है, इसलिये कीदर के अनुसार, डॉक्टरों की माँग आदर्शवादी और अव्यावहारिक लगती है।

ऐकेपी के शासन में लोगों के जीवन में एक भौतिक प्रगति हुई और तुर्की में वामपंथी मजबूत नहीं हैं। “अव्यावहारिक वामपंथ” औद्योगिक रूप से कमजोर मजदूर वर्ग पर निर्भर रहना चाहता था और “अपरिपक्व वामपंथ” 1960 के दशक में कई गुटों में विभाजित होकर उग्रपंथी हो गया और उसने बिना किसी सामाजिक आधार के एक क्रांतिकारी रास्ता अख्तियार कर लिया। इसलिए, कीदर ने निष्कर्ष निकाला कि सेना के लिये वामपंथ से छुटकारा पाना आसान हो गया और 1980 के बाद “तुर्की में कोई वामपक्ष नहीं बचा है।”

हालाँकि, कीदर ने स्वीकार किया कि तुर्की में आज भी कुछ वामपंथी धड़े बचे हैं जो कुर्दों के आंदोलन के साथ मिलकर काम करते हैं पर वे महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। 1970 के दशक में कुछ ऐसे वामपंथी आंदोलन थे जो खुद को सामाजिक जनवादी और राष्ट्रवादी मानते थे और जो अरब समाजवाद से मिलते–जुलते थे। परन्तु वे कभी भी तुर्की के लिये यथार्थवादी विकल्प नहीं थे, क्योंकि वह अमरीकी सैन्य अड्डे वाला, अग्रिम पंक्ति का अमरीका परस्त देश था।

जहाँ तक एरडोगन की विदेश नीति का सवाल है, सीरिया के मामले में वह उस वक्त भी बेहद अव्यावहारिक व अलोकप्रिय थी जब मैंने तुर्की की यात्रा की थी। ऐकेपी यह ढोंग करती है मानो वह एक स्वायत्त देश है जो चीन और ईरान के साथ सहयोग कर रही है, परन्तु अब वह पूरी तरह से अमरीकी नीतियों का अनुसरण कर रही है। ऐकेपी के अधीन विदेश नीति शुरू से ही नाकामयाब रही है क्योंकि प्रशासन ऐसे काम करने का दावा करता है जो वह नहीं कर सकता। उन्हें अभी भी यह मिथ्याभिमान है कि वे पश्चिम के संदेशवाहक की भूमिका निभा सकते हैं, पर वे इस मामले में बुरी तरह से असफल हो चुके हैं। इसलिये उनके लिये विदेश में कोई भी एजेंडा लागू करना बेहद मुश्किल होगा। परन्तु घरेलू नीतियों के मामले में वे काफी हद तक सफल हैं। कीदर ने जो कुछ मुझे बताया वह कुछ हद तक इस तथ्य से पैदा हुआ कि एरडोगन सरकार ने अनेकों मस्जिदों के निर्माण की इजाजत देकर और हर जगह सर्वोच्च नेता की विशालकाय तस्वीरें लगाकर और साथ ही कथित रुप से उसकी लिखी एक किताब का प्रचार करके, एक विकृत व्यक्तिवादी मत को प्रोत्साहित करते हुए खुद को आक्रामक नव–उस्मानवाद के आवरण से ढक लिया है।

मैं यह भी मानता हूँ कि कीदर जो अब उनके संपर्क में नहीं हैं जिन्हें वे “अस्तित्वहीन वामपंथी” कहते हैं और इसलिये वे उनके अस्तित्व का गलत मूल्यांकन करते हैं। उदाहरण के लिये तुर्की की लेबर पार्टी, (ईएमईपी) जिसकी 1995 में स्थापना की गयी थी, जिसकी जड़ें तुर्की के 1920 के दशक के कम्युनिस्ट आन्दोलन के आरंभ में हैं और हिकमत जिसके पथप्रदर्शक थे, वह शोषित कुर्दिश आंदोलन में बेहद महत्त्वपूर्ण काम कर रही है जो आज तुर्की की राजनीति का एक सबसे महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। ईएमईपी में 30 प्रतिशत औरतें शामिल हैं और मुझे दिकिली में, जो इजमिर के निकट इहगिएन समुद्र से सटा एक रमणीय स्थान है, उनके युवा शिविर में भाग लेने का सौभाग्य हासिल हुआ था, जहाँ देश भर से आये लगभग 1,500 युवाओं ने कुर्दिश मुद्दे और महिलाओं के अधिकारों से लेकर तुर्की की राजनीतिक अर्थव्यवस्था जैसे तमाम विषयों पर बहस की। इसी बीच तुर्की की कम्युनिस्ट पार्टी (टीकेपी), जो तकसीम चौक पर होने वाले

विद्रोह में मुख्य भूमिका निभा रही है, उसने खुद को गैरकानूनी घोषित करने के ऐकेपी के प्रयासों का बहादुरी से मुकाबला किया है। यह भले ही एक छोटी पार्टी हो, पर पिछले राष्ट्रीय आम चुनावों में पार्टी को पूरे तुर्की में कुल 70,000 वोट मिले थे।

उच्च बेरोजगारी दर

इस तरह एरडोगन का तुर्की गलती पर गलती करता जाता है। जहाँ अंतरराष्ट्रीय मिडिया और वित्तीय संस्थान सिर्फ नवउदारवादी पूँजीवाद की ताकत से उत्साहित एक आज्ञाकारी इस्लामी देश के रूप में देखते हैं, वहीं उसने 93 बिलियन के कर्जे का बोझ जमा कर लिया है। एरडोगन तुर्की की औरतों से इस जरूरत पर जोर देने के आदी हैं कि वे प्रति परिवार ज्यादा बच्चे पैदा करें। वह कुर्दिस्तान को तुर्की के लिए सस्ते श्रम की अर्थव्यवस्था में तब्दील करना चाहते हैं। इसी बीच, कॉलेज स्नातकों की एक बड़ी संख्या बेरोजगार है और वे भी इस सस्ती श्रम शक्ति का हिस्सा बन जायेंगे। युवा बेरोजगारी दर 10 से 15 प्रतिशत के बीच है। साथ ही, अब देशभर में 3 करोड़ औरतें गृहणियाँ है, परन्तु उन्हें बेरोजगारों की श्रेणी से बाहर रखा गया है, इसलिये बेरोजगारी दर का सरकारी आँकड़ा भ्रामक है। वास्तविक बेरोजगारी दर 25 प्रतिशत है। खदानों और भवन–निर्माण कार्यों में मजदूरों के दुर्घटनाग्रस्त की संख्या के मामले में तुर्की यूरोप में सबसे आगे है। ऐकेपी सरकार अब नौकरी से निकाले गये कामगारों के लिये बेरोजगारी भत्ते को समाप्त करने की तैयारी कर रही है।

सत्ता और नाटो–इस्लाम के इस गठजोड़ के साथ ऐकेपी सरकार के एक दशक लंबे गुप्त सम्बंध की सबसे बड़ी उपलब्धियों में से एक है युवाओं के एक बड़े समूह का अराजनीतिक हो जाना। 1970 के दशक के सशस्त्रा संघर्ष की असफलता के बाद से तुर्की के वामपंथ ने इस तबके और ग्रामीण जनता से कोई संपर्क नहीं रखा है। ये लोग तकसीम चौक से बिल्कुल ही गैरहाजिर हैं जबकि अगर वहाँ कब्जा करने वालों के नारों को “हुकूमत इस्तीफा दे” के नारे से आगे जाना है तो यही लोग उस सफलता की कुंजी हैं।

जब एरडोगन इन ताजा विरोध–प्रदर्शनों को कुचलने की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं तो तुर्की की सेना और मीडिया (जिसे तकसीम चौक से खबरें देने की बमुश्किल ही इजाजत दी गयी है) के मगरूर विजेता और लेवांत में सऊदी–नव–ऑटोमनवाद के वास्तुकार के रूप में, उन्हें निश्चय ही यह जानना चाहिये कि उनके पूर्ववर्ती, अदनान मेंदेरेस, का क्या अंजाम हुआ था। लगातार तीन चुनाव जीतने के बाद और यहाँ तक कि तख्तापलट करने वाले भूतपूर्व जनरलों के राष्ट्रपति के साथ होने के बावजूद, उसे इसी स्तर के असंतोष का सामना करना पड़ा था। आखिरकार उसका तख्तापलट कर दिया गया और उसे अपनी जान देकर इसकी कीमत चुकानी पड़ी थी। अपने गम्भीर पलों में, उसके लिये बेहतर यही होगा कि वह युवा हिकमत की इस दूरदर्शी चेतावनी पर ध्यान दे–

सदियों से स्वर्ग के शाश्वत प्रकाश की जगह,
काली धर्मान्ध ताकतों का अन्धकार
इस धरती के निष्कलंक,
निर्मल हृदयों में घर कर गया है
सदियों से यह अँधेरी ताकत,
एक जख्म है जो रिसता है हमारी आत्माओं में,
एक रक्तपिपासु भेड़िये की तरह गुर्राता है
जब भी हमारा देश लपकता है उज्ज्वल प्रकाश की ओर।
जिस समय इस अँधेरी ताकत के शत्रुतापूर्ण हाथ
दबोच रहे होते हैं हमारी गर्दनों को,
तब भी, हम इस चोर को अर्पित करते हैं
अपने–अपने हृदय में सबसे पवित्रा स्थान।
लेकिन कृतघ्न हैं सभी श्रद्धालु
अगर वे भगवान के सामने घुटने टेक कर कृतज्ञता नहीं जताते
जब युवाओं का पवित्रा प्रकाश चुरा लेने वाले हाथों को
काट दिया जाता है किसी चोर के हाथों की तरह।

अंधेरी कट्टर ताकतें, 1921।

(रजा नदीम एक पाकिस्तानी समाज विज्ञानी, साहित्यिक आलोचक, अनुवादक और राजनीतिक कार्यकर्ता हैं। फिलहाल वे अरब वसंत के बाद के यमन के इतिहास पर काम कर रहे हैं। (फ्रंटलाइन

में प्रकाशित इस लेख को आभार सहित लेकर इसका अनुवाद दिनेश पोसवाल ने किया है।)

भाषाओं की कब्रगाह बन गया भारत''

–गणेश डेवी

छले 50 साल में भारत की करीब 20 फीसदी भाषाएँ विलुप्त हो गयी हैं। 50 साल पहले 1961 की जनगणना के बाद 1652 मातृभाषाओं का पता चला था। उसके बाद ऐसी कोई लिस्ट नहीं बनी।

उस वक्त माना गया था कि 1652 नामों में से करीब 1100 मातृभाषाएँ थीं, क्योंकि कई बार लोग गलत सूचनाएँ दे देते थे।

वडोदरा के भाषा शोध और प्रकाशन केंद्र के सर्वेक्षण के मुताबिक यह बात सामने आयी है।

1971 में केवल 108 भाषाओं की सूची ही सामने आयी थी क्योंकि सरकारी नीतियों के हिसाब से किसी भाषा को सूची में शामिल करने के लिए उसे बोलने वालों की तादाद कम से कम 10 हजार होनी चाहिए। यह भारत सरकार ने कटऑफ प्वाइंट स्वीकारा था।

इसलिए इस बार भाषाओं के बारे में निष्कर्ष निकालने के लिए हमने 1961 की सूची को आधार बनाया।

जब हमने 'पीपुल लिंगुइस्टिक सर्वे' किया तब हमें 1100 में से सिर्फ 780 भाषाएँ ही देखने को मिलीं। शायद हमसे 50–60–100 भाषाएँ रह गईं हों क्योंकि भारत एक बड़ा देश है और यहाँ 28 राज्य हैं। हमारे पास इतनी ताकत नहीं थी कि हम पूरे देश को कवर कर सकें। हमारे पास सिर्फ तीन हजार लोग ही थे और हमने चार साल तक काम किया। इस काम के लिए बहुत से लोग चाहिए थे।

हम यह मान भी लें कि हमें 850 भाषाएँ मिल गईं हैं तब भी 1100 में से 250 भाषाओं के विलुप्त होने का अनुमान है।

''दो तरह की भाषाएँ हुई लुप्त''

इसकी दो वजहें हैं और भारत में दो प्रकार की भाषाएँ लुप्त हुईं हैं।

एक तो तटीय इलाकों के लोग 'सी फार्मिंग' की तकनीक में बदलाव होने से शहरों की तरफ चले गए। उनकी भाषाएँ ज्यादा विलुप्त हुईं। दूसरे जो अवर्गीकृत श्रेणी है, बंजारा समुदाय के लोग, जिन्हें एक समय अपराधी माना जाता था। वे अब शहरों में जाकर अपनी पहचान छिपाने की कोशिश कर रहे हैं। ऐसे 190 समुदाय हैं, जिनकी भाषाएँ बड़े पैमाने पर लुप्त हो गईं हैं।

हर भाषा में पर्यावरण से जुड़ा एक ज्ञान जुड़ा होता है। जब एक भाषा चली जाती है तो उसे बोलने वाले पूरे समूह का ज्ञान लुप्त हो जाता है। जो एक बहुत बड़ा नुकसान है क्योंकि भाषा ही एक माध्यम है जिससे लोग अपनी सामूहिक स्मृति और ज्ञान को जीवित रखते हैं।

''भाषा आर्थिक पूँजी भी है''

'सी फार्मिंग' की तकनीक में बदलाव आया और तटीय इलाकों के लोग शहरों में चले गये। इसी के साथ उनकी भाषाओं का पतन हो गया।

भाषाओं का इतिहास तो 70 हजार साल पुराना है जबकि भाषाएँ लिखने का इतिहास सिर्फ चार हजार साल पुराना ही है। इसलिए ऐसी भाषाओं के लिए यह संस्कृति का ह्रास है।

खासकर जो भाषाएँ लिखी ही नहीं गयीं और जब वे नष्ट होती हैं, तो यह बहुत बड़ा नुकसान होता है। यह सांस्कृतिक नुकसान तो है ही, साथ ही आर्थिक नुकसान भी है। भाषा आर्थिक पूँजी होती है क्योंकि आज की सभी तकनीकें भाषा पर आधारित तकनीकें हैं।

चाहे पहले की रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान या इंजीनियरिंग से जुड़ी तकनीक हो या आज के दौर का यूनिवर्सल अनुवाद, मोबाइल तकनीक सभी भाषा से जुड़ी हैं। ऐसे में भाषाओं का लुप्त होना एक आर्थिक नुकसान है।

'शहर में हो भाषाओं के लिए जगह'

भाषा बचाने का मतलब है कि भाषा बोलने वाले समुदाय को बचाना। ऐसे समुदायों के लिए जो नये

विकास के विचार से पीड़ित हैं, उनके लिए एक माइक्रोप्लानिंग की जरूरत है।

हर समुदाय चाहे वह सागर तटीय हो, घुमंतू समुदाय हो, पहाड़ी इलाकों, मैदानी और शहरी सभी समुदायों के लोगों के लिए अलग योजना की जरूरत है।

बहुत से लोग शहरीकरण को भाषाओं के लुप्त होने का कारण मानते हैं, लेकिन मेरे हिसाब से शहरीकरण भाषाओं के लिए खराब नहीं है। शहरों में इन भाषाओं की अपनी एक जगह होनी चाहिए। बड़े शहरों का भी बहुभाषी होकर उभरना जरूरी है।

'सभी भाषाओं को मिले सुरक्षा'

''हिंदी को डरने की जरूरत नहीं क्योंकि हिंदी दुनिया की भाषाओं के मामले में चीनी और अंग्रेजी के बाद सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है। वह स्पेनिश से आगे निकल गयी है। मगर छोटी भाषाओं को बहुत खतरा है।''

जिसकी लिपि नहीं हैं उसे बोली कहने का रिवाज है। ऐसे में अगर देखें तो अंग्रेजी की भी लिपि नहीं है वह रोमन इस्तेमाल करती है। किसी भी लिपि का इस्तेमाल दुनिया की किसी भी भाषा के लिए हो सकता है। जो भाषा प्रिंटिंग टेक्नोलॉजी में नहीं आयी, वह तो तकनीकी इतिहास का हिस्सा है न कि भाषा का अंगभूत अंग। इसलिए मैं इन्हें भाषा ही कहूँगा।

सरकारें न तो भाषा को जन्म दे सकती हैं और न ही भाषा का पालन करा सकती हैं। मगर सरकार की नीतियों से कभी–कभी भाषाएँ समय से पहले ही मर सकती हैं। इसलिए सरकार के लिए जरूरी है कि वह भाषा को ध्यान में रखकर विकास की माइक्रो प्लानिंग करे।

हमारे देश में राष्ट्रीय स्तर की योजनाएँ बनती हैं और राज्यों में इसकी ही छवि देखी जाती है। इसी तरह पूरे देश में भाषा के लिए योजना बनाना जरूरी है। मैं यह इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि 1952 के बाद देश में भाषावार प्रांत बने।

इसीलिए हम मानते हैं कि हर राज्य उस भाषा का राज्य है, चाहे वह तमिलनाडु हो, कर्नाटक हो या कोई और। हमने अनुसूची में केवल 22 भाषाएँ रखी हैं। केवल उन्हें ही सुरक्षा देने के बजाय सभी भाषाओं को बगैर भेदभाव के सुरक्षा देना जरूरी है। अगर सरकार ऐसा नहीं करेगी तो बाकी सभी भाषाएँ मृत्यु के रास्ते पर चली जाएँगी।

'हिंदी को डरने की जरूरत नहीं'

बंजारे समुदायों ने अपनी छवि के चलते बड़े शहरों में पलायन किया और पहचान छिपाकर रखी। इस वजह से कई भाषाएँ विलुप्त हो गईं।

दस हजार साल पहले लोग खेती की तरफ मुड़े उस वक्त बहुत सी भाषाएँ विलुप्त हो गईं। हमारे समय में भी बहुत बड़ा आर्थिक बदलाव देखने में आ रहा है। ऐसे में भाषाओं की दुर्दशा होना स्वाभाविक है। मगर अंग्रेजी से हिंदी को डर या हिंदी से अन्य भाषाओं को डर ठीक नहीं है।

पिछले 50 साल में हिंदीभाषी 26 करोड़ से बढ़कर 42 करोड़ हो गये जबकि अंग्रेजी बोलने वालों की संख्या 33 करोड़ से बढ़कर 49 करोड़ हो गयी। इस तरह हिंदी की वृद्धि दर अंग्रेजी से ज्यादा है।

मेरे हिसाब से हिंदी को डरने की जरूरत नहीं क्योंकि हिंदी दुनिया की भाषाओं के मामले में चीनी और अंग्रेजी के बाद सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है। वह स्पेनिश से आगे निकल गयी है। मगर छोटी भाषाओं को बहुत खतरा है।

(पीपुल लिंगुइस्टिक सर्वे के मुख्य संयोजक गणेश डेवी से अमरेश द्विवेदी की बातचीत पर आधारित, बीबीसी हिन्दी से साभार)

शमशेर की कविता : 'अमन का राग'

सी व्यक्ति को कोई कविता हमेशा के लिए पसन्द नहीं होती, बल्कि समय–समय पर किसी कविता की स्मृतियाँ लौट–लौट कर आती हैं बदलते हुए संदर्भों में। मुझे शमशेर बहादुर सिंह की कविता 'अमन का राग'

लम्बे अरसे से प्रभावित करती रही है।

मैं मानता हूँ कि हिन्दी में इतने बड़े दायरे की ऐसी शान्तिकामी दूसरी कविता लिखी नहीं गयी। हिंदी ही नहीं शायद भारत की दूसरी भाषाओं में भी।

'अमन का राग' आज इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि पूरी दुनिया आज मानवाधिकार कार्यकर्ता मार्टिन लूथर किंग के उस ऐतिहासिक भाषण (आई हैव ए ड्रीम) की पचासवीं सालगिरह मना रही है।

'अमन का राग' लिखी गयी थी 1945 में। जब भारतीय संसद के इतिहास की 50वीं सालगिरह मनाई जा रही थी तब भी मैंने लिखा था कि 'अमन का राग' का भी भव्य जश्न मनाया जाना चाहिए। 'अमन का राग' इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह किसी भी तरह की हिंसा और युद्ध की विरोधी कविता है और ये कविता लिखी गयी थी द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद। इसमें समकालीन विश्व में जो शिविरबंदी थी, ये कविता पूरी तरह से उसके विरुद्ध है। यह मानवता और मनुष्यता की रक्षा और उसकी चिंता में खड़ी हुई अपनी तरह की अकेली कविता है। उदाहरणस्वरूप –

मुझे अमरीका का लिबर्टी स्टैचू उतना ही प्यारा है
जितना मास्को का लाल तारा
और मेरे दिल में पेकिंग का स्वर्गीय महल
मक्का–मदीना से कम पवित्रा नहीं
मैं काशी में उन आर्यों का शंखनाद सुनता हूँ
जो वोल्गा से आये
मेरी देहली में प्रह्लाद की तपस्याएँ दोनों दुनियाओं की
चौखट पर
युद्ध के हिरण्यकश्यप को चीर रही हैं।
यह कौन मेरी धरती की शांति की आत्मा पर कुरबान हो गया है

कोरिया के बच्चों के लिए और दुनिया में जहाँ कहीं भी युद्ध और हिंसा है उन सबके विरुद्ध ये कविता एक बहुत बड़े ग्लोबल स्वप्न के साथ खड़ी होती है। उदाहरणस्वरूप–

पाल राब्सन ने नई दिल्ली से नये अमरीका की
एक विशाल सिम्फनी ब्रॉडकास्ट की है
और उदय शंकर ने दक्षिणी अफ्रीका में नई अजंता को
स्टेज पर उतारा है
यह महान नृत्य वह महान स्वर कला और संगीत
मेरा है यानी हर अदना से अदना इंसान का
बिल्कुल अपना निजी।
युद्ध के नक्शों को कैंची से काटकर कोरियाई बच्चों ने
झिलमिली फूलपत्तों की रौशन फानूसें बना ली हैं
और हथियारों का स्टील और लोहा हजारों
देशों को एक–दूसरे से मिलाने वाली रेलों के जाल में बिछ
गया है
और ये बच्चे उन पर दौड़ती हुई रेलों के डिब्बों की
खिड़कियों से
हमारी ओर झांक रहे हैं।

मुझे नहीं लगता कि शमशेर जितने संवेदनशील थे और जो बार–बार उनकी तमाम कविताओं में अभिव्यक्त हुआ है, वह चाहे 'टूटी हुई बिखरी हुई' हो जिसने मुझे ही नहीं हमारी पीढ़ी और आज की पीढ़ी के तमाम कवियों और पाठकों को प्रभावित किया होगा क्योंकि उतनी अच्छी प्रेम कविता भी शायद दुर्लभ ही होगी जो लिखी गयी हो।

आज हम सब देख रहे हैं फिर वही युद्ध के बादल हैं। सीरिया, हमारे आसपास अफगानिस्तान, खुद भारत और उसके पड़ोसी देश और तमाम तरह के भीतरी और बाहरी द्वंद्व जैसी हिंसा के वातावरण से हम घिरे हुए हैं उस माहौल में यह कविता 'अमन का राग' एक तरह का शान्ति पाठ है और मनुष्यता को बचाने के लिए महामृत्युंजय का जाप है ये उसकी अमरता के पक्ष में।

–उदय प्रकाश

फेदेरिको गार्सिया लोर्का की रक्तगाथा

–उदय प्रकाश

ब भी रचना और कर्म के बीच की खाई को पाटने का सवाल उठाया जाएगा, फेदेरिको गार्सिया लोर्का का नाम खुद–ब–खुद सामने आएगा। बतलाना नहीं होगा कि रचना और कर्म की खाई को नष्ट करते हुए लोर्का ने समूचे अर्थों में अपनी कविता को जिया। यह आकस्मिक नहीं है कि पाब्लो नेरूदा और लोर्का की रचनाशक्ति फासिस्ट शक्तियों के लिए इतना बड़ा खतरा बन गईं कि दोनों को अपनी–अपनी नियति में हत्याएँ झेलनी पड़ीं। फासिज्म ने मानवता का जो विनाश किया है, उसी बर्बरता की कड़ी में उसका यह कुकर्म और अपराध भी आता है जिसके तहत उसने इन दोनों कवियों की हत्या की। लोर्का को गोली मार दी गयी और नेरूदा को... नेरूदा और लोर्का गहरे मित्रा थे।

चिंतकों और साहित्यकारों का एक तबका है, जो मामूली जीवन अनुभवों से साहित्य को परहेज की सलाह देता है। एक और समूह है जो जीवन अनुभव, समाज और राजनीति को साहित्य से जोड़ता तो है, लेकिन महज बौद्धिकता के धरातल पर... भाषा के माध्यम से... लफ़्फ़ाजी के जरिए। जाहिर है, वास्तविक अनुभव की दरिद्रता में, सिद्धांततः युग और समाज का साहित्य के साथ जरूरी सम्बंध मानते हुए भी इन रचनाओं के संप्रेषण के लिए जो कुछ होगा, उसमें 'रेटरिक' (शब्दजाल) अधिक होगा। एक तथ्य और है –अपने परिवेश के व्यापक जीवन को सीधे–सीधे आत्मसात न कर पाने वाला रचनाकार द्रष्टा रचनाकार होता है; कमेंट्रेटर होता है। ऐसे कमेंट्रेटर की रचना में अगर फतवों, सपाटबयानी, सरलीकरणों और गैर जिम्मेदार वक्तव्यों की भरमार हो, तो यह बहुत आश्चर्यजनक नहीं है; गैरजरूरी हिंदी कविता में जिस तरह के फतवों और सरलीकृत मुहावरों का उपयोग होता रहा है, उसका मूल कारण यही है। वास्तविक अनुभवों की दरिद्रता में ऐसा रचनाकार जिस संकट के सामने खुद को रू–ब–रू पाता है, उस संकट को वह अभिव्यक्ति का संकट कहता है। और उससे बचने के लिए भाषा का अतिरिक्त आश्रय लेता है। नतीजतन वास्तविकता का अति वास्तविकीकरण होता है। और 'रिटरिक' की भरमार होती है। दरअसल यह संकट अभिव्यक्ति का संकट नहीं सार्थक अनुभव की हीनता का संकट है। नेरूदा और लोर्का जैसे रचनाकारों के सामने अनुभव का ऐसा संकट कभी नहीं रहा। इसीलिए उन्होंने अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाए। नेरूदा जीवन के सबसे अधिक सक्रिय काल में चिले से निर्वासित रहे। और बाद में फासिस्ट जुंता के शिकार हुए। लोर्का को फ्रांको समर्थक गेस्टापो के फासिस्ट गुर्गों ने गोली से उड़ा दिया। अपने युग जीवन और परिवेश में होने वाले तेज रद्दोबदल के साथ उनकी सम्पूर्ण सम्बद्धता ने उनके लिए स्वयं ही अनुभवों का इतना विशाल भंडार इकट्ठा किया कि अपनी रचनाओं में कहीं भी उनके गैर ईमानदार होने का प्रश्न न रहा। शायद यहाँ यह कह देना वाजिब ही होगा कि कोई भी कवि अपनी रचनाओं में तभी ईमानदार रह सकता है, जब वह अपने जीवन में भी ईमानदार हो। लोर्का और नेरूदा की रचनाओं में इसीलिए समाज के बड़े से बड़े संकटों, दुर्घटनाओं, षड़यंत्राों, परिवर्तनों और फसादों की ऐसी खामोश हलचलकारी पक्षधरता अभिव्यक्त मिलती है कि अतिवास्तविकीकरण के खतरे से उनकी रचनाएँ अपने आप बच जाती हैं।

जाँबाज वियतमिन्ह को श्रद्धांजली

mÙkjh fo;ruke ds fn;su fc,u Qw esa 1954 dhfu.kkZ;dyM+kbZesaÝkalhlhmifuos'kokfn;ksa dks ijkftr djus rFkk fgUnphu ls Ýkalhlh vkSjvejhdhgeykojksadks [knsM+usdkykdhj tuuk;d] gksphfeUgdsnkfgukgkFk] tsujy dks Uxq;u fx;ki dk 102 lky dh mez esa nsgkolku gks x;kA ,f'k;k dh tehu ls mifuos'kokn dks tM+ ls m[kkM+ Qsadus okys bl tk¡ckt fo;rfeUg dks vafre fonkbZ vkSj J)katyhA

लोर्का की पूरी जिंदगी और उसका समग्र रचना–संसार निरंतर संघर्ष, जय–पराजय, उत्साह और हताशा, संकल्प और संदेह, जिंदगी और मौत के पड़ावों से भरी हुई एक यात्राा है। इतने वर्षों बाद जबकि लोर्का को गोली मार दिए जाने के बाद भी परिस्थितियाँ अभी बहुत बदली नहीं हैं, चिले में अब भी हत्यारी फासिस्ट जुंता सत्ता में है। स्पेन में अब भी फ्रांको के वंशधर अपने नाजी मंसूबों को अमल में लाने की साजिश में व्यस्त हैं। भारतीय शासन व्यवस्था अपनी हिलती हुई चूलों को संभालकर हिरावल क्रांतिकारियों को भारी तादाद में जेलों में भरे हुए है। ऐसे में लोर्का को याद करना बहुत प्रासंगिक हो जाता है। शायद लोर्का को याद करना अपने भीतर छिपे हुए किसी ईमानदार आदमी को चीख के पुकारने जैसा है! आज भी अपनी रचना और अपने कर्म, दोनों में एक साथ ईमानदार हो जाने वाले व्यक्ति के सामने लोर्का की नियति शेष बचती है।

क्या फेदेरीको गार्सिआ लोर्का का नाम एक प्रासंगिक और खामोश, समकालीन चीख की तरह नहीं लगता?

लोर्का की एक कविता है :

"मुझे महसूस हुआ
मैं मार डाला गया हूँ।
उन्होंने चायघरों, कब्रों और गिरजाघरों की तलाशी ली,
उन्होंने पीपों और आलमारियों को
खोल डाला।
सोने के दाँत निकालने के लिए
उन्होंने तीनों कंकालों को
खसोट डाला।
वे मुझे नहीं पा सके।
क्या वे मुझे कभी नहीं पा सके?
नहीं।
वे मुझे कभी नहीं पा सके।

लेकिन वे शिकारी कुत्तों की तरह अपने फासिस्ट आका के इशारों पर लोर्का की जान लेने के लिए लगातार उसके पीछे लगे रहे। लोर्का कभी उनसे लड़ता हुआ, कभी घायल होता हुआ, कभी उन्हें मारता हुआ, कभी छुपता हुआ, भागता हुआ, कभी उनका मजाक उड़ाता हुआ... लगातार लिखता रहा। लेकिन जान जोखिम खेल का अंत तो कभी न कभी होना ही था। जुलाई 1936 में, 'उन्हें' एक मौका मिला, और 'उन्होंने' लोर्का को दबोच लिया। नेरूदा ने अपने संस्मरण में लिखा है –"फेदेरिको (लोर्का) को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो गया था। एक बार नाटक के सिलसिले में किसी यात्राा से लौटने के बाद उसने मुझे एक विचित्रा घटना के बारे में बतलाने के लिए बुलाया। किसी गाँव में, जो रास्ते से अलग हटकर था। 'कास्तिले' के इलाके में अपने ग्रुप 'ला बार्राका' के साथ वह अपना कैम्प लगाकर उस गाँव के बाहरी छोर पर पड़ा हुआ था। यात्राा की थकान के कारण लोर्का रात में सो नहीं सका। वह बिलकुल तड़के ही उठ गया और अकेले ही बाहर घूमने के लिए निकल गया। यह ऐसा ही इलाका था जो किसी भी परदेशी या यायावर के लिए अपने पास, भयानक... चाकू की धार जैसी ठंड रखता है, कुहरा सफेद थक्कों के रूप में बिखरा हुआ था जिसमें सारी चीजें मुर्दा, प्रेतों जैसी दिखलाई पड़ती थीं।

"एक बहुत बड़ी जंग खाई लोहे की जाली, टूटी हुई मूर्तियाँ और खंभे सड़ती–गलती पत्तियों पर पड़े हुए थे। लोर्का किसी पुरानी जागीर के टूटे हुए फाटक के पास खड़ा था, जिसके सामने सामंती जमींदारी का एक खूब घना बगीचा था। वक्त, एकाकीपन का बोध और इस पर इस भयानक सर्दी ने इस सन्नाटे को और भी तीखा कर दिया था। अचानक फेदेरिको ने खुद को कुछ बेचैन सा महसूस किया, जैसे इस भिनसार में से कोई वस्तु निकल आने वाली हो, जैसे अभी कुछ घटने वाला हो। वहाँ एक गिरे हुए टूटे–फूटे खंभे के मुहाने पर वह बैठ गया।

"तभी इस भग्नावशेष के बीच में से घास की पत्तियों को चरने के लिए एक नन्हा–सा मेमना बाहर निकल आया जैसे कोहरे का देवदूत हो। इस सुनसान निर्जनता को मानवीय–सा बना देने के लिए वह कहीं से

भी बाहर आ गया था, जैसे कोई नर्म मुलायम सी पंखुड़ी उस जगह के सन्नाटे पर अचानक गिर पड़ी हो। लोर्का अब अधिक देर तक खुद को अकेला नहीं मान सका।

''तभी सूअरों का एक झुंड भी उस जगह आ पहुँचा। चार या पाँच जानवर थे, अध बनैले सूअर, अपनी आदिम बर्बर भूख और चट्टानों जैसे खुरों के साथ। ...और तभी फेदेरीको ने एक खून जमा देने वाले दृश्य को देखा, सूअर उस मेमने पर टूट पड़े और फेदेरीको के भयावह डर को और भी भयंकर बनाने के लिए उस मेमने को टुकड़ों–टुकड़ों में चींथ डाला और उसे लील गये।

''उस निर्जन स्थान पर घटने वाले इस खूनी दृश्य ने फेदेरिको को विवश कर दिया कि वह तत्काल अपनी घुमक्कड़ नाटक मंडली को वापस सड़क पर लौटा ले जाए। गृहयुद्ध के तीन महीने पहले, जब उसने मुझे यह रोमांचक कहानी सुनाई, वह तब भी इस घटना के डर और भयावहता से मुक्त नहीं हुआ था। बाद में मैंने देखा स्पष्टतः... साफ–साफ, कि वह घटना उसकी अपनी मौत का ही एक परिदृश्य थी, उसकी अपनी अविश्वसनीय ट्रैजिडी का पूर्वाभास।"

(पाब्लो नेरूदा, मेमॅयर्स, पृष्ठ 123–124)

लोर्का की कुछ कविताओं को पढ़ते हुए उनमें किसी बर्फ जैसी उदासी और अवसाद का अहसास होता है। मृत्यु के साथ लोर्का का परिचय बचपन में ही हो गया था जब कि वह फालिज में मरता–मरता बचा था। इसीलिए उसकी स्मृति में मृत्यु की कोई घनी छाया किन्हीं अंधेरे कोनों में छुपकर खड़ी रहती थी। जब वह लिखता था तो उस छाँह और अँधेरे के रंगअक्षरों के साथ घुल–मिल जाते थे। लोर्का की सर्वोत्तम कविताओं में से एक "पाँच बजे दोपहर" उसके दोस्त 'इग्नासियो सांचेस मेखियास' की मृत्यु पर ही लिखी गयी थी, जो सांड के साथ युद्ध में मारा गया था। इग्नासियो 'बुल फाइटर' था। संभव है लोर्का ने इग्नासियो की मृत्यु पर अपनी ही नियति का पूर्वाभास और स्वयं अपनी ही स्मृति की उस छाँह और अँधेरे के रंगों और महक को कविता लिखते समय महसूस किया हो। लोर्का कहता था– स्पेन मृत्यु का देश है, मौत के लिए खुला हुआ मुल्क.... एक मरा हुआ आदमी, किसी दूसरी जगह की तुलना में स्पेन में ही अधिक जिंदा होता है। स्पेन, एक ऐसा देश, जहाँ वही महत्त्वपूर्ण होता है जिसका अंतिम गुण मृत्यु हो। **(हबाना और ब्यूनस आयर्स में दिए गए भाषण का एक अंश)**

स्पेन की दमनकारी, बर्बर फासिस्ट शक्तियों ने उसे चैन नहीं लेने दिया। वह अपने युग के इस दर्दनाक दौर में लगातार जागता रहा और लिखता रहा। वह बुरी तरह थक चुका था। उसकी एक कविता है–

"मैं सोना चाहता हूँ।
मैं सो जाना चाहता हूँ जरा देर के लिए,
पल भर, एक मिनट, शायद
एक पूरी शताब्दी... लेकिन
लोग यह जान लें
कि मैं मरा नहीं हूँ...
कि मेरे होठों पर चाँद की अमरता है,
कि मैं पछुआ हवाओं का अजीज दोस्त हूँ. . .

...कि,
कि... मैं अपने ही आँसुओं की
घनी छाँह हूँ..."

अपने नाटकों और कविताओं में लोर्का ने जितने भी पात्रों को निर्मित किया उनमें से अधिसंख्य की नियति थी – मौत। लोर्का उन पात्रों को एक सड़क पर लाकर खड़ा कर देता था, जिसकी मंजिल मौत ही होती थी। अपनी एक बहुत प्रारंभिक कविता, जो उसने अपनी युवावस्था में लिखी थी, "एक और स्वप्न" है। उसमें लिखा है, जितने भी बच्चों की नियति में लिखी है मृत्यु, वे सब मेरे सीने में हैं। सचमुच वे सारे बच्चे, एक न दिन मर जाने वाले बच्चे, उसके ही सीने में थे। धीरे धीरे, पूरी निकटता के साथ मोम की तरह पिघलते हुए उनके अस्तित्व को महसूस करते हुए वह लिखा करता था। अपनी एक अद्‌भुद कविता "बैलेड ऑफ सिविल गार्ड" में लोर्का ने एक भयावह दुःस्वप्न की रचना की है। इस दुःस्वप्न के केंद्र में भी है– मौत। इस कविता में जिप्सियों का एक नगर है। कंगूरों, मेहराबों, फानूशों, बिजलियों और ध्वजाओं से सजा–धजा उत्सवधर्मी नगर। लेकिन मुस्कानों, संगीत और नृत्य के इस उल्लासपूर्ण नगर के

भ[illegible]ी – मौत। रात में सिविल गार्ड उस नगर में प्रवेश करते हैं। वे बच्चों और स्त्रियों को संगीनों और बरछों से छेद डालते हैं। सिविल गार्ड सारी रात अंधेरे में साँपों की तरह रेंगते हुए विनाश करते रहते हैं। वे कंगूरों को ढहा देते हैं, ध्वजाएँ फाड़ डालते हैं, फानूशों और रोशनियों को तहश–नहश कर डालते हैं। जब सुबह का धुंधलका शुरू होता है, तब तक यह सजा–धजा नगर धूल में मिल जाता है। इस शहर के हर दरवाजे और गली के हर मोड़ पर मासूम बत्तखों के खून गिरे होते हैं। लोर्का उसे देखता है। वह कविता के प्रारंभ से ही जानता है कि सीमेंट और इस्पात का यह ठोस नगर एक दिन मर जाएगा।

लोर्का का यह डरावना दुःस्वप्न भी, दुर्भाग्य से झूठ नहीं हुआ। स्पेन में सारी रात इसी तरह सिविल गार्ड साँप की तरह रेंगते रहे और जब सवेरा हुआ तो सड़कों पर, घरों में, पार्कों में, हर जगह बच्चों और स्त्रियों की लाशें बिखरी पड़ी थीं। चिले में भी ठीक ऐसा ही हुआ। 'हेवलाक एलिस' और 'रिल्के' की रचनाओं के केंद्र में भी मृत्यु है। रिल्के ने एक लड़की, जो मर जाने वाली थी, उस पर कविता लिखी 'जब तुमने शुरू की अपनी जिंदगी तब तक तुम्हारी मृत्यु बड़ी हो चुकी थी'। बाद में अस्तित्ववादियों ने, अल्बेयर कामू ने, अपनी रचनाओं में मृत्यु को चित्रित किया। अस्तित्ववादी दार्शनिक हेड्डेगर ने भी मृत्यु को मनुष्य के अस्तित्व का अनिवार्य लक्षण माना था। लेकिन लोर्का के पास मृत्यु की अनुभूति का मतलब जीवन से विरक्त उदासीनता नहीं, जीवन का नकार नहीं, बल्कि ठीक इसके विपरीत है। यहाँ मृत्यु के प्रति जागरूकता जीवन और कर्म के प्रति जगरूकता को और पैना बनाती है। लोर्का पर लिखते हुए उसके समकालीन, प्रसिद्ध स्पेनिश कवि 'सालिनास' ने भी माना है कि अगर जीवन की घटनाओं से मृत्यु की उपस्थिति के अहसास को घटा दिया जाए तो जीवन एक सपाट फिल्म की तरह हो जाएगा। ऐसी फिल्मों की घटनाएँ मुर्दा होती हैं क्योंकि वहाँ पर मौत की उपस्थिति और डर को हम महसूस नहीं करते। मृत्यु के साथ अपनी जिंदगी के अनिवार्य अंतर्सम्बंधों को समझ कर ही व्यक्ति अपनी जिंदगी को पहचान सका है। लोग सामान्यतया जीवन चुनते हैं... बिना अपनी मृत्यु के बारे में जागरूक हुए। लोर्का ने अपनी मौत को चुना, ठीक उसी तरह जिस तरह उसने एक खास तरह की जिंदगी को चुना था। लोर्का कभी मौत को भूलता नहीं था। उसकी कविताएँ भी इसीलिए इतनी जीवंत और सप्राण हैं कि वे भी मृत्यु को भूलती नहीं। एक कहावत है कि मुर्दा नहीं मरता। जो मरा हुआ है उसकी मृत्यु क्या होगी। लेकिन लोर्का के पात्रा बार–बार मरते हैं क्योंकि वे जिंदा हैं। लोर्का की कविताएँ जिंदा कविताएँ हैं। यह एक विचित्रा बात है कि मृत्यु पर लिखी जाने के बावजूद उसकी रचनाएँ जिंदगी के प्रति आस्था पैदा करती हैं।

लोर्का का जन्म 1918 में ग्रानादा के पश्चिम के एक छोटे से गाँव 'फुएंते बकेरोस' में हुआ। उसकी माँ स्कूल टीचर थी और पिता मध्यम किसान। लोर्का सबसे पहले संगीत की ओर आकर्षित हुआ। बचपन में ही एक बीमारी ने उसके चलने–फिरने और बोलने पर असर डाल दिया। हकलाहट भरी आवाज के बावजूद संगीत के प्रति उसका लगाव, उसकी अदम्य जिजीविषा और आस्था की ओर संकेत करता है। बहरहाल, अपनी शारीरिक खामियों के बावजूद लोर्का एक अच्छा पियानोवादक बना। प्रसिद्ध संगीतकार 'दे फाला' उसका मित्रा था और आदर्श भी। इतना ही नहीं, लोर्का की हकलाहट ने उसके कविता पाठ पर भी अपना असर डाला था। कोई दूसरा कवि होता तो हीनता बोध के मारे अपनी कविताओं का पाठ छोड़ देता। लेकिन लोर्का ने इसी हकलाहट में से अपनी एक आकर्षक 'स्टाइल' का आविष्कार कर लिया। यह 'स्टाइल' इतनी लोकप्रिय हुई कि उस दौर के युवा कवियों में इसका क्रेज हो गया था। दोष मुक्त कंठ कवि भी लोर्का स्टाइल में अपनी कविताएँ पढ़ा करते थे। 1919 में वह मैड्रिड चला गया और बहुत थोड़े समय में ही कवि के रूप में, वक्ता के रूप में, प्रतिभाशाली संगीतज्ञ के रूप में और चित्राकार के रूप में प्रसिद्ध हो गया। उसने अपने इर्द गिर्द दोस्तों का एक जत्था तैयार कर लिया था जिनके साथ वह कैफे, नाइट क्लबों, खुली जगहों में बहसें और झगड़े

किया करता था। 1919 में उसने 'लिब्रो दे पोएमास' प्रकाशित किया। 1927 में उसके द्वारा लिखे गये नाटकों के मंचन को भरपूर सफलता मिली। 1927 में ही उसके चित्राों की प्रदर्शनी हुई। 1928 में 'जिप्सी बैलेड्स' का पहला संस्करण प्रकाशित हुआ। ये 'बैलेड्स' स्पेनी भाषा के लोगों में दूर–दूर तक लोकप्रिय हुए। उसे हर बार हर क्षेत्रा में सफलता मिली। 1929–30 में उसने क्यूबा और अमरीका की यात्राा की। 1931 में जब वह लौटा तब तक स्पेन में व्यापक राजनीतिक परिवर्तन हो चुका था। राज्यतंत्रा का पतन हो गया था, राजा भाग निकला था और गणतंत्रा की स्थापना हो चुकी थी। उसने अपने आपको फिर से काम में डुबो दिया। इस बीच उसने कई नाटक लिखे। 1933–34 में वह फिर यात्राा पर निकला। ब्यूनस आयर्स तथा अनेक अन्य जगहों पर उसने क्लासिकल स्पेनिश नाटकों का प्रदर्शन किया।

लोर्का और नेरूदा दोनों ही स्वतंत्रा और स्वतंत्राता के लिए संघर्षरत मानव समुदाय के कवि हैं। उनकी कविताएँ मनुष्य को स्वतंत्रा करने की बेचैनी के तनाव में कसी हुई कविताएँ हैं। वे सच्चे अर्थों में, मुक्तिबोध के शब्दों में कहें तो 'विश्व चेतस' कवि हैं।

लोर्का मूलतः कवि था लेकिन बाद में वह नाटककार के रूप में भी उतना ही प्रसिद्ध हुआ। वह एक्शन पर विश्वास करता था। उसने कोई व्यवस्थित विश्वविद्यालयीय शिक्षा नहीं प्राप्त की थी। ग्रानदा विश्वविद्यालय में उसने दाखिला जरूर ले लिया था लेकिन वह पूरी शिक्षा पद्धति के लिए 'मिस फिट' था। गप्पें मारना और आस–पास के गाँवों में घुमक्कड़ी करना, गाँवों के सांस्कृतिक रूपों की छानबीन करना, लोकगीतों की धुनों में रम जाना उसकी आदतें थीं। लोर्का के भीतर 'आंदालूसिया' अपनी सम्पूर्ण परम्परा, लोक संस्कृति, संगीत और संकटों

माल्थस का भूत

–गिरीश मिश्रा

Cjlksa igys ,deg̀Ùbiw.kZ dkaxzsl husrk txizos'k panz us etkd djrs gq, enuyky [kqjkuk ls dgk fd yksx [kqys fnekx ls lkspus ds ctk; [kqys eq¡g ls lksprs gSaA izfr}a}h ikVhZ ls tqM+s gksus ds ckotwn nksuksa nksLr FksA fiNys fnuksa eqyk;e flag ;kno vkSj 'kjn ;kno dh ns'k esa tula[;k fu;af=kr djus dh ek¡x dks ns[krs gq,] dksbZ Hkh ;g dg ldrk gS fd nksuksa uksa viuk fnekx bLrseky djus ds ctk; vius dM+ksysiu ij fuHkZj jgs gSaA mUgsa tula[;k o`f) vkSj mlls tqM+s fooknksa dh tkudkjh gkfly djuh pkfg;sA

Ýkalhlh Økafr ds ckn ls gh ;g cgl yxkrkj tkjh gSA dksnksjlsV] fofy;e xkMfou] ekYFkl] ekDlZ vkSj jksel Dyc ds ckn ls ;g cgl fujarj tkjh gS fd D;k tula[;k o`f) nj dk vkfFkZd o`f) nj ds lkFk dksbZ vuqikfrd lEcaèk gSA Hkkjr dk mnkgj.k ysa] 1931 ls igys bldh tula[;k esa dqN [kkl o`f) ugha gqbZ FkhA vkSj ml oDr tula[;k vkt ds eqdkcys esa dkQh de Fkh] fQj Hkh ml oDr vkt ds eqdkcys T;knk xjhch FkhA

ekYFkl dk izknqHkkZo Ýkalhlh Økafr dh dkV djus ds fy;s gqvk FkkA mlus ?kks"k.kk dh fd etnwj oxZ blfy;s xjhc gS D;ksafd bl oxZ esa tula[;k o`f) nj lcls T;knk gSA f}rh; fo'o;q) ds ckn mlh le; vktkn gq, ns'kksa dks ;g crkus ds fy;s fd mUgsa vkèkqfud vFkZO;oLFkk dk fuekZ.k djus ds ctk; viuh tula[;k o`f) nj dks fu;af=kr djus ds dke dks izkFkfedrk nsuh pkfg;sA vkikrdky ds nkSjku mlds vuqpjksa dks lat; xk¡èkh ds usr`Ro esa lfØ; gksus vkSj viuk izHkqRo LFkkfir djus dk volj feykA gkyk¡fd vkikrdky ds ckn ekYFkl ds Hkwr dks fuokZflr dj fn;k x;k Fkk] fQj Hkh burks ;knoksa esa tSls usrk vHkh Hkh blds paxqy esa Q¡ls gq, gSaA

T;knk iqjkuh ckr ugha gS tc nks izeq[k fganwoknh usrkvksa us ;g fl)kar fn;k fd gekjs ns'k esa tula[;k o`f) dh rst nj ds fy;s eqlyeku ftEesnkj gS] gkyk¡fd vk;dM+s muds rdksa dh iqf"V ugha djrs FksA ¼fgUnqRookfn;ksa us vHkh gky gh esa fgUnqvksa ls vfèkd cPps iSnk djus dk vkàku fd;k gS& l-½ vkikrdky ds nkSjku] eksfgr lsu ds vuqjksèk ij] eSaus ml oDr ,d fdrkc fy[kh Fkh ftls jktuhfrd dkj.kksa ls izdkf'kr ugha fd;k x;k FkkA 2001 esa] ekud izdk'ku us ßekYFkl ,.M fgt ?kksLVÞ uke ls bls izdkf'kr fd;kA

लोग जो युद्व छेड़ना चाहते हैं;

अर्थशास्त्राी उपभोग के स्तर से जीवन स्तर को या उपभोक्ता सामानों की मात्राा से जीवन की गुणवत्ता को न नापें;

रसोईये इस बात में यकीन न करें कि लोबस्टर को अच्छा लगता है जिन्दा उबाला जाना;

इतिहासकार इस बात में यकीन न करें कि देशों को अच्छा लगता है उन पर हमला किया जाना;

राजनेता इस बात में यकीन न करें कि सिर्फ वादों से भर जाता है गरीब लोगों का पेट;

गम्भीरता को सद्‌गुण नहीं समझा जाये और जो खुद पर हँसना नहीं जानता हो, उसे गम्भीरता से न लिया जाय;

मौत और पैसे की जादुई शक्ति गायब हो जाय और कोई चूहा महज वसीयत या दौलत के दम पर अचानक गुणी जन न बन जाय;

अपने विवेक के मुताबिक जो ठीक लगे वह काम करने के लिए किसी को मूर्ख न समझा जाये और न ही अपने फायदे के हिसाब से काम करने वाले को बुद्विमान;

पूरी दुनिया में गरीबों के खिलाफ नहीं, बल्कि गरीबी के खिलाफ जंग छिड़े और हथियार उद्योग के सामने खुद को दिवालिया घोषित करने के सिवा कोई चारा न रह जाये;

भोजन खरीद–फरोख्त का सामान न हो और संचार साधनों का व्यापार न हो क्योंकि भोजन और संचार मानवाधिकार हैं;

कोई व्यक्ति भूख से न मरे और कोई व्यक्ति खाते–खाते भी न मरे;

बेघर बच्चों को कूड़े का ढेर न समझा जाये क्योंकि कोई भी बच्चा बेघर न रह जाये;

धनी बच्चों को सोने जैसा न माना जाये क्योंकि कोई भी बच्चा धनी न रहे;

शिक्षा उन लोगों का विशेषाधिकार न हो जिनकी हैसियत हो उसे खरीदने की;

पुलिस उन लोगों पर कहर न ढाये जिनकी जेब में उसे देने के लिए पैसा न हो;

न्याय और मुक्ति, जिन्हें जन्म से ही आपस में जुड़े बच्चों की तरह काट कर अलग कर दिया गया, आपस में फिर मिलें और एक साथ जुड़ जायें;

एक महिला, एक अश्वेत महिला ब्राजील में राष्ट्रपति चुनी जाये, एक रेड इण्डियन महिला ग्वाटेमाला में और दूसरी पेरू में सत्ता संभाले;

अर्जेंनटीना की प्लाजा द मेयो[1] की सनकी औरतों को मानसिक स्वास्थ्य की सबसे अच्छी मिसाल समझा जाये क्योंकि उन्होंने जानकर भी कि जान पर खतरा है, स्वीकार नहीं किया चुप बैठना;

चर्च और पवित्रा माता, मूसा के शिलालेख की गलत लिखावट को दुरूस्त करें और उनका छठा आदेश ''शरीर का उत्सव मनाने'' का आदेश दें;

एक और आदेश की घोषणा करें चर्च, जिसे भूल गया था ईश्वर– तुम प्रकृति से प्यार करो क्योंकि तुम उसी के अंग हो;

जंगलों से आच्छादित हों दुनिया के रेगिस्तान और धरती की आत्मा;

नाउम्मीद लोगों में उम्मीद की किरण फूटे और खोये हुए लोगों का पता लगा लिया जाये क्योंकि वे लोग अकेले–अकेले राह तलाशने के चलते निराश हुए और रास्ते से भटक गये;

हम उन लोगों के हमवतन और हमसफर बनें जिनमें न्याय और खूबसूरती की चाहत हो, चाहे वे कहीं भी रहते हों, क्योंकि आने वाले समय में खत्म हो जाएँ देशों के बीच सरहदें और दिलों के बीच की दूरी;

शुद्धता केवल देवताओं का उबाऊ विशेषाधिकार भर रह जाये और हम अपनी गड़बड़ और गन्दी दुनिया में इस तरह गुजारें हर रात जैसे वह आखिरी रात हो और हर दिन जैसे पहला दिन।

1. प्लाजा द मेयो– अर्जेंनटीना में 1976 से 1983 के बीच सैनिक तानाशाही के अधीन सरकार का विरोध करने वाले क्रांतिकारी नौजवानों को गिरफ्तार करके

यातना देने, हत्या करने और गायब कर देने की घटनाएँ आम हो गयी थीं। उन नौजवानों की माताओं ने प्लाजा द मेयो नाम से संगठन बनाकर तानाशाही की इन क्रूरताओं का खुलकर विरोध किया था।)

(अनुवाद– दिगम्बर)

प्यार करना एक राजनीतिक काम है

–कीर्ति सुन्दरियाल

माज में प्रेम कहानियों के अनगिनत किस्से और मिशालें दी जाती रही हैं। फिल्मों के पर्दों से लेकर सामाजिक बहसों में बड़ा वर्ग प्रेम के साथ खड़ा हुआ दिखता है। इसके बावजूद जब हरियाणा के एक गाँव में दो प्रेमियों की हत्याएँ होती हैं और हत्याओं के समर्थन में पूरा गाँव खड़ा होता है, तो वह हत्याओं को वाजिब करार देता है। घर के लोग और रिश्तेदार इस हत्या को जायज मानते हैं। ये वे लोग हैं जिनके पास मध्यम वर्ग की सभी सुविधाएँ, आधुनिकता के सारे माध्यम मौजूद हैं। फिर यह कैसा समाज है जो प्यार करने पर जान ले लेता है? भारतीय समाज असफल प्रेम कहानियों पर आँसू बहाने वाला समाज रहा है। हीर रांझा जैसी जोड़ियों को प्यार की मिशाल के तौर पर पेश करना एक चालाकी भी है, क्योंकि असफल प्रेम कहानियों से पितृसत्तात्मक व्यवस्था और संस्कृति को किसी प्रकार का कोई खतरा नहीं होता। प्यार शायद ऐसा रिश्ता है जिसमें यथास्थितिवाद को तोड़ने का मौलिक गुण है, इसलिए जड़ व्यवस्थाएँ इससे डरती हैं। इसलिए प्यार एक राजनीतिक काम हो जाता है। खासतौर से उनके लिए जो व्यवस्था के बदलाव के पक्ष में खड़े होते हैं। उनके लिए भी जो व्यवस्था बदलाव के पक्ष में नहीं हैं

---

i`"B88ck 'ks'k

हैं।डेंगू दो तरह का होता है–असिम्पटोमेटिक यानी लक्षणविहीन जिसमें डेंगू के वायरस का संक्रमण तो होता है परन्तु बीमारी के लक्षण नहीं उभरते। ऐसे मरीज का टेस्ट करने पर डेंगू पॉजिटिव आएगा परन्तु वह बिना किसी इलाज के ठीक हो जाएगा और वह मरीज को कोई नुकसान नहीं पहुँचाएगा। दूसरा सिम्पटोमेटिक यानी बीमारी के लक्षणों वाला। यह भी दो प्रकार का होता है–क्लासिकल डेंगू फीवर और डेंगू हेमरेजिक फीवर। क्लासिकल डेंगू फीवर एक सामान्य वायरल फीवर है ठण्ड के साथ तेज बुखार,बदन दर्द, तेज सिर दर्द शरीर पर दाने जैसे लक्षण प्रकट होते हैं। यह बीमारी पाँच–सात दिन में सामान्य इलाज से ठीक हो जाती है। डेंगू हेमरेजिक फीवर थोड़ी खतरनाक साबित हो सकता है। इसमें प्लेटलेट रक्त कणिकाएँ व श्वेत रक्त कणिकाएँ की संख्या कम होने लगती है और समय रहते इलाज न मिल पाने पर जान लेवा हो सकती है।

डेंगू के संक्रमण में अस्सी प्रतिशत मामले लक्षण विहीन या बहुत सामान्य लक्षण वाले होते हैं। वायरल फीवर की तरह यह स्वनियंत्रित बीमारी है और सामान्य बुखार के उपचार से पाँच–सात दिन में ठीक हो जाती है। बीस प्रतिशत जो लक्षण उत्पन्न करने वाले मामले होते हैं उनमें से भी उन्नीस प्रतिशत क्लासिकल डेंगू फीवर के मरीज होते हैं और मात्रा एक प्रतिशत डेंगू हेमरेजिक फीवर के मरीज होते हैं जिनके लिए बीमारी जान लेवा साबित हो सकती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार पाँच करोड़ लोगों में डेंगू का संक्रमण पाया गया उनमें से पांच लाख लोगों में डेंगू हेमरेजिक फीवर था। डेंगू मलेरिया जैसी ही एक बीमारी है। उससे जो मौतें होती हैं उनकी एकमात्रा वजह होती है मरीजों को उपयुक्त चिकित्सा सुविधाओं का अभाव।

एक सामान्य बीमारी का आज जनमानस में बेहद खौफ है तो उसकी दो वजह हैं। पहली वजह यह कि जब किसी क्षेत्रा में डेंगू महामारी के रूप में फैलता है तो खराब स्वास्थ्य सेवाओं के कारण काफी मौतें हो जाती हैं जिससे लोगों में भय का वातावरण बन जाता है। दिल्ली में 2003 में करीब साठ और 2006 में करीब अस्सी लोग डेंगू से मरे थे। कुछ साल बाद दिल्ली में डेंगू का आउट ब्रेक होता रहता है और डेंगू जैसी बीमारी से साठ या अस्सी लोगों का दिल्ली जैसे शहर में मारे जाने में सिर्फ यहाँ की लचर स्वास्थ्य सेवाओं को

bl dkj naxk cgqr gqvk
cgqr gqbZ [kw cdh dkfj'k
vxys lky vPNh gksxh
Qly emku dhA
&ksjkikMs;

पर प्रेम करते हैं या करना चाहते हैं।

कहानियों, फिल्मों से इतर भारतीय समाज में प्यार करना अभी भी अच्छा नहीं माना जाता। जब कोई प्यार करता है तो समाज के कैमरे में उसकी हर गतिविधि कैद होती है और यहाँ कुछ तो आपके सामने कहा जा रहा होता है और कुछ चटकारे लेते हुए फुसफुसाहटों के साथ बताया जा रहा होता है। ऐसा क्यों है कि प्यार की लोग घंटों चीड़फाड़ करते हैं? युवा समूहों में भी प्यार के बारे में सबसे ज्यादा बातचीत होती है पर वह बातचीत सेक्सुअल प्लेजर लेने के लिए ज्यादा होती है। इस मुद्दे पर गम्भीर बहसों के बजाय वे सबसे ज्यादा इन्हीं चीजों पर बात करते हैं, क्योंकि वे इसे राजनीतिक काम के रूप में कभी नहीं देखते। यह उनके जीवन में राजनीति से एक इतर प्रसंग होता है। भारतीय समाज में प्यार को पा लेना एक कठिन लड़ाई है। यह लड़ाई हमें अपने आसपास के लोगों, माँ–बाप, भाई–बहन, रिश्तेदारों, दोस्तों से लड़नी पड़ती है। बड़े रूप में यह लड़ाई राज्य के साथ बनती है क्योंकि अपने छोटे संस्थानों पर हुए हमले से वह हिलता है।

अगर दो लोगों के प्रेम सम्बंधों में जाति, वर्ग, सामाजिक हैसियत की साम्यता है तो भी ऐसे सम्बंधों को सम्मान और मान्यता समाज नहीं देता जितना वह परिवार द्वारा तय किये गये रिश्तों को देता है। अगर प्रेम सम्बंध इन सब के विपरीत है यानि उनके बनाये गये मापदंडों के जो जाति, भाषा, संस्कृति, वर्ग और सुन्दरता के तथाकथित मानकों को तोड़ते हैं, तो वे प्रेम निश्चित ही अपने चरित्रा में परिवर्तनकामी होते हैं। समाज के डर से ऐसे लाखों प्रेम आखों में पैदा होते हैं और वहीं पर खत्म भी हो जाते हैं। कुछ लोग जो थोड़ा साहस करते हैं, वह प्यार को वास्तविकता में जीने का प्रयास करते हैं, लेकिन जैसे ही उसे सार्वजनिक करने की बात आती है तो वे समाज के डर से पीछे हट जाते हैं। समाज के डर के अलावा उनके भीतर भी जाति और वर्ग की सत्ता काम कर रही होती है, उससे कई लोग लड़ना नहीं चाहते क्योंकि वह समाज की गैरबराबरी की सत्ता से टकराना नहीं चाहते। बल्कि इसी व्यवस्था में समाहित होकर सुविधाजनक जीवन जीना चाहते हैं। इसलिए वे एक समय के बाद प्रेम को भी अपने स्वार्थ के हिसाब से तौलने लगते हैं और जैसे ही प्यार का पलड़ा हल्का होता है उसे जीवन से उठाकर फेंक देते हैं। लेकिन बहुत से लोग ऐसे भी होते हैं जो अपने प्यार के प्रति हमेशा प्रतिबद्ध रहते हैं। वे लोग प्यार को जीवन और समाज से जोड़कर देखते हैं। इसलिए वह अपने प्रेम सम्बंधों को जीने के लिए किसी भी तरह के खतरे को स्वीकारते हैं। वह स्थापित प्यार विरोधी संस्थाओं परिवार, पितृसत्ता, जाति, वर्ग, धर्म सभी मान्य और मजबूत मठों को चुनौती देते हैं, क्योंकि वह समाज की हर मान्यता को खारिज करते हैं इसलिए वह सब कुछ नये तरह का चाहते हैं। समाज, संस्कृति, राजनीतिक व्यवस्था वह सब कुछ को बदलते देखना चाहते हैं। वह इस तरह का समाज चाहते हैं जिसमें समानता हो और प्यार करने व जीने की आजादी हो। यहीं से प्यार व्यवस्था विरोध का एक नया मोड लेता है। व्यक्तिगत प्यार के आड़े रोज व्यवस्थायें टकराती हैं, शहर, गाँव, गली–मुहल्लों और कस्बों में प्यार करने वाले पितृसत्ता और जाति व्यवस्था से टकराते हैं। रोहतक के प्रेमी युगल की तरह उन्हें अपनी हत्या के लिए भी तैयार रहना पड़ता है। भारतीय समाज में प्यार करना बेशर्मी जैसा बना हुआ है, इसीलिए शायद यहाँ दो लोगों के प्यार करने पर परिवार की इज्जत चली जाती है। किसी पुरुष के बलात्कार करने पर यहाँ परिवार की इज्जत नहीं जाती पर अन्तर्जातीय, अन्तर्धर्मीय, गरीब–अमीर के आपस में प्यार करने से इस समाज की इज्जत चली जाती है। प्यार करना एक व्यक्तिगत फैसला भले ही हो पर यह राजनीतिक मसला ही बनता है। आपके न चाहते हुए भी प्यार सत्ताओं के सम्बंधों से ही संचालित होता है। जड़ समाज के लिए यह गंभीर मसला है क्योंकि यह सामाजिक बदलाव का एक दरवाजा खोलता है, स्थापित सत्ता सम्बंधों को चुनौती देता है, और जब भी प्यार से इस तरह की चुनौती मिलती है

उसका गला घोंट दिया जाता है। इसलिए जो लोग प्यार करने में विश्वास रखते हैं, उन्हें प्यार को गम्भीरता से लेना चाहिए। प्यार को राजनीतिक दायरे में सोचना चाहिए, प्यार करने की स्वतंत्राता के लिए व्यक्तिगत संघर्ष जितना जरूरी है, उसे बचाये रखने लिए सामुहिक संघर्ष भी उतना ही जरूरी है। प्यार में होना ही प्यार किये जाने के लिए काफी नहीं होता, इसके लिए हमें अपने समाज और राजनीतिक संरचना को समझना भी जरूरी है, तभी हम प्यार को बचा सकते हैं और सामाजिक बदलाव के हिस्से के रूप में उसकी भूमिका बना सकते हैं। नहीं तो कुछ समय बाद अन्य रिश्तों की तरह प्रेम भी नीरस, परेशान करने वाला और जीवन में बोझिल–सा हो जाता है और अन्त में जब बदलाव और असहमतियों की गुंजाइश खत्म हो जाती है तो यही प्यार उत्पीड़क हो जाता है। जिस उत्पीड़न का बड़ा हिस्सा महिलाओं के ही हिस्से में आता है। कुछ लोग या तो इसका समाधान सम्बंध तोड़ने में खोजते हैं या फिर इसे सामंती समाज की तरह वह भी इज्जत का मामला बना देते हैं और उसके साथ घिसटते रहते हैं।

जिस तरह लोग प्यार किये जाने को स्वीकार नहीं करते उसी तरह प्यार करने वाले प्यार के टूट जाने को भी स्वीकार नहीं कर पाते हैं। सामंती समाजों की तरह यह भी उनके लिए इज्जत का ही रूप बनता है। इस दबाव में कई लोग बिना प्यार के कई सालों तक साथ गुजार देते हैं, वे अपने जीवन को जीने के बजाय सामाजिक बंधनों और सामंती मूल्यों को ही जी रहे होते हैं। यह उनके अराजनीतिक नजरिये से प्यार को देखने का ही परिणाम होता है। समाज की बजाय प्रेम सम्बंधों में रहने वाले व्यक्तियों के लिए यह स्वीकार करना मुश्किल होता है कि अब उनके बीच प्यार नहीं रहा। प्यार क्यों था और अब क्यों नहीं रहा, इसका विश्लेषण करने की बजाय वह इसे ढोते रहना चाहते हैं। प्यार करना उनके लिए मायने रखता है, लेकिन खत्म होने को वे विश्लेषित ही नहीं करना चाहते, क्योंकि यह एक जटिल प्रक्रिया होती है आत्मविश्लेषण व समाज और व्यक्ति के बीच संघर्ष की। उनमें प्रेम को बचाने की कोई तड़प भी नहीं होती। अन्य रिश्तों की तरह प्यार को भी ढोने की आदत लोगों को ज्यादा सुविधाजनक लगती है। जबकि अन्य रिश्तों से अलग यह उनका चुनाव होता है, यह थोपा गया नहीं होता, इसलिए लोकतांत्रिक मूल्यों की ज्यादा गुंजाइश इसमे बनती है। इसलिए कठिन सवालों से वही प्रेमी टकराने की कोशिश करते हैं जो प्रेम को राजनीतिक मानते हैं और उसे अन्य राजनीतिक मसलों की तरह महत्त्व देते हैं। दो लोगों का प्रेम एक मजबूत प्रतिरोधी सत्ता का निर्माण करता है, जिसकी जड़े सामाजिक राजनीतिक संरचनाओं में होती है। अगर प्रेम सम्बंधों में विरुद्ध की सत्ता को समझने और इसे कमजोर करने का प्रयास नहीं होता तो जाति, वर्ग, पितृसत्ता की ही जीत होती है, क्योंकि उनके अनुभवों और मान्यताओं का इतिहास बड़ा है। ऐसे में प्यार जो कि अपने शुरूआती समय में समानता और सम्मान की पराकाष्ठा पर होता है, वह एक ठंडी बर्फ की नदी में बदल जाता है।

इनकी लीला अपरंपार

–शैलेंद्र चौहान

न ना रँगाए, रँगाए जोगी कपड़ा।।
आसन मारि मंदिर में बैठे, ब्रम्ह–छाँड़ि पूजन लगे पथरा।।
कनवा फड़ाय जटवा बढ़ौले, दाढ़ी बाढ़ाय जोगी होई गेलें बकरा।।
जंगल जाये जोगी धुनिया रमौले काम जराए जोगी होए गैले हिजड़ा।।
मथवा मुड़ाय जोगी कपड़ो रंगौले, गीता बाँच के होय गैले लबरा।।
कहहिं कबीर सुनो भाई साधो, जम दरवजवा बाँधल जैबे पकड़ा।।

बाबाओं की सबसे ज्यादा शक्तियाँ और चमत्कार भारत में ही पाये जाते हैं। लेकिन मजेदार बात यह है कि इनकी इतनी शक्तियों और चमत्कारों के बावजूद भारत, विश्व में सैकड़ों सालों से गुलाम रहे देशों में तीसरा देश कहलाता है। देश गरीबी, गंदगी, अनुशासनहीनता, लालच, भ्रष्टाचार, अंधभक्ति जैसी समस्याओं से जूझ रहा है किन्तु ये बाबा आज तक देश का कल्याण नहीं कर पाए। यदि आप यकीन कर सकें तो वास्तविकता यह है कि किसी

बाबा में कोई शक्ति नहीं, कोई चमत्कार नहीं। आप अपने को टटोलें तो पायेंगे कि शक्ति तो आप में है, चमत्कार तो आप में है। बेवजह ही आप बाबाओं के चक्कर में पड़े थे। इस देश में पाखंडी व ढोंगी बाबाओं का जमावड़ा हो गया है कि जिधर देखो उधर ये पाखंडी डेरा जमाये हुए हैं। कोई अश्लील फिल्में बना रहा है तो कोई पूरा सेक्स रेकेट ही चला रहा है। कहीं ये देखने को आ रहा है कि अपनी उम्र से भी आधी से भी कम उम्र की लड़कियों को बाबा अपने प्रेमजाल में फंसा रहे हैं। उन्हें अनुष्ठान करा रहे हैं और कुछ पा लेने के चक्कर में हमबिस्तर कर रहे हैं, बलात्कार कर रहे हैं। अब समझ जाईये कि किस कृपा की माँग कर रहे थे आप इनसे? अच्छा होता आप अपने आप पर कृपा करते। इनसे दूर रहकर अपनी शक्ति को पहचानते। प्रकृति तथा ब्रह्माण्ड के अचूक, तर्कसम्मत एवं वैज्ञानिक नियमों की पहचान करते। आप अज्ञानता, बेबसी एवं भय के कारण ही तो बाबाओं, ज्योतिषियों, तांत्रिाकों या अन्य पाखंडी गुरूओं के पीछे भागते हैं फिर चाहे आपका विश्वास कमजोर रहा हो या दृढ़। वैज्ञानिक विश्लेषण एवं तर्क के सम्पर्क में आ सकते तो आपकी आँखें हमेशा के लिए खुल जातीं। ये फालतू, बेवजह की भागदौड़ हमेशा के लिए बंद हो जाती।

आज माहौल ही लोगों ने कुछ ऐसा बना दिया है कि बाबाओं का दोष छुप जा रहा है। बाबा के आसपास दस–बीस चेला–चेली दौड़ रहे हैं, फूलों से शानदार सजावट कर दी गयी है। जनता मदहोश है, उसे लगता है कि ऐसा करके वे पुण्य कमा रहे हैं। एक बाबा प्रवचन देता है, कहता है मैंने एक स्वप्न देखा, सपना, ड्रीम, नाइटमेयर। भैया नाइटमेअर मतलब तो दुस्वप्न होता है। लेकिन पब्लिक की आंखें बंद हैं। बाबा बता रहा है, भक्त आत्मसात कर रहे हैं। सिंहासन पर बैठा बाबा कमाई कर रहा है। नये जमाने के इस बाबा के क्या कहने। इसे बैठने के लिए भव्य सिंहासन चाहिए। घूमने के लिए लंबी गाड़ी और ए–ग्रेड बाबा है तो हेलिकॉप्टर से कम में काम नहीं चलता। आश्रम तो ऐसे बनवा रखे हैं कि शहंशाह भी शर्म के मारे जमीन में गड़ जाएँ। एक दौर था कि साधु–संत मायावी प्रलोभनों से दूर रहकर समाज को संस्कारित व धार्मिक बनाने में अपनी महती भूमिका निभाते थे। स्वयं सात्विक–सरल जीवन जीते थे। काम, क्रोध, मद लोभ को त्याग कर खुद का जीवन दूसरों के हितार्थ होम कर देते थे। आज जिन साधु–संतों को हम देख रहे हैं, इनकी लीला अपरम्पार है। सर्व गुण संपन्न इन कथित साधु संतों का न तो कोई चरित्रा होता है न ही इनमें कोई त्याग, आए दिन इनकी काली करतूतें सार्वजनिक हो रही हैं। इसके बावजूद पहले की तरह ही आज भी इस महा विकसित दौर में साधु–संतों के प्रति जनता में श्रद्धाभाव है, जिसका फायदा उठाकर बड़ी संख्या में छद्म वेशधारी, साधु–बाबाओं की जमात में शामिल हो लिए हैं।

आज बापू आसाराम चर्चा में हैं, इन्होने अपने गुरुकुल में पढ़ने वाली एक किशोरी का सुनियोजित तरीके से बलात्कार किया। हिंदुस्तान भर में इनके अनेकों आश्रम हैं, अहमदाबाद, सूरत, इंदौर और जोधपुर का तो किस्सा ही है यह। इनका दिल्ली के बीचोबीच रिज फॉरेस्ट में एक आश्रम है। जंगल में मंगल। ईश्वर की मर्जी? खबरें आती रही हैं फलाँ बाबा के लोगों ने यहाँ जमीन पर कब्जा कर लिया, वहाँ अवैध रूप से आश्रम बना डाला। लेकिन उनपर कोई ध्यान नहीं देता। न जनता, न सरकार। भाई, ये बाबा हैं या भूमाफिया? यह बताना मुश्किल है।

बंगलौर के परमहंस नित्यानंद के कथित सेक्स विडियो ने 2010 में सनसनी फैला दी थी। इसके बाद नित्यानंद सुर्खियों में आ गए। वे दुनिया के कई देशों में नित्यानंद ध्यानपीठ चलाते दक्षिण भारत के एक टेलीविजन चैनल ने इस वीडियो का प्रसारण किया था जिसमें एक साधु जैसे दिखने वाले व्यक्ति को दो महिलाओं के साथ अश्लील अवस्था में दिखाया गया था। इसके बाद स्थानीय लोगों ने नित्यानंद ध्यानपीठ पर हमला कर दिया और तोड़फोड़ की। कांची कामकोटि पीठ के शंकराचार्य जयेंद्र सरस्वती को नवंबर 2004 में एक हत्या के सिलसिले में गिरफ्तार किया गया था। पर आठ साल बाद भी ये मामला पुडुचेरी की एक अदालत में घिसट रहा है। केरल के अमृत चैतन्य उर्फ संतोष माधवन को नाबालिग लड़कियों के साथ यौन दुर्व्यवहार करने के लिए एक अदालत ने 2009 में 16 साल की सजा सुनाई थी। कश्मीर में श्रीनगर से 42 वर्षीय गुलजार बट को पुलिस ने बलात्कार के आरोप में मई 2013 में गिरफ्तार किया। उन पर आरोप था कि उन्होंने बडगाम के अपने मजहबी ठिकाने खानसाहेब में कई लड़कियों का यौन शोषण किया।

पुलिस ने बताया कि सैयद गुलजार के स्कूल में 500 छात्राएँ पढ़ती हैं और वे स्कूल में काम करने वाली महिलाओं के जरिए लड़कियों को बहला फुसला कर उनसे यौन सम्बंध बनाते थे।

पिछले दिनों प्रतापगढ़ में कृपालु महाराज के आश्रम में भगदड़ मची। आश्रम के लोग कह रहे हैं कि–यह जो इतने लोग मरे इसमें हमारी कोई जिम्मेदारी नहीं, ईश्वर की मर्जी है। बाबा जी तो ईश्वर के काफी करीब हैं। दिन–रात ईश्वर से साक्षात्कार करते हैं, साक्षात प्रभु के दर्शन करते हैं। तो फिर ईश्वर ने उन्हें क्यों नहीं बताया कि बाबा, कल तुम्हारे आश्रम में भगदड़ मचेगी, लोग मरेंगे? मत करो श्राद्ध, या करो भी तो चुपचाप, अकेले। अपने करीबियों को याद करने के लिए मजमा लगाने की क्या जरूरत? अपने आप को ईश्वर बताने वाला यह कैसा बाबा है जिसे यह नहीं पता कि थोड़ी देर में यहाँ 64 महिलाएँ और बच्चे कुचल कर मरने वाले हैं? ईश्वर के करीब हो तो ईश्वर की मर्जी भी पता होगी! उत्तर प्रदेश में पाखंडी साधुओं की संख्या में खासा इजाफा हुआ है। राज्य में कई साधु–संत अपनी विवादित भाषा शैली और आचरण के कारण चर्चा में रहे, भक्त बनकर मंदिर स्थापित करने और लोगों को प्रवचन देने वाले चित्राकूट के बाबा, इच्छाधारी संत स्वामी भीमानंद महाराज उर्फ शिवमूरत द्विवेदी के काले कारनामों को चिट्ठा जब उजागर हुआ तो ऐसे साधु संतों को लेकर कुछ बहस छिड़ी।

राजधानी लखनऊ के बाबा भूतनाथ को मरे कई साल हो गए हैं, लेकिन आज भी उनके द्वारा हथियाई गई जमीन पर बनी भव्य भूतनाथ मार्केट उनके नाम को जीवित रखे हुए है। लखनऊ के इंदिरागनर में जहाँ पर भूतनाथ मार्केट बनी है इस जमीन की कीमत करोड़ों रुपए हैं। बाबा भूतनाथ करिश्माई तांत्रिाक के रूप में अपनी छाप बनाए हुए थे, वे तरह–तरह के रसायनों के प्रयोग से लोगों को बेवकूफ बनाने में सिद्धहस्त थे। उनके गुरूभाई रहे बाबा भैरोनाथ को उनकी करतूतों पर काफी नाराजगी रहती थी। संत ज्ञानेश्वर के तो नाम के आगे ही संत लगा था और पीछे ज्ञानेश्वर। लेकिन उनके शौक निराले थे, भूमाफिया के रूप में संत ज्ञानेश्वर का नाम पुलिस रिकॉर्ड में भले ही नहीं था, लेकिन दूसरों की जमीन हथियाने की

आखिर किसने ऐसा समाज रच डाला है

, d jkr fdlh lksHku ljdkj ukeed lkèkq us liuk ns[kk fdmUuko ftys ds MksafM;k [ksM+k xk;o esa fLFkr 19oha lnh ds jktk jke cDl jko ds egy esa 1000 gtkj Vu lksuk nck gSA

liuk ns[kuk xyr ugha Aysfdu liusHkh rjg&rjg ds gksrs gSaA vkt ls ipkl lky igys ekfVZu ywFkj us Hkh ,d liuk ns[kk Fkk& ^^vkbZ gSo , Mªhe**A gekjs jk"Vªfiuek Zrkvksa us Hkh] viuh reke lhekvksa ds ckotwn] liuk ns[kk Fkk& ^^chn ihiqy**A vkSj vc ;s ^^lksus dk liuk** vkSj mlds ihNs ikxy bl O;oLFkk ds fljs ekSjA

vxjdksbZ lpeqp dkèkeZfujis{k jkT; gksrk rks yk[kksa Vu lksuk gksus dh fdlh laHkkouk dks Hkh flQZ bl dkj ds vkxs dcpkZu djnsrk fd blls va èkfo'okl QSysxkA

vkSj ;gk¡ jktlÙkk }kjk [kqysvke vèkfo'okl QSyk;k x;k] tc ljdkj dh ,d izfrf"Br laLFkk Hkkjrh; iqjkrÙo losZ{k.k laLFkk us ml lar ds liusdks lpeku dj [kqnkbZ 'kq: dj nh vkSj vUr esa irk ;g pyk fd ml txg ls lksus dk [ktkuk ugha cfYd pwfM+;ksa ds VqdM+s] yksgs dh dhy vkSj feV~Vh ds crZu ds VqdM+s gh gkFk yxsA

lius dh [kqnkbZ dk rktk izglu jvly vktknh ds ckn u, jk"Vª ds fuekZ.k dk tks liuk xk¡èkh] usg:] iVsy] vacsMdj bR;kfn us ns[kk Fkk] mlds var dh ,d vkSj ?kks"k.kk gSA

,ddkjvkSj izekf.kr gqvk fdHkkjrh; jkT; ¼mÙkj izns'k ftlck vfoHkkT; vax gS½ èkeZfujis{k ugha cu ik;kA ;g vaèkJ)k ls lapkfyr gSA

lksuk [kksnus dh ?kVuk MkW- nkHkksyd j dh gR;k] txg&txg dj k;s tk jgs naxs] bUlku ds ukeij izseh tksM+ksa dh gR;k djus okyksa dks izR;{k&ijks{k laj{k.k vkSj nfyrksa dh gR;k djus okyksa dks vHk;nku nsus tSlh dkjZokb;ksa dh Ük`a[kyk esa gh ,d vkSj dM+h gSA

yksdrkaf=kd&èkeZfujis{k lekt ds fuekZ.k dk dk;ZHkkj vHkh Hkh vèkwjk gSA ;g dke uhps ls gh 'kq: gksxk rFkk tehuh Lrj ls] yksdpsruk vkSj tulaxÅ"ek ls] [kqn turk ds gkFkksa lEiUu gksxkA

आदत ने उन्हें मौत की गोद में सुला दिया। खूबसूरत महिला कमांडो के संरक्षण में चलने वाले संत ज्ञानेश्वर ने बाराबंकी से लेकर इलाहाबाद तक में अपना साम्राज्य फैला रखा था। उनके आश्रम में कई वीआईपी लोगों का आना–जाना था। संत ज्ञानेश्वर पर आरोप था कि वह अपने आश्रम में आने वाले अतिथियों को आश्रम में रहने वाली लड़कियाँ पेश करते थे। जब छापा मारा गया तो उनके आश्रम से कई आधुनिक हथियार भी पुलिस ने बरामद किए। भाजपा के टिकट से दो बार सांसद रह चुके सच्चिदानंद हरि उर्फ साक्षी महाराज की गिनती भाजपा के दबंग नेताओं में होती थी। साक्षी महाराज पर जमीन हथियाने और यौन उत्पीड़न के आरोप समय–समय पर लगते रहे। 27 मार्च 2009 को साक्षी महाराज के आश्रम से एक 24 वर्षीय युवती लक्ष्मी का शव बरामद हुआ तो हड़कंप मच गया। आश्रम के रूप में साक्षी महाराज के पास अच्छी खासी संपदा एकत्रा है।

समाज में ऐसे ढोंगियों की संख्या हजारों में है जिनकी काली करतूतें यदा कदा जाहिर होती ही रहती हैं लेकिन तब भी लोगों का उनसे मोहभंग नहीं होता। वे उनके चंगुल में फंसते ही रहते हैं। मजे की बात यह कि लोग अब ईश्वर की जय नहीं बोलते बल्कि बाबा की जय बोलते हैं। लगता है ईश्वर की शक्ति अब क्षीण हो गयी है। अब उन्हें ईश्वर की जरूरत नहीं रही। उन्हें तो बस बाबा की 'कृपा' चाहिए क्योंकि बाबा स्वयं ईश्वर है या फिर ईश्वर का असली दलाल। वह सिफारिश कर देगा तो परमात्मा आँख बंद कर उसकी बात मान आपका काम कर देगा। जब ऐसे बाबा पैदा हो गये हैं तो धर्मप्राण व्यक्तियों को ईश्वर की कोई जरूरत ही नहीं है। आखिर जो आपको भ्रमित कर दे, वही आपका भगवान है फिर वह बाबा हो या नेता।

बाबा को भगवान बना देने में लोगों की अंधभक्ति ही काम करती है। जो बाबा स्वयं अपनी ही भलाई में लगा हुआ है वह किसी और का भला कैसे कर सकता है? जो खुद लालच से उबर नहीं सकता वह औरों को क्या शिक्षा दे सकता है? जो आम आदमी और खास आदमी में फर्क करता है, वह क्या भेद मिटाएगा? यह समझने की जरूरत है। हमारा अवचेतन मन हमारे विश्वास पर कार्य करता है, तर्क पर नहीं। इसलिए आप किसी भी बाबा, पाखंडी गुरू या साधक के पास चले जाएँ, किसी भी मंदिर, गुरूद्वारे, मजार पर चले जाएँ, यह निश्चित मान लीजिये आपका इनके पास जाना ही आपके अवचेतन मन को प्रभावित करता है। कबीर के शब्दों में'–

''बहुत मिले मोहि नेमी, धर्मी, प्रात करे असनाना।
आतम–छाँड़ि पषानै पूजै, तिनका थोथा ज्ञाना।
साँची कही तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना,
साधो, देखो जग बौराना।''

कहीं नहीं है, कहीं भी नहीं लहू का सुराग

लक्ष्मदणपुर बाथे में कहाँ मरे थे 58 लोग? कोई सबूत नहीं, कोई हत्याकरा नहीं।

हार के अरवल जिले के लक्ष्मणपुर–बाथे नरसंहार मामले में सभी 26 आरोपियों को बरी कर दिया गया। पटना के एक विशेष अदालत ने सात अप्रैल 2010 को इस नरसंहार के 16 अभियुक्तों को फाँसी और दस को उम्रकैद की सजा सुनाई थी। उस फैसले को पलटते हुए पटना उच्च न्यायालय ने सबूतों के अभाव में उस मामले के सभी आरोपियों को बरी कर दिया।

इस बहुचर्चित और जघन्य हत्या कांड में भूस्वामियों और उच्च जाति के लोगों द्वारा गठित रणवीर सेना ने एक दिसंबर 1997 को लक्ष्मणपुर–बाथे गाँव के 58 निहत्थे और निर्दोष दलितों की सारेआम हत्या कर दी थी। नरसंहार के पीछे जमीन का विवाद था। मरने वालों में 27 औरतें और 16 बच्चे भी थे। इस हत्याकांड को अंजाम देने के लिये रणवीर सेना के करीब 100 सशस्त्रा सदस्य भोजपुर जिले से सोन नदी पार करके लक्ष्मणपुर–बाथे गाँव में आये थे।

पुलिस ने रणवीर सेना के 44 लोगों के खिलाफ 23 दिसंबर 2008 को आरोप पत्रा दायर किया था। पुलिस की तफतीस के मुताबिक इस नरसंहार में दलितों के चार परिवारों को पूरी तरह मिटा दिया गया था।

अतिरिक्त जिला एवं सत्रा न्यायाधीश विजय प्रकाश मिश्र ने इस मामले में 26 को दोषी ठहराते हुए उनमें से 16 को फाँसी और दस को उम्रकैद तथा 31–31 हजार रुपये के जुर्माने की सजा सुनायी थी। 19 लोग सबूत के

अभाव में बरी कर दिये गये था और दो आरोपियों– भूखल सिंह और सुदर्शन सिंह की मुकदमे की सुनवाई के दौरान ही मृत्य हो गयी थी।

निचली अदालत के इस फैसले को चुनौती देते हुए पटना हाई कोर्ट में दायर याचिका पर सुनवाई के बाद न्यायमूर्ति बी़ एन सिन्हा और न्यायमूर्ति ए के लाल की खंडपीठ ने सबूत के अभाव में सभी 26 अभियुक्तों को बरी कर दिया।

राबड़ी देवी की तत्कालीन राजद सरकार ने रणवीर सेना के राजनीतिक पार्टियों के साथ सम्बंधों का पता लगाने के लिए अमीर दास आयोग का गठन किया था। लेकिन सत्ता परिवर्तन के बाद नीतीश कुमार ने उस आयोग को भंग कर दिया। नितीश सरकार पर रणवीर सेना को शह देने के आरोप लगते रहे हैं। पिछले वर्ष रणवीर सेना के स्वयंभू मुखिया ब्रह्मेश्व र सिंह की भोजपुर जिले में हत्या होने के बाद आरा शहर में हिंसक जुलूस निकाल कर सवर्णों ने दलित छात्राावास सहित जगह–जगह पर दलितों के ऊपर हमले किये थे। आरा से पटना तक शवयात्राा निकाली गयी थी जिसमें शामिल सशस्त्रा आतताइयों ने पुलिस की उपस्थिति में तोड़–फोड़ और आगजनी की थी। उस घटना के बाद भी नितीश कुमार पर यह आरोप लगा था कि सवर्णों के बीच जनाधार वाली भाजपा के साथ गठबंधन के चलते प्रशासन ने हिंसक प्रदर्शनों से आँख मूँद ली। आज भाजपा से उनका मोर्चा टूट चुका है, लेकिन आज भी सवर्ण वोट बैंक के प्रति आकर्षण बिहार की मौजूदा सरकार का रुख तय करता है।

बिहार में दलितों के सामूहिक नरसंहार और अदालत द्वारा दलितों को न्याय न मिल पाने की यह कोई अकेली घटना नहीं है। इससे पहले बथानी टोला नरसंहार में भी पीडितों को न्याय नहीं मिला था। इस फैसले ने एक बार फिर दलितों–शोषितों को निराश किया है और इस बात का अहसास कराया है कि न्यायिक सक्रियता के तमाम हो–हल्ले के बावजूद सच्चाई यही है कि अदालतें और उनके फैसले निष्पक्ष नहीं हैं।

डेंगू का डंक और डर का कारोबार

डॉ. राम प्रकाश अनंत

स लेख का उद्देश्य जनता में डेंगू के प्रति जागरूकता पैदा करना है और मैं यह बताना चाहता हूँ डेंगू का नाम सुन कर भयभीत होने की जरूरत नहीं है। लेकिन एक बात कहना चाहता हूँ बेहतर चिकित्सा के लिए मरीज और डॉक्टर के बीच विश्वास का होना बेहद जरूरी है। लोगों को शहर में फैले ठगी करने वाले अस्पतालों के दलालों से बचना चाहिए, अगर कोई डॉक्टर बिना वजह डेंगू के नाम पर भयभीत करने की कोशिश करे तो डॉक्टर बदलने के बारे में विचार करना चाहिए परन्तु एक बार इलाज शुरू कराने के बाद डॉक्टर पर विश्वास करना चाहिए और यह मानना चाहिए कि वह मरीज की भलाई के लिए काम कर रहा है। यह मरीज के हित में होगा।)

किसी जमाने में मलेरिया बेहद खतरनाक बीमारी मानी जाती थी। आज नई दवाओं की खोज और सामाजिक जागरूकता की वजह से मलेरिया बेहद सामान्य बीमारी की तरह है। एक ओर मच्छर से फैलने वाले मलेरिया का भय आम आदमी के मन से निकल गया है तो दूसरी ओर मच्छर से ही फैलने वाली एक अन्य बीमारी डेंगू का भय लोगों के मन में गहरे तक समा गया है। मीडिया ने इस डर को स्थापित करने में अहम् भूमिका निभायी है। बड़ी मात्राा में बीमारी के फैलने, जब–तब लोगों के उससे मरने की खबरों, मीडिया द्वारा बनाई गयी भयावह तस्वीर और जागरूकता के बेहद अभाव के कारण लोग डेंगू के नाम से ही अत्यधिक भयभीत हो जाते हैं।अकेले दिल्ली में ही इस वर्ष अब तक करीब 2500 केस डेंगू के मिल चुके हैं।2006 में दिल्ली में डेंगू ने महामारी का रूप ले लिया था और साठ से अधिक लोग मरे थे।ऐसे में डेंगू का नाम सुन कर लोगों का भयभीत हो जाना अस्वाभाविक नहीं है। इस भय का कुछ शातिर अस्पताल फाइदा उठाते हैं और उनके भय को अधिक बढ़ाकर मोटा पैसा ऐंठ लेते हैं।

डेंगू वायरस से पैदा होने वाली बीमारी है जिसे एक जगह से दूसरी जगह फैलाने का काम मादा एडीज मच्छर करती है।इस बीमारी को सामान्य भाषा में बोन ब्रेकिंग फीवर या हड्डी तोड़ बुखार भी कहते हैं।इसके सामान्य लक्षण हैं –बुखार ,तेज बदन दर्द,सिर दर्द मुख्यते आँखों के पीछे,शरीर पर दाने आदि

'ks'ki`"B82ij